सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र प्रवचन

भाग 12

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर - मेरठ

13, से 14 भाग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरोंपर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए ।

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक-बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलंकदेव, श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजों ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ संस्कृत में होने के कारण जनसामान्य के उपयोग में नहीं आतीं।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओं से निवेदन है कि इस प्रवचन में संजोये रत्नों का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग में प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मंगलाकांक्षी
मंत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ॐ

मोक्षशास्त्र प्रवचन

द्वादश भाग

द्विविधानि ॥१६॥

जीव, कार्माणवर्गणा व आहारवर्गणा इन तीनके पिण्डकी भवरूपता—जो पूर्व सूत्र में बताया था कि इन्द्रियाँ ५ होती हैं, वे पाँचोंकी पाँचों इन्द्रियाँ दो-दो प्रकारकी होती हैं। हम आप जो जीव हैं यह तीन प्रकारके पदार्थोंका पिण्ड है—जीव, कर्म और शरीर। कर्म और शरीर यद्यपि एक पुद्गल जातिके ही हैं तो भी उनमें फर्क यह हैं कि जो कर्म बनने लायक कार्माणवर्गणा हैं वे शरीर नहीं बनते, जो शरीर वर्गणायें हैं वे कर्म नहीं बनतीं। सम्भव है कि चिरकालके बाद उनमें योग्यताका परिवर्तन हो जाय, मगर जैसे सोना और लोहा या सोना और मिट्टी जैसे ये जुदे हैं, बहुत काल तक सोना मिट्टी नहीं बनता, ऐसे ही कर्म और शरीर है। यह तीन प्रकारके पदार्थोंका पिण्ड है, जिसमें जीवका स्वरूप तो है शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप। चैतन्य और आनन्द याने जीवकी प्रकृति है कि वह चेते, समझना तो विकार है। विचारना, समझना, तर्क करना ये सब विकार हैं। ये विकार क्या हैं कि जीवका जो ज्ञान है उसके साथ मालिन्य लगा है उस ज्ञानकी शुद्ध वृत्ति नहीं है, मगर चेतना यह शुद्ध वृत्ति है। चेतना तो जीवका स्वरूप है और उस चेतनेमें स्वभावतः आनन्द भरा हुआ है। वह आनन्द क्या है? परम आह्लाद अथवा निराकुलता। यह तो है एक जीवकी सम्पत्ति और कर्मका क्या है कि कर्ममें अनुभाग याने उसमें विडरूप होना, खौल जाना, क्षुब्ध हो जाना, एक बहुत विकृत रूप बन जाना, यह है कर्मकी सम्पत्ति और शरीरकी मूर्ति तो एक सीधी-सादी बात है, केवल एक माध्यम भर बनता है, पर स्वयं कुछ नहीं, यह जीवके विकारका निमित्त बनता है, किन्तु उसमें कोई उपद्रवकी चीज बनती है इस शरीरसे। संघर्ष जितना है सब कर्मका और जीवका है, पर इस संघर्षमें यह शरीर किसका सहायक है? मुख्य संघर्ष करने वाला नहीं है यह शरीर, मगर जब दो की लड़ाई होती है तो तीसरा आदमी प्रायः

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करके ऐसा होता है कि कुछ न कुछ उन दो में से किसी एकका समर्थक होता है। तो ऐसे ही जीव और कर्मके इस संघर्षमें शरीर कर्मका सहायक है, जीवका सहायक नहीं। जैसे कर्म में असाताका उदय है तो शरीर उसका सहायक है; रोगी बनकर या अन्य प्रकार सम्मान अपमानमें भी यह शरीर सहायक बन रहा। सम्मान-अपमान मोहनीयके उदयमें होते हैं, मगर यह शरीर सम्मान अपमानका साधक बन रहा। न शरीर होना तो किस बातमें हम सम्मान अपमान मानते ? तो शरीर कर्मका एक सहायक है इसलिए इस शरीरका नाम आचार्योंने नोकर्म रखा है मायने ईषत्कर्म। तो ऐसा तीनका यह संसारी पिण्ड है।

इन्द्रियोंकी वास्तवमें बाधकरूपता—जीवकी प्रकृति है कि यह ज्ञानमें बढ़े, शुद्ध चैतन्यवृत्तिमें चले, यह जीवका एक स्वभाव है। मगर इस स्वभावका तिरस्कार हो गया है कर्मविपाकसे। ऐसी हालतमें जैसे कहते हैं कि बड़े बर्तनका खुरचन भी दो-एक मनुष्योंका पेट भर सकता है। कोई बड़ा समारोह मनाया गया हो, जिसमें हजारों आदमियोंकी पंगत हो, मानो खीर बनाई गई हो तो सारे मनुष्योंको खिला देनेपर भी अगर कोई दो एक मनुष्य बादमें आ जायें तो उस बड़े बर्तनके खुरचनमे भी उनका पेट भरा जा सकता है, तो ऐसे ही इस जीवपर कितने ही कर्मोंका पभिभव बना, तिरस्कार बना, तिसपर भी इस जीवका स्वभाव बिल्कुल दूर नहीं किया जा सकता है। यह ज्ञान अज्ञान नहीं बना सकता, कुछ न कुछ इसका ज्ञान चलता ही रहेगा। तो ऐसे ही इस तिरस्कार दशामें जब हम आप लोगोंके ज्ञान चलता है उन ज्ञानोंमें सहायक उपकरण इस शरीरकी इन्द्रियाँ बनती हैं। कोई कितना ही अन्य बातोंमें दुष्टताका बर्ताव करता हो, फिर भी कभी-कभी किसी प्रसंगमें वह सज्जनताका भी हठी बन जाता है, ऐसे ही यह शरीर हमारी विपत्तिका साथी तो बना, उस-उस कर्मका साथी तो बना, पर इस शरीरका विभाग जो ये ५ इन्द्रिय हैं ये ही इन्द्रिय इस कमजोरीकी अवस्थामें ज्ञानका उपकरण बन गईं। बस यह है एक कहानी इस जीवकी। कैसे यह जीव ज्ञान कर रहा है तो उसमें इन्द्रियाँ मदद दे रही हैं और उन इन्द्रियोंके आलम्बनसे यह जीव अपनेमें एक ज्ञान बना रहा है। तो जीव अपनेमें ज्ञान बना रहा वह तो है भावेन्द्रिय जो एक इसका वास्तविक साधक है, और जिन इन्द्रियोंके माध्यमसे ज्ञान बना, वह है द्रव्येन्द्रिय।

एकत्वमें दुविधा नहीं—ये इन्द्रियाँ दो प्रकारकी हैं। यहाँ द्विविध शब्द दिया है। यदि यहाँ दुविधा नहीं होती, और एक ही मात्र चैतन्य इन्द्रलिङ्ग होता तो इसके लिए बड़ी शान्तिका धाम स्वयं होता। लोग कहते है कि यह दुविधामें पड़ गया। यह आत्मा अगर केवल आत्माके ही बलसे जानता रहता और इसमें यह दुविधा न आती कि शरीरकी इन्द्रियाँ हों और उसके आलम्बनसे फिर यह जीव ज्ञान करे, यह दुविधा अगर इसमें न होती, केवल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक अद्वैत, केवल एक असहाय अपने आपके ही बलपर अपने आपके चेतनेका काम करता तो इसको किसी भी प्रकारका कष्ट न था। यह दुविधामें पड़ गया जीव। एकमें दुविधा नहीं, जहाँ दो हैं वहाँ दुविधा है। किसीके एक बालक है उसको कोई प्रकारकी दुविधा नहीं। सारी सम्पत्तिका यह ही मालिक है। जीवनमें कोई फिसादके क्षण नहीं आते। जिनके दो-चार बालक हैं उनको दुविधाओंके बहुत प्रसंग आते हैं। एकमें दुविधा नहीं। दो हों और अनेक हों तो उसमें दुविधा बनती है। हम अगर संसारकी दुविधावोंसे दुःखोंसे बचना चाहते हैं तो हमको एक विशुद्ध दृष्टि बनानी होगी कि मेरा रक्षक, मेरा जनक, मेरा सर्वस्व, एक मेरा सहजस्वरूप है। कोई दिन आयगा कि यह मैं अपने सहजस्वरूपमें समा जाऊँगा याने फिर यह उपयोग जहाँ यह दुविधा न रहेगी कि इस द्रव्येन्द्रियके माध्यमसे यह अपना ज्ञान बनाये। अहो, कोई फंसाव बन गया है तो उसमें हम इन इन्द्रियोंके माध्यमसे ज्ञानोंसे काम निकालते हैं, यह बात तो एक अलग है, मगर यह भी एक बहुत विकट फंसाव है कि जो इन्द्रियका सहारा लेकर ज्ञान बनाया करते हैं, क्योंकि इस दुविधाके बाद ही विषयोंमें हमारी प्रीति गई। उसका कारण तो मोह है, लेकिन एक यह मूल शुरूवात है कि हम इन इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थोंको जानते हैं।

इन्द्रियज ज्ञानमें अनुदारता एवं अशांतिका वातावरण—हमारे ज्ञानमें और प्रभुके ज्ञानमें जातिका भी अन्तर आ गया। हम किसी फलको रसनाके द्वारा रसवान समझते हैं, नाकके द्वारा गंधवान समझते हैं, स्पर्शके द्वारा हम उसे कोमल कड़ा समझते हैं और कर्णके द्वारा हम उसके स्पर्श वगैरामें, खाने पानेमें शब्द होता है उसे जानते हैं, मगर यह तो बतलावो कि भगवानके जब इन्द्रिय ही नहीं, शरीर ही नहीं तो वह इन रूप रस गंध आदिकको किस ढंगसे समझते हैं ? उनका वह बहुत बिलक्षण ज्ञान है। हम लोगोंकी तरहसे रूप, रस, गंध आदिकको वे नहीं जानते। यह तो इन्द्रियके द्वारा बात हो गई। वह माध्यम वहाँ रहा नहीं। और यदि इन फलोंमें, पुद्गलादिकमें रूपादिक न होते तो हम इन इन्द्रियोंके द्वारा भी क्या समझते ? प्रभुज ज्ञान सब रहे हैं, किन्तु जान ही रहे हैं सब, चेत ही रहे हैं सब, लेकिन हम जैसा विभक्त यह रूप है, यह रस है यह गंध है ऐसा भेद करके अलग-अलग अनुभव वाले ज्ञानसे जानते, ऐसी कल्पनाभरी ज्ञप्तिमें वे नहीं जानते। चूँकि उनके ज्ञानमें चार गुण एक साथ ज्ञानमें आ रहे हैं इसलिए किसी भी रस आदिकका उनपर विकार करनेके लिए प्रभाव नहीं। जैसे एक मोटा लौकिक दृष्टान्त ले लो। कोई पुरुष एकमें या दो में राग करे तो उस उसके रागकी एक विकट मुद्रा बनती है। यदि वह पुरुष संसारके सभी प्राणियोंपर राग करे, सभी जीवोंपर राग करे, अपने रागको ऐसा फैला दे कि सब जीवोंसे समान रूपसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक प्रेम करे, राग करे तो उस रागकी विकट मुद्रा नहीं बनती। विकट मुद्रा बनती है एक संकुचित वृत्तिमें। उदार वृत्तिमें विकट मुद्रा नहीं बनती। तो हमें जो द्रव्येन्द्रियाँ मिली हैं उनके द्वारा हम जानते हैं सो हमारी इन इन्द्रियोंसे प्रीति बन गई। इन्द्रियका जो विषय है उन विषयोंको भोगकर हम इन्द्रियको राजी रखें—ऐसा इसका भाव बन गया है। तो देखिये कि बड़ेसे भी बड़ी विपत्ति जो आती है उसका मूल कारण क्या है ? हमने इन्द्रिय द्वारा जाननेका काम किया। सारी विपत्तियोंका मूल जड़ यह निकला। तो और बात तो दूर रहो, इन इन्द्रियोंके द्वारा जानने का यत्न करना, उसमें मौज रहना और उस विज्ञानसे अपनी महिमा समझना यह सब विडम्बना है।

इन्द्रियसाहाय्य बिना सहज ज्ञान आनन्दकी प्रतीक्षा—भैया ! ध्यान ऐसा जाना चाहिए कि इन इन्द्रियोंसे मुझे कुछ न चाहिए। मैं इन इन्द्रियों द्वारा ज्ञान भी नहीं चाहता। मुझे इन जानकारियोंकी भी जरूरत नहीं। मैं सहज सिद्ध हूं, सुरक्षित हूं गुप्त हूं, कष्टरहित हूं। अपने आप जो हो सो हो। मुझे न इज्जत चाहिए, न इन्द्रिय द्वारा विविध ज्ञान चाहिए—ऐसी एक भीतरमें उमंग हो और जैसे अभी रेलवेमें कामकी हड़ताल चली थी, ऐसे ही इन्द्रियों द्वारा ज्ञान करनेकी हड़ताल कर दें तो अपने आप इन्द्रियके सहारे बिना मेरेमें कोई बात आती हो वह मंजूर है मगर मुझमें पराधीन होकर ज्ञानका भी काम नहीं चाहता। पराधीन होकर मैं आनन्दका भी काम नहीं चाहता। ऐसे इस इन्द्रियज ज्ञान और आनन्दसे कोई विरक्ति पाये और सहज अपने आपमें कुछ मिलता हो, उसकी ही भावना रखे तो ऐसा पुरुष इस भावनाके अभ्यास और प्रयोगके बलपर आत्माके निर्विकल्प स्वरूपका अनुभव कर सकता है। जीवतत्त्वके वर्णनमें ये सब बातें बतायी जा रही हैं, पर साथ ही साथ हम उनसे क्या शिक्षा लें, यह भी अपने आपपर घटाते रहना चाहिए। इन्द्रियसे असहयोग, सहयोग लेते हुए असहयोग करना। हम स्वाध्याय करते हैं, यह इन्द्रियसे सहयोग ही तो ले रहे। हम सत्संग में बैठते हैं, जिनवाणी सुनते हैं, हम इन इन्द्रियोंसे अच्छे कामके लिए सहयोग तो ले रहे हैं, मगर ऐसा सहयोग लेते हुए भी हम अपने ज्ञानमें ऐसा बढ़ें कि वह स्थिति हमारी आ जाय कि हमारा इन्द्रियोंसे सहयोग लेना बंद रहे, ऐसे असहयोगमें बढ़ें और अपने आप अपनेमें से जो अपनेको ज्ञान और आनन्द मिले उसके लिए राजी रहनेका साहस रखें, यह है वैराग्यकी एक सहज मूर्ति। यह चाहिए हमें। कहाँ दृष्टि ले गए ? अपने आपके बहुत अंतः सहज विश्रामपर हमारी दृष्टि गई। कितने झंझटोंसे बचे ? ज्ञान करनेका प्रयोजन यह है कि जो हमने ज्ञान कमाया उस सारे ज्ञानका बहिष्कार कर दें चिन्तनासे, ऐसे उस कमाये हुए ज्ञानका बहिष्कार हम ज्ञानी बने बिना नहीं कर सकते। जैसे कोई पुरुष जिन्दगी भर कमाता है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्तमें बड़ी उम्र होनेपर सारे कुछ अनुभव होनेपर वहाँ वह जानता कि यह सब तो छूटेगा मरण हो जायगा। सारा कमाया हुआ धन परोपकारमें लगे जिसका, त्यागमें, दानमें लगे जिसका तो देखने वाले लोग यह कहते कि कमाया किसलिए ? अंतमें सब त्याग कर ही गया। तो जैसे कमाकर त्याग करनेमें वहाँ एक आनन्द जगता है ऐसे ही हर प्रकारसे ज्ञान बनाकर समस्त ज्ञानोंको मिटा देनेमें एक विशुद्ध सहजज्ञान और आनन्द जगता है। ये इन्द्रियाँ मिली हैं, हम कुछ इनसे काम लेते हैं, पर श्रद्धा हमारी यह होनी चाहिए कि इन्द्रियसे काम लेना ही हमारी सारी विपत्तियोंकी जड़ बन जाती है। मुझे इन इन्द्रियोंसे कुछ करम भी न चाहिए। मैं स्वयं ज्ञानस्वरूप हूं, स्वयं आनन्दस्वरूप हूं इसलिए उस परमविश्राममें रहकर ही मैं अपने आपके क्षण गुजारूंगा। मुझे और किसी बातकी जरूरत नहीं।

इन्द्रियोंके वर्णनमें संबंधित निज तत्त्वके परिचयकी संभवता—इन्द्रियां बताई जा रही हैं कि ये दो प्रकार की हैं और वे दो प्रकारकी कौनसी इन्द्रियाँ हैं, उसका वर्णन सब आगे चलेगा और अपने में जिसका रात दिन एक पाला सा पड़ रहा है और इसके कभी सहायक, कभी निरोधक जो अनेक प्रकारसे उसके साथ लगे हुए हैं उनकी चर्चा करना एक बहुत दिलचस्प बात होनी चाहिए। उसकी ही बात होनी चाहिए। कोई आदमी मेरा नाम लेकर यदि प्रशंसा करता हो, सब लोग अपने आपके बारेमें घटायें तो उसमें दिलचस्प बनता कि नहीं। क्या कहते हैं, बड़े ध्यानसे सुनते। कोई अगर मेरी निन्दा कर रहा तो उसे भी ध्यानसे सुनते, मेरी कोई बात कही जा रही है। तो यहाँ जो मेरा नहीं है, जो मैं नहीं हूं उसको मान लें कि यह मैं हूं, यह मेरा है, उसके नामपर तो यहाँ बड़ी धुन बन जाती है और एक अभिमुखता बनती है। दिलचस्प जैसी प्रवृत्ति करते हैं। किन्तु वास्तवमें जो मैं हूं और उस वास्तविक मैं के खिलाफ जो कुछ संघर्ष चलता है उस संघर्षकी यदि निन्दा हो तो इसमें तो हमको बहुत ही धुन पूर्वक श्रवणमें लगना चाहिए। अगर यह हमारी धुन नहीं बनती और हम अपने कल्याण अकल्याणकी ओर कुछ दृष्टि नहीं करते। अकल्याणसे बचे, कल्याणमें लगें, इस ओर अगर हमारी जागृति नहीं होती है तो जैसे स्वप्नमें राजा बन गये, धनी बन गए, वैभव मिल गया, आनन्द कर लिया, पर नींद खुलने के बाद फिर वहाँ रहता क्या है हमारे पास ? ऐसे ही मोहकी नींदमें यह सब लग रहा कि मुझे वैभव मिल गया। मेरा ऐसा मकान है, मेरे ऐसा वैभव है, इतनी सम्पदा है, इतने घरके लोग हैं, बड़े अच्छे मित्र हैं, यह सब मोहकी नींदका स्वप्न है। यह स्वप्न कब खतम होता, कब यह मनुष्य ठिकाने आ जाता ? दो बातें होने पर या तो वियोग होने पर या ज्ञान जगने पर। जो चीज मिली है उसका जब ज्ञान हो जाय तो इसकी समझमें आता कि वह सब स्वप्न था। यों कह

http://sahjanandvarnishastra.org/

डालो या ज्ञान जग जाय तो मिली हुई हालतमें भी नहीं भी वियोग हुआ, संयोग है तो इस समयमें भी वह यह समझता है कि ये सारे स्वप्न हैं। तो वियोग होनेपर अगर समझे यह कि जो कुछ सुख समागम मिला था वह सब स्वप्न था। तो इस समझसे काम नहीं चलता, क्योंकि वह खेदके साथ कह रहा है ऐसा कि वह सब स्वप्न था। वह ललचा कर कह रहा है ऐसा। कैसे आनन्दके दिन थे, वह सब स्वप्नमें चल रहा था, पर वह उसकी आशा कर रहा है कि यह मुझको फिर मिले। वियोग पुरुष खेदके साथ उस सब स्वप्नकी बात कहता है, किन्तु ज्ञानी पुरुष प्रसन्नताके साथ और अपने आत्मामें एक विशुद्ध आनन्द लेते हुएके साथ वह समझ रहा, जान रहा कि यह सब स्वप्न है, सब भ्रम है।

चैतन्यस्वभावके अतिरिक्त अन्य सब प्रसंगोंसे निजका निरालापन—महिमा है उस बड़े भाग्यवान, बड़े सुन्दर भवतव्य वाले पुरुषकी, जो प्राप्त समागमोंको आँखों सामने देखते हुए भी यह मेरा है, यह मेरा कुछ नहीं है, इससे मेरेको क्या लाभ है ? सच बात कह रहे। यथार्थता यह ही है, और मेरी कहाँ तक यह रक्षा करेगा ? क्या मेरा पार पड़ेगा इन बाहरी संग प्रसंगोंसे ? यहाँ कौन मेरा है, कौन पराया ? किसको अपना मानूं, किसे गैर मानूं ? बोलो जिसको गैर मान रहे वे हैं तो सब गैर अगर जिनको अपना मान रहे वे भी गैर हैं। जिसको अपना मान रहे उसका वियोग होगा। जिसको गैर मान रहे कहो उसका बंधु और मित्रके भेष में संयोग हो सकता है। ऋषिजन बताते हैं। प्राय: करके बात है यह कि इस जगतमें कौन सा जीव है ऐसा जो मेरा अनेक बार बंधु, मित्र, पिता या पुत्रादिक न हुआ हो ? लेकिन वह बात सब भूल जाते हैं और इन पर्यायोंमें जो अपने संग प्रसंगमें आते हैं हम उनको अपना सर्वस्व समझते हैं। एक कथानक है कि एक कषायी एक बकरेको मारनेके लिए कषायीखाने लिए जा रहा था। वह बकरा कषायीके पीछे-पीछे जा रहा था। रास्तेमें एक जगह एक सेठ की दुकान पड़ी। उस दुकानपर वह बकरा चढ़ गया और उस दुकान वालेके चक्कर काटने लगा। उस सेठने बहुत भगाया, नीचे ढकेला, पर वह बकरा न भगा। सेठ बड़ा हैरान हुआ। कषायीने कहा—हमारा बकरा नीचे ढकेल दो, सेठने बहुत ढकेलनेका प्रयत्न किया पर वह नीचे न उतरे। उस सेठको बड़े प्यारसे बड़ी मुखमुद्रा बनाकर उससे चिपक चिपककर चक्कर काटने लगा तो वह कषायी बोला—भाई तुम हमारा बकरा दे दो नहीं तो तुम्हें इसके ५००) देने होंगे। सेठको ५००) पर लालच आया और जबरदस्ती बकरेको नीचे ढकेल दिया। कषायी उस बकरेको कषायीखाने ले गया। इधर सेठ किसी मंदिरमें पहुंचा, कोई मुनिराज मिले। मुनिराज थे अवधिज्ञानी। उन मुनिराजसे उस बकरे वाला सारा हाल कह सुनाया। तो वहाँ मुनिराजने बताया कि वह बकरा तेरे पिताका जीव था। वह अपने प्राणोंकी रक्षाके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए तेरे पास आया था। मुनिराजकी इस तरहकी बात सुनकर सेठ बड़ा दु:खी हुआ, उस बकरेकी रक्षाके लिए ५००) लेकर कषायीखाने पहुंचा, पर जब वहाँ पहुंचा तब तक उसकी हत्या हो चुकी थी। तो आप बताओ कि जो घरमें आज बड़ा है, जिसके बलपर परिवारके सब लोगोंका गुजारा चल रहा है, वह ही अगर मरकर उसी घरमें कोई पशु-पक्षीके भवमें पहुंच जाय तो बताओ उससे घर वालोंको उस तरहका मोह रहेगा क्या ? न रहेगा। तो ऐसी बात तो लोग सोचते नहीं कि जीवमें कैसे-कैसे परिवर्तन हो रहे हैं ? इस जगतमें मेरा कहीं कुछ नहीं। मुझे बाहरमें कुछ जाननेको नहीं पड़ा, भोगनेको नहीं पड़ा। मैं तो स्वयं परिपूर्ण हूं, चैतन्यस्वरूप हूं। मैं तो विश्रामसे बस बैठा हूं, मैं कोई चेष्टा न करूँगा। ऐसे इस ज्ञान और इस मौजकी हड़ताल करके जो विश्रामसे अपनेमें बैठे वह आत्मानुभव पाता है और ऐसा आत्मानुभव ही कर्मोंको काटता है और मुक्तिमें पहुंचा देता है।

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

द्रव्येन्द्रियके प्रधान अङ्ग निर्वृत्तिका निर्देश—पूर्वसूत्रमें यह बताया था कि पाँचोंकी पाँचों ही इन्द्रियाँ दो दो प्रकारकी होती हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। स्पर्शन भी दो प्रकार का है—स्पर्शनद्रव्येन्द्रिय और स्पर्शनभावेन्द्रिय। रसना भी दो प्रकारकी है– रसना द्रव्येन्द्रिय रसनाभावेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय भी दो प्रकारकी है—घ्राणद्रव्येन्द्रिय, घ्राणभावेन्द्रिय। चक्षुइन्द्रिय भी दो प्रकारकी है– चक्षुद्रव्येन्द्रिय और चक्षुभावेन्द्रिय और कर्ण भी दो प्रकारके हैं—कर्ण-द्रव्येन्द्रिय और कर्णभावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रियका सीधा अर्थ यह है कि जो एक रचना है, पौद्गलिक है वह तो द्रव्येन्द्रिय है और द्रव्येन्द्रियके निमित्तसे जो उपयोग चलता है, जानकारी होती है वह भावेन्द्रिय है। तो इस सूत्रमें द्रव्येन्द्रियका वर्णन है। द्रव्येन्द्रियको दो भावोंमे समझना है—निर्वृत्ति और उपकरण। इसका शब्दार्थ यह है कि जो रचना है उसको निर्वृत्ति कहते हैं—निर्मित्यः इति निर्वृत्तः, तो जो रचा जाय और कभी बने तो वह नैमित्तिक रचना होती है। जो भी निमित्त बिना बात हो वह अनादि अनन्त हुआ करती है। अगर कोई बात पहले न थी और अब हो गई है तो समझो कि वह नैमित्तिक है। निमित्तका सन्निधान पाकर हुआ और निमित्तके असन्निधानमें वह खतम हो गया। तो जो रचना है, नैमित्तिक है उसका निमित्त क्या है ? कर्म। कर्मका निमित्त पाकर जो रचा गया है उसे निर्वृत्ति कहते हैं। याने जो इन्द्रियाँ बनी हैं कर्ण चक्षु घ्राण आदिक, वह एक रचना विशेष तो है ही। स्पष्ट देख रहे हैं। इस ही रचनामें जो कुछ मैटर है या जो कुछ है उस सबका नाम निर्वृत्ति है। अब यहाँ यह ध्यानमें देना कि जितनी इन्द्रियाँ हैं उतने में ही निर्वृत्ति समझना, बाकी कोई इन्द्रिय ही नहीं है। जैसे आँख जो सफेदके अन्दर काली और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कालीके अन्दर और काली मसूरके दाने बराबर जो रचना है वह निर्वृत्ति है और उसके बाहर जो और बड़ा काला है और उसके चारों तरफ सफेद है वह निर्वृत्ति नहीं। जिन साधनोंसे परिज्ञानका काम बने बस उतनी ही इन्द्रियाँ है और वही निर्वृत्ति कहलाती है।

निर्वृत्तिकी द्विविधता—तो इन्द्रियकी निर्वृत्तिमें दो भाग हैं—एक भीतरी निर्वृत्ति और दूसरी बाहरी निर्वृत्ति, आभ्यंतर और बाहरी और उस इन्द्रियके आकारमें जो आत्माके प्रदेश हैं वह तो आभ्यंतर निर्वृत्ति है। उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रदेश होते हैं इन्द्रियकी रचनामें और यह भी जानना चाहिए कि आत्माके प्रदेश आत्मामें रहकर भी अनवस्थित हैं। आत्माके प्रदेशोंमें जो योग होता रहता है, प्रदेशोंमें जो घुमाव बना रहता है, एक होकर भी और प्रदेशोंका घुमाव चलता रहता है। हर एकके तो उसमें प्रदेशोंका भी घुमाव चलता है। तो समय-समयपर जो-जो भी प्रदेश हैं वे आभ्यंतर निमित्तमें कहलाते हैं। और बाह्यनिर्वृत्ति क्या है कि जो पौद्गलिक रचना है, जितनी कि इन्द्रियाँ हैं उसमें जो पुद्गलकी रचना है वह बाह्य निर्वृत्ति कहलाती है। बाह्यनिर्वृत्ति तो दुनियाको दिखती ही है। कान की भी यही बात है। जो अन्दरका भाग शब्द सुननेका साधनभूत है कहते तो हैं कि यह कानोंमें पोल है तो पोलका नाम कर्णेन्द्रिय नहीं। उस पोलके अन्दर जो भी एक हल्का हिस्सा है, जितना छू जाने पर शब्दका परिचय होता है वह कर्णेन्द्रिय है, बाकी जो दिख रहा है लोगोंको यह कर्णेन्द्रिय नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियमें समझिये। घ्राणेन्द्रिय-नाकमें पोल है, पर जो पोल है वह इन्द्रिय नहीं। उसके अन्दर जो कुछ भी झिल्लीसी पतली कोई रचना है अन्दर कि जहाँ स्पर्श हो जाय गंध अणुवोंका तो यह गंधका ज्ञान कर लिया जावे वह घ्राणद्रव्येन्द्रिय है। इसी प्रकार रसनाइन्द्रिय की बात देखो—जितनी बड़ी जीभ है ४—६ अंगुलकी खुरपाकी तरह तो उतनी बड़ी जीभ नहीं है। जिभ्या इन्द्रिय तो उतने हिस्सेमें है कि जहाँ चीज छू जाय तो उसके रसका परिचय बन जाय। सारी जीभ इतनी लम्बी चौड़ी है वह जिभ्या इन्द्रिय नहीं है, इसी प्रकार स्पर्शनइन्द्रिय है। स्पर्शन इन्द्रियका विस्तार ज्यादा है। जो कान दिख रहे, नाक दिख रही, जो आँखें इतनी बड़ी दिखतीं ये सब स्पर्शनइंद्रिय हैं। इनके अन्दर जो इतनी रचना है कि जो रस आदिक विषयोंका परिचयका साधन बना है वह इंद्रिय है। तो निर्वृत्ति दो प्रकारकी होती है—आभ्यंतर निर्वृत्ति और बाह्य निर्वृत्ति। आभ्यंतर निर्वृत्ति तो उस बाह्यइंद्रियके मापमें जो आत्मप्रदेश की अवस्था है वह तो है आभ्यंतर निर्वृत्ति और जो पुद्गल परिचय है इंद्रियाकार वह कहलाता है बाह्य निर्वृत्ति। द्रव्येन्द्रियके प्रकरणमें एक भौतिक इंद्रियकी ही तो बात कही जा रही, मगर इसके साथ जो आभ्यंतर निर्वृत्तिकी बात कही यद्यपि वह पौद्गलिक नहीं है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्माके प्रदेशोंकी इंद्रियाकार रचना होना पौद्गलिक नहीं है, मगर इस पुद्गलके सम्बन्धसे वह भी एक मूर्त जैसा बन रहा और फिर इसकी रचनाका वह आधार है आत्मप्रदेश। उसके सम्बंधसे ही पौद्गलिक रचना बनती है, अतएव आभ्यंतर निर्वृत्तिका भी जिक्र करना पड़ा। यह है द्रव्येन्द्रिय।

द्रव्येन्द्रियके अङ्गभूत उपकरणकी चर्चा—निवृत्ति और उपकरण। उपकरण क्या चीज है? जो असलमें इन्द्रिय है उस इन्द्रियका जो उपकार करे, रक्षा करे उसे उपकरण कहते हैं। जैसे चक्षु तो मसूरके दाने बराबर है और वह अवस्थित है सफेद पिण्डके अन्दर काला पिण्ड और उसके भीतर वह मसूरके दाने बराबर एक तेजवान चमकीला नेत्र है। तो अगर यह शुक्ल वर्ण न हो तो यह कैसे स्थित होगा? तो यह उपकरण है। और यदि पलक वगैरह न हो तो आंखोंकी कैसे रक्षा होगी? आँखें तो बन जायें और ये पलक न हों तो आंखें तो जल्दी फूट जायेंगी। कंकड़ घुसेगा, किसीकी अंगुली भी लग जायगी, कुछ चोट भी आ जायगी। तो यह पलक है यह भी उपकरण है। याने जो वास्तविक चक्षुइन्द्रिय है उसकी रक्षाके जो साधन हैं वे उपकरण कहलाते हैं। इस तरह जो दिखती है आँख और लोग जैसा कहते हैं यह है आँख, वह भी क्या चीज है? निर्वृत्ति और उपकरण। इसको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। इन उपकरणोंमें जो इन्द्रियसे चिपका हुआ हो वह तो है आभ्यंतर उपकरण और जो उससे दूर हो और उसकी रक्षाके लिए हो वह कहलाता है बाह्यउपकरण। तो नेत्रमें यह उपकरण बहुत जल्दी समझमें आ जाता और कर्णेन्द्रियमें जो वास्तविक इन्द्रिय है, अंदर जाकर जो कुछ भी एक पिण्ड है उससे चिपका हुआ जो कुछ है वह तो है आभ्यंतर उपकरण और उसकी रक्षाके लिए जो बाहरमें दिख रहा है एक सूप जैसा लम्बा चौड़ा यह बाह्य उपकरण है। ऐसे ही नासिकामें जो नाकके अन्दर दोनों छिद्रोंके बीच जो कुछ एक मैटर है जिससे पुद्गल छू जाय स्कंध तो गंधका परिचय बनता वह तो है घ्राणेन्द्रिय और उससे लगा हुआ जो पिण्ड है वह आभ्यंतर उपकरण और उसकी रक्षा करनेके लिए जो यह दो तीन अंगुलकी लंबी-चौड़ी नाक दिखती है यह है बाह्य उपकरण। इन्द्रियोंकी कैसी विचित्र रचना है? किसने की है, कहाँ बैठकर की है? कैसे बन गया यह इन्द्रिय, यह शरीर? जब निमित्त उपादानकी विधिकी दृष्टि नहीं रहती तो लोग ऐसी कल्पना कर लेते हैं कि यह तो सब ईश्वरकी लीला है।

आन्तरिक प्रकाश और अन्धकारका प्रभाव—देखिये, ज्ञान सही हो तो उसे कहते हैं प्रकाश और ज्ञान झूठा हो, उल्टा हो तो उसे कहते हैं अंधकार। अंधकारमें जीवको क्या मिलती? परेशानी, धोखेबाजी, अशान्ति, यह ही प्राप्त होती है, और जहाँ प्रकाश मिला हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने बारेमें और दिखने वाले इन बाहरी पदार्थोंके बारेमें यथार्थ ज्ञान हो तो वह बड़ा निराकुल, शान्त, प्रसन्न रहता है। जीवका धन ज्ञान ही है। सो मोही जीव इस तथ्यको न समझकर बाहरी वस्तुओंको वैभव धन सम्पन्नता मानकर इस ज्ञानधनको बरबाद करते हैं और अज्ञान अंधकारमें रहकर अपने आपको संसारके जन्म-मरणमें फंसाते हैं। चीज बतायी जा रही है कि अपने आत्माको ही नियत हुआ जो एक यह शरीर है, जो एक क्षेत्रावगाह होकर रह रहा है, जितनेमें शरीर है उतनेमें जीवप्रदेश हैं, इतना घुल-मिल करके जो रह रहा है शरीर, उसकी रक्षा कैसे हुई ? उसका थोड़ासा एक दिग्दर्शन है। इतना घुल-मिलकर रहने वाला भी अपना तो रहता नहीं, समय आता है और दिख जाता है और ममता होनेके कारण मोही जीव उस समय बड़ा व्याकुल होता है। हाय मरे, शरीर छूटा, उसका भी दुःख है, मगर जो संग प्रसंग वैभव दूकान सम्पदा बना रखी, जो लोकमें अपनी इज्जत बना रखी उसको देख करके, उसे विचार करके यह मोही जीव अत्यन्त बेचैन हो जाता है। इन बाहरी पौद्गलिक बातोंमें ममता न हो तो मरणके समयमें जीवको कष्ट नहीं होता। होगी थोड़ी बहुत वेदनाकी बात तो वह हल्की होकर रह जाती है। इस जीवको सबसे महान दुःख तो ममताका है, क्योंकि इसको सर्वस्व समझ रखा था। अब मर रहा है तो उस सर्वस्वपर निगाह है—हाय यह छूट रहा, सदाके लिए गया यहाँसे। बड़ा दुःखी होता है। तो जब हम इन बाहरी चीजोंमें अपना दिल फंसाये रहे तो दुःख तो होगा ही, यह बिल्कुल न्यायकी बात है। अगर दुःखसे छूटना है तो ऐसा सहज वैराग्य रहना चाहिए कि मेरा मेरे ज्ञानस्वरूपके सिवाय कुछ भी नहीं है। ये सब बाहरी बातें हैं। कैसे ही परिणमे, छिद जाय, भिद जाय, कहीं चला जाय, वियोगको प्राप्त हो जाय तो भी मेरा कुछ नहीं है इसमें। मैं तो एक सहज चैतन्यस्वरूपमात्र हूं, ऐसी जिसकी दृष्टि नहीं बनी और शरीरमें आत्मबुद्धि रही तो वह मोही जीव इस शरीरकी आसक्तिमें ऐसा कर्मबन्ध कर लेता कि इसे विचित्र शरीर धारण करने पड़ते।

शरीर यह इन्द्रियका समूह है, फिर भी आप देखते जाइये—निर्वृत्ति और उपकरण। जिस धामसे ज्ञान होता है वह निवृत्ति है। निवृत्त इन्द्रिय द्वारा होता है और उस इन्द्रियके ऊपर जो ढांचा लगा हुआ है यह उपकरण है। यह कैसे रचा जा रहा है कि नाना प्रकारके कर्मोंका उदय होता है और उस कर्मोदयका निमित्त पाकर ये शरीर वर्गणायें स्वयं उस प्रकार से बनती हैं, वृद्धिको प्राप्त होती हैं, यह सब निमित्तनैमित्तिक योगमें अपने आप ओटोमेटिक सब जीवोंमें निरन्तर चल रहा है। अगर कोई ईश्वर कर्ता होता तो प्रथम तो ईश्वर ही बड़ा दुःखी होगा। उसे बहुत बड़ा काम पड़ा है। कभी काम चल रहा, कभी बिगड़ भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जायगा, कभी काम बंद भी हो जायगा। अरे सब काम अपने आप चलता है। घड़ीमें चाभी भरी है तो हम उसे आंखोंसे देखें तो न देखें हो, वह तो चलती ही रहेगी। इस निमित्तनैमित्तिक योगका ऐसा प्रभाव है कि कहीं भी पदार्थ हो, कहीं भी जीव हो, कहीं भी कुछ हो, जैसा उपादान निमित्त योग्यता आदिकसे जैसा जो कुछ होनेको है वह होता रहेगा। हम उसका ख्याल करें तो, न करें तो, तो यह उपकरण है। उपकरणके निमित्तसे कोई ज्ञान नहीं करता। क्या ऊपर दिखने वाले जो ये कान हैं ये आवाज सुनते हैं? ये नहीं सुनते। वह तो एक भीतरी इन्द्रिय है। क्या यह जो सफेद काला गटा है यह देखनेका साधन बनता है? नहीं। जो उस कालेके अन्दर और काला तेजवान मसूरके दाने बराबर चक्षुइन्द्रिय है वह देखनेके काम आती है। इसी प्रकार रसना और घ्राणकी बात है। स्पर्शनमें भी यह ही बात है। लगता है जल्दी कि कोई चीज ऊपर गिरी ठंडी या गर्म तो तुरन्त उसके छूते ही ज्ञान कर लिया, पर एक चमड़ीके ऊपर जो मक्खीके पर बराबर अत्यन्त हल्की है वह ज्ञान करानेका काम नहीं करती। उसके अन्दर स्पर्शनइन्द्रिय है। वह परिचय करानेका काम करती है, मगर वह इतना पतला उपकरण है कि उसका व्यवधान समझमें नहीं आ सकता। कभी देखा होगा कि जा रहे हैं और भींतकी जरासी खरोंच लग जानेसे थोड़ा ऊपरकी पतली झिल्ली एक तरफसी हो जाती है। और इसको पता नहीं पड़ता, दर्द नहीं होता, कुछ अनुभव भी नहीं होता। अगर इन्द्रिय होती तो इन्द्रिय तो प्राण है। इन्द्रिय प्राणपर घात पहुंचे और यह वेदना न महसूस करे, यह कैसे हो सकता है? ऐसे ही निर्वृत्ति और उपकरण इनका जो समूह है वह द्रव्येन्द्रिय है। यह कलंक, यह भार, यह बोझ हम आपपर लदा हुआ है और यह मोही जीव इस कलंकको, इस भारको आदरकी दृष्टिसे देखता है, इस पर कौन पछतावा करे? उसमें तो इतनी योग्यता नहीं कि तुम इस कलंक और कीचड़के प्रति इतना आदरका भाव क्यों करते हो? यह शरीर जो लगा है यह दोष है। इसमें जो प्रीति करता, जो क्षुब्ध होता वह बड़े अंधकारमें है। लग गया शरीर साथ तो अब उसके ज्ञाता रहो। चूंकि जीव ऐसे ऐसे परिणाम करता है तो उन परिणामोंका इस प्रकारका प्रभाव है। लग गया यह सारा ढाँचा अब यह लग गया तो इसके बिना इस समय चलता नहीं। चलता तो जाता मगर आत्मामें इतना बल होता कि अपने सहज चैतन्यस्वरूपको निरख कर उसमें ही रमें और प्रसन्न रहे, ऐसा इसकी भीतरी बल काम देता है। तो यह शरीर छिद जाय, भिद जाय, कहीं जाय, इस आत्माका कोई बिगाड़ नहीं होता और जब अन्तरकी यह कला नहीं पायी इसने तो ऐसी घटनामें इस शरीरमे बड़ा पाला पड़ा है, इससे बड़ी उपेक्षा भी चल रही है। भूख है, प्यास है, सर्दी है, गर्मी है, रोग हो गया, अनेक बातें होती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, हम उनसे उपेक्षा नहीं कर पा रहे और ऐसी स्थितिमें जब वह वेदना हो जाय तो हम धर्मसाधना भी नहीं कर पाते हैं। तो थोड़ी एक ऐसी स्थिति है कि कुछ ख्याल करना पड़ेगा इसे। शरीरको भोजन खिला देते हैं मुनिराज, पर इतने विरक्त और आत्मधुनके धुनिया होते हैं कि वे आहार करना नहीं चाहते, उसे कलंक समझते। क्यों आहारके विकल्पमें पड़ूं, आत्मा में ही रहूंगा मगर यह 'गले पड़े बजाय सरे' जैसी बात है। जब स्थिति ऐसी है तो विवेक मानो हाथ पकड़कर समझाता है कि अरे तुम अभी आगे पीछेका कुछ ख्याल नहीं रख रहे। मुनि क्या ? एक वह उपयोग, वह धुन वह अपने आपके आत्माकी ओर लगा हुआ उपयोग, उस उपयोगको समझाता है यह विवेक कि चलो आहार करो, आगे ज्यादा ठनबन न करो, पीछे आपत्ति आ जायगी, तो यह मुनि आहारको उठता है। तो इतना सहज वैराग्य है कि आहार उसे चाहिए नहीं। आहारको उठते समय वह खेद मानता है कि मैं कहाँ विकल्पमें पड़ गया, मगर विवेक इसे उठवाकर रहता है। तुम इस तरहकी चर्या न करोगे तो ऐसी आपत्ति आ सकती है कि कहीं असमाधि भाव न बन जाय, कहीं दुर्गतिका बंध न हो जाय। तो सहज वैराग्यकी बात यह है और परिस्थितिकी बात यह है। जैसे इस इन्द्रियके माध्यमसे संसारके सुख भोगने जैसी एक विडम्बना है उसे यह ज्ञानी जीव नहीं चाहता, ऐसे ही इन इन्द्रियोंके माध्यमसे जो पदार्थोंकी जानकारियां होती हैं इन जानकारियोंको भी ज्ञानी नहीं चाहता। कहाँ है उसकी ऐसी दृष्टि ? कुछ ऐसा अलौकिक ब्रह्मस्वरूप इसके, ऐसा ध्यानमें समा गया कि जिसके लिए संसारी जीव तरसते हैं उससे यह अत्यन्त दूर भागता है। संसारी जीव तरसता है इस अलौकिक ज्ञान विज्ञानके लिए और पञ्चेन्द्रियके विषयोंके सुखके लिए, मगर ज्ञानी जीव इन जानकारियोंसे भी परे रहना चाहता है। मुझे यह ज्ञान न चाहिए, क्योंकि यह ज्ञान पराधीन है। मुझ परमेश्वर तत्त्वको पराधीनसे कोई वास्ता न रखना चाहिए और फिर यह इन्द्रिय ज्ञान ही उस बड़ी विपत्तिका प्रारम्भ कराता है। न देखा हो इन्द्रिय द्वारा रूप तो क्यों वह मनमें भाये और क्यों उसकी ओर आसक्त हो ? और फिर विशेष मोह करके यह जीव बड़ी आपत्तिमें पड़ जाय तो इस आपत्तिकी मूलमें जड़ क्या बनी ? प्रारम्भ कहाँसे हुआ ? तो उसका उत्तर आयगा इन्द्रियजन्य ज्ञानसे इस विडम्बनाका प्रारम्भ हुआ। इन्द्रियज ज्ञान और इन्द्रियज सुख दोनों ही इस जीवको सुहाते नहीं हैं। वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्दकी ही धुनमें रहता है। तो यह जो हम आपको विडम्बनाके जो साधन मिले हैं, इन्द्रिय रचना हुई है, शरीर मिला है ये सब क्या हैं, कैसे हैं, कितने काम आते हैं, इन सबका यह विवरण चल रहा है कि जो कुछ यह सामने दिख रहा ये सब द्रव्येन्द्रिय हैं। द्रव्येन्द्रिय पौद्गलिक हैं, मूर्तिक हैं, मुझसे भिन्न हैं, इन्हें छोड़कर यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव चला जायगा, यह यहीं पड़ा रह जायगा। न रहेगा तेज, न कर सकेगा इन्द्रिय व्यापार, मगर ढांचा तो बना ही रहेगा। ऐसी ये पौद्गलिक भिन्न इन्द्रियाँ हैं, शरीर है, इनके प्रति ममता रखकर ही आज जगतकी बिडम्बना बन रही है। झगड़ेका कारण क्या है? यह ही शरीर। इस शरीरका नाम क्या है? कल। कल शरीरको कहते हैं। जैसे सकलपरमात्मा, विकलपरमात्मा। कल, शरीर सहित परमात्माको सकलपरमात्मा कहते हैं। अरहंत भगवान सकलपरमात्मा हैं और कलरहित परमात्माको विकलपरमात्मा कहते हैं। शरीर रहित भगवान याने सिद्ध भगवान। कलके मायने हैं शरीर। जब कोई कहता है कि भाई कल कल न करो, हमें नहीं सुहाती तुम्हारी कलकल तो वह कलकल क्या है? शरीर शरीर का जो भिड़ाव है वही तो कलकल है। कलकल है विडम्बना, दंदफंद। तो यह कलकल शब्द बतलाता है कि शरीर शरीरका जो परस्पर भिड़ाव है, व्यवहार है बस वही कलकल कहलाता है। चाहे वह वचनों द्वारा हो, क्रिया द्वारा हो, बड़े चिन्तन द्वारा हो, वह सब कलकल है, विपत्ति है, विडम्बना है। उसका जो साधन बन गया है यह सब कर्म द्वारा रचित है। यद्यपि कर्म निमित्त मात्र है, शरीरकी जो वर्गणायें हैं उनके द्वारा ही शरीर बना है, कर्मोदयके बिना बन तो ले कोई ऐसा। तो जो निमित्त है उसके बिना जब हो नहीं पाता तो यह ही कहा जायगा कि यह सब कर्मके द्वारा रचा गया है, यह निमित्त दृष्टिसे कथन है। ऐसे निर्वृत्ति और उपकरण इन दोनोंके समूहका नाम है द्रव्येन्द्रिय। इस द्रव्येन्द्रियके लोभमें, इनकी रक्षाकी धुनमें, इनके साज श्रृङ्गारकी धुनमें, यह जीव बहिर्दृष्टि बनता है और अपने अनुपम अमूल्य ज्ञानानन्दनिधिको खो बैठता है। इस विडम्बनाके साधनभूत द्रव्येन्द्रियका वर्णन इस सूत्रमें आया।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥

लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियके दो भेद बताये गए थे—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। जो बाहरी रचना है, पौद्गलिक रचना है वह तो द्रव्येन्द्रिय है और जो भीतरमें उस प्रकारके जाननेकी योग्यता और तैयारी है वह भावेन्द्रिय कहलाती है। भावेन्द्रिय में दो अंग हैं—लब्धि और उपयोग। लब्धिका अर्थ है लाभ। चाहे लाभ कहो चाहे लब्धि कहो लभ धातुसे दोनों बने। लाभमें तो लभ धातुसे अं प्रत्यय हुआ, ये पुल्लिगके रूप बने और लब्धि में लभ धातुसे इक् प्रत्यय हुआ। क का लोप होनेसे ति बचता है, सो लब्धि बना। अब धातु एक है, प्रत्यय एक बोधक बना है। अर्थ करीब-करीब समान होना चाहिए, मगर इनके भेदसे आशयमें कितना अन्तर हो गया कि लाभका प्रयोग तो किया जाता है प्रायः बाहरी चीजोंके पानेमें। उनको धनका लाभ हुआ आदिक और लब्धिका उपयोग होता है कोई भीतरी तत्त्वके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पानेमें। जैसे लोग कहते हैं कि उनको अनुभूतिकी लब्धि हुई, उनको ऐसी जानकारीकी लब्धि हुई। लब्धि और उपलब्धिका प्रयोग प्रायः अन्तरङ्ग बातके लिए होता है। और लाभका प्रयोग बाहरी बातोंके लिए होता है। एक ऐसे प्रत्ययभेदसे व्यवहारमें भी कुछ-कुछ भेद पड़ गया। तो लब्धिका अर्थ किया है लाभ। किसका लाभ? इन्द्रियकी रचना बन सके इसकी आधार भूमिकाका लाभ। क्या जिस जीवको रसनेन्द्रियका क्षयोपशम होगा वही जीव रसना-इन्द्रियका लाभ ले सकेगा? तो द्रव्येन्द्रियकी रचनाका कारणभूत जो क्षयोपशमविशेष है उसका नाम लब्धि है। क्षयमें भी लब्धिका प्रयोग होता। नवकंचन लब्धि रमा धरन। भगवानको ६ लब्धियाँ प्रकट हुई हैं, ६ लाभ हुए हैं, ऐसा प्रयोग नहीं सुना गया है। ६ लब्धियाँ प्रकट हुईं। ऋद्धि समृद्धिकी तरह लब्धिका भी कुछ अन्तः सम्बंध है।

तो जिस जीवके दोइन्द्रिय हैं उसके स्पर्शन और रसना इन्द्रियावरणका क्षयोपशम है याने रसनाइन्द्रियके द्वारा ज्ञान कर सके, ऐसी योग्यता बने। रसनाइन्द्रियजन्य ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मका क्षयोपशम हो, वह कहलाता है लब्धि। तभी जीव उस इन्द्रियकी रचनाका लाभ करता है। मनुष्योंको कितनी लब्धियाँ मिली हुई हैं? भावेन्द्रियावरणका क्षयोपशम है, ५ लब्धियाँ तो ये हैं और नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशम है याने मनके द्वारा ज्ञान बन सके, उस ज्ञानको ढांकने वाले जो कर्म हैं उनका क्षयोपशम है। क्षयोपशमका अर्थ है कि उन कर्मोंके कुछ स्पर्धकोंका हट जाना, कुछका दब जाना और कुछका मामूली प्रभावमें उदय आना, ऐसी तीन बातें हों उसे क्षयोपशम कहते हैं। जैसे सरसोंका तेल पेलकर किसी शीशी में भर देते हैं। १०-५ दिन बाद देखेंगे तो उस शीशीमें गाढ़ा-गाढ़ा मैल नीचे बैठ जाता है और वह सरसोंका तेल बिल्कुल निर्मल दिखाई देता है। तो यह तो हुआ उस मैलका उपशम और उसी शीशीका तेल निकाल लिया जाय दूसरी शीशीमें और वह मैल वहीं जमा रह जाय, हट न सके तो उस दूसरी शीशीमें वह तेल बिल्कुल निर्मल रह गया। वह हुई एक क्षय जैसी स्थिति। और जैसे तेल निकाला शीशीमें डाला एक-दो दिन बाद वह शीशी हिल गई तो तेल कुछ निर्मल है, कुछ मलिन है, कुछ दबा हुआ है, ऐसी स्थिति बन जाती है। इस ढंगसे कर्मोंकी स्थिति बनती है उसे क्षयोपशम कहते हैं। तो इन्द्रियावरणका क्षयोपशम होना सो लब्धि है।

देखिये आत्माकी भीतरी तैयारी विकसित रूप बननेपर यह बाहर भी विकसित रूप बनता है और कोई इज्जत समृद्धि धन राज्य चला आदिक प्राप्त हों तो समझना चाहिए कि इसके आत्माने पूर्व समयमें कुछ विशेष क्षयोपशम पाया था, विशेष योग्यता पायी थी। तो बाहरी जो कुछ लब्धियाँ हैं वे सब एक अंतः निर्मल भावके कारण मिला करती हैं। इसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तरह शरीरकी भी बात है। बहुत घनिष्ट बात है। जीवका जैसा परिणाम होगा, जीवके उन परिणामोंकी निर्मलता, मलिनताके अनुसार चूंकि लब्ध ऐसा ही हुआ, सो ऐसा ही अनुकूल देह मिलता है। कोई कन्या उत्पन्न हुई, वह बड़ी दुर्गन्धित देह वाली है, ऐसे दृष्टान्त भी पुराणोंमें मिलते हैं, तो पूर्व जन्ममें मुनि निन्दा किया था या कुछ ऐसी ही मलिन बातें की थीं जिससे ऐसा कर्मबन्ध हुआ कि दुर्गन्धित देह मिला। तो आत्माके भावोंका यह सब फल है। बाहरी फल, भीतरी फल सब कुछ आत्माके भावोंपर ही निर्भर है। यहाँ यह बात बतला रहे कि यह जीव ज्ञान किस प्रकारसे करता है? इस हालतमें वह इस द्रव्येन्द्रियका तो आलम्बन लेता, इसका व्यापार करता और भीतरमें जाननेका उपयोग लगाता तो जानकारी बन जाती। मगर इन सबकी जड़ है लब्धि। लब्धि है तो सब काम बन जायगा। लब्धि नहीं है तो कोई काम नहीं हो सकता। तो वह लब्धि हुई मायने इस जीवपर जो ज्ञानावरण कर्म बैठा है सो उस उस इन्द्रियजन्य ज्ञानके आवरणका क्षयोपशम हो तो उस इन्द्रियकी रचना उसके होने लगती है।

देखो संसारमें जितने जीव हैं, उन सब जीवोंमें एक समानताकी बुद्धि तो लायें। जैसा मेरा स्वरूप वैसा सबका स्वरूप। हम और ये सब जीव एक समान हैं, और जैसे ये सब जीव हो गए वैसा मेरा होनेमें कोई रुकावट है क्या? जैसे मलिन परिणामोंका फल ये एकेन्द्रिय कीट आदिक भोग रहे हैं ऐसे ही मलिन परिणाम हम करेंगे तो हम भी ऐसा ही फल भोगेंगे। आज जो कुछ ठाट-बाट समागम सम्पदा मिली है उसपर रंच भी गर्व न करें। कितने दिनोंको यह समागम मिला? एक स्वप्नवत् समागम है। आखिर फैसला तो होगा अपने भावोंके ही अनुसार न? ऐसे उच्च समागम पाये हैं—श्रावक कुल, जैनशासन। तो चित्तमें हमको इनको इतना अधिक महत्त्व देना चाहिए कि हममें ज्ञानभगवानकी आराधना बने। जैसे कषायें मंद हों और हम मुक्तिके मार्गमें बढ़े चलें। यह संसार रहनेके काबिल नहीं है, क्योंकि सर्वत्र दुःख ही दुःख है और दुःख भी कुछ नहीं है। मोह ममता कर रहे इसलिए दुःख है। मोह ममत्व न हो तो दुःखका नाम नहीं। तो कुछ भीतर आत्माका ध्यान, आत्माका उपयोग, अपने आपका निर्णय, देहको भूल जाना, यह देह बाहरी चीज है, पौद्गलिक पिंड है, यह मैं नहीं, मैं तो अमूर्त ज्ञानानन्दस्वरूप हूं। एक अपने उस ज्योतिर्मय अंतस्तत्त्वकी सुध रहे, यह है अपने आपके उत्थानका उपाय। हाँ तो इस समय जो हम आप लोगोंको ज्ञान बन रहा है वह सब इन्द्रियोंके आधीन चल रहा है। ऐसी स्थिति होनेपर भी जिस समय आत्माके सहज सिद्ध परमात्मस्वरूप अंतस्तत्त्वका अनुभव होता है तो मन और इन्द्रिय सब अलग हट जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई प्रश्न करे कि उस आत्मानुभवकी स्थितिमें हम क्या कहें— मतिज्ञान कहें कि श्रुतज्ञान कहें कि अवधिज्ञान कहें ? क्या कहें ? और ५ ज्ञानोंको छोड़कर ज्ञानकी और कोई पर्याय बतायी नहीं तो हम आत्मानुभवको किस ज्ञानमें ले जायें ? तो परमार्थत: तो यह पाँचों ज्ञानोंमें ही नहीं है आत्मानुभव जैसी स्थिति, यह आत्मानुभव इन्द्रियसे उत्पन्न होता है या मनसे ? इन्द्रिय और मनसे जो भी ज्ञान उत्पन्न होते हैं उनमें ऐसी रुकावट है कि वह परोक्ष ज्ञान है और ज्ञानमें ज्ञान समा जाय, ऐसी स्थितिको नहीं ला सकता, क्योंकि ये इन्द्रिय सब बाहरकी ओर इस जीवको खींच ले जाती हैं, और खुद इन इन्द्रियोंमें ऐसी प्रकृति है कि वे खुदका तो कुछ ज्ञान ही नहीं कर पातीं। आंखोंसे सारा कमरा देख लिया, सारा मैदान देख लिया, सब कुछ देख लिया, पर यह आँख अपनी आँखको नहीं देख पाती, आँखमें अगर काजल लगा है तो उसे भी यह आँख नहीं देख पाती। इन्द्रियमें ऐसी प्रकृति पड़ी है कि ये बाहरका ज्ञान करायेंगी, अपने आपका ज्ञान नहीं करा सकती। ऐसी अनेक बातें हैं। यह जीभ दुनियाभरका स्वाद ले ले, पर अपना स्वाद नहीं जानती। आखिर जीभमें भी तो कोई रस होगा। आप कहेंगे कि कभी-कभी तो जीभका स्वाद आ जाता है, तो जीभका स्वाद नहीं है, वह तो थूक है। जीभ खुद अपना स्वाद नहीं ले पाती। और तो जाने दो। ताज्जुब की बात है कि यह स्पर्शन इन्द्रिय खुद अपने आपके स्पर्शका बोध नहीं कर सकती। उसी आदमी को बुखार चढ़ा है, हरारत है, तो हरारत तो सारे शरीरमें है पर वह बिना एक हाथसे दूसरे हाथकी नाड़ी पकड़े नहीं समझ पाता कि हमको कितना बुखार है। तो एक हाथके द्वारा दूसरे हाथको छुवा तब अपना स्पर्श जान पाया। कितने ताज्जुब की बात है कि अपने आपको यह स्पर्शन इन्द्रिय नहीं समझ पाती कि मैं ठंडा हूं कि गर्म हो गया हूं। ऐसी ये इन्द्रिय बेचारी असमर्थ हैं और ऐसा ये उल्टी दिशाकी ओर भाग रही हैं कि उन इन्द्रियोंसे हम आत्माके अनुभवकी क्या आशा रख सकते हैं ? जब आत्माका अनुभव होता तब इन्द्रिय और मनके व्यापारसे परे स्थिति हो जाती है। उस ज्ञानको हम किस ज्ञानमें शामिल करें ? भाई कर लो, उस आत्मानुभवसे एकदम पूर्व जो ज्ञान हो रहा हो बस वह ही ज्ञान वह है, मान लो यों पर वास्तविकता तो न आ सकी। कैसा यह बन्धनरहित है अंतस्तत्त्व ? यह स्थिति एक बहुत दुर्लभ है और जिनको यह स्थिति मिली उनका बेड़ा पार हो जाता है और इस पर जो संकट छाया है बस यह सब ज्ञानावरणका संकट है।

तो जिस-जिस इन्द्रिय ज्ञानावरणका क्षयोपशम हो तो उसके उस इन्द्रियकी रचना बनती है और बननेके बाद भी वह लब्धि तो रहती ही है। अब साथ ही में उपयोग भी बनाया जाय, उस ओर जाननेके हम अभिमुख होवें तो इस द्रव्येन्द्रियका निमित्त पाकर ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जाता है। इसलिए भीतरमें जो भावेन्द्रिय है—वह लब्धि और उपयोग रूप है। जैसे कोई मनुष्य ५ भाषाओंको जानता है—हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत और प्राकृत, किन्तु एक पत्र संस्कृतमें लिखा हुआ आया, उसे वह पढ़ रहा है। तो उसका उपयोग कहाँ लगा? केवल एक भाषामें। तो जब लब्धि है और उपयोग है तो वह जानकारी बन गई। लब्धि लब्धि ही रहे, उपयोग न रहे तो यह जानकारी नहीं बनती, और लब्धि नहीं है तो उपयोगका सवाल ही नहीं है, उपयोग किया ही नहीं जा सकता है। तो इस तरह भीतरमें जो ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम है और साथ ही पदार्थोंको जाननेके लिए हमारी भीतरकी तैयारी है, उपयोग लगाये है तो ऐसे जो भीतरमें दो अंग हैं– लब्धि और उपयोग, ये भावेन्द्रिय कहलाते हैं। और द्रव्येन्द्रियकी बात तो इससे पहले सूत्रमें बतायी गई है। तो यों लब्धिसे बन गई ये इन्द्रिय और इन्द्रिय बनने पर उन इन्द्रियोंका निमित्त कारण उपयोग लगाया, उस समय बन गया ज्ञान। तो भीतरमें तो हुई लब्धि और उपयोग और बाहरमें जो इन्द्रिय हैं वहाँ हैं निर्वृत्ति और उपकरण। यहाँ एक आशंका बन सकती है कि उपयोग तो एक प्रकारका फल है, लब्धि हुई, क्षयोपशम हुआ, इन्द्रियाँ मिलीं और उनका प्रयोग बना कि उपयोग बन गया, जानकारी बन गई, तो उपयोग तो फलरूप है। उसका इन्द्रिय नाम न धरना चाहिए। कहते हैं ना—भावेन्द्रिय लब्धि और उपयोगको कहते हैं। तो उपयोग कैसे इन्द्रिय बन जायगा? वह तो इन सबके प्रयोगका फल है, कार्य है, उपयोग है। कारण बन रहे हैं, लब्धि हैं, इन्द्रियां हैं।

तो उत्तर इसका यह है कि कार्य कारणका उपचार करके भी तो बात कही जा सकती है। वह एकदम निकटकी चीज है उपयोग। तो फल होनेपर भी और चूंकि वह इन्द्रियके निकट वाली चीज है और एक भीतरका उस कालका उद्यम है, इस कारण वह भावेन्द्रियका अंग बन जाता है अथवा एक सीधी बात देखो ना—इन्द्रियका अर्थ क्या किया गया था? इन्द्रिय मायने क्या? जो इन्द्रका लिङ्ग हो। इन्द्र मायने यह परमेश्वर आत्मा भगवान निज निज है, कोई इसका जो चिह्न है सो इन्द्रिय है। तो इस तरह लब्धि और उपयोग ये इस इंद्रके ही तो चिह्न हैं, आत्माका ही तो यह परिचय है, इसलिए लब्धि और उपयोग—ये दोनों भाव इन्द्रिय कहलाते हैं। भीतरमें हुआ एक कर्मका क्षयोपशम, कर्मका हल्का होना, कर्मका हट जाना, जिसके भीतरमें ज्ञानकी योग्यता बने। तो जहाँ योग्यता बनी वहाँ उसे इस इन्द्रियका लाभ हुआ।

प्राप्त योग्यताका सदुपयोग न करनेपर दुर्गतिका उपभोग—अब तो उपकरण पा करके यह उपयोग करे और यह सही जानकारी बनाये। कैसा चक्र चल रहा है हम आपकी

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानकारीमें ? जाननेका तो ले रहे हैं प्रयोग, परन्तु वह जानना क्या है ? क्या हो रहा है, इसका परिचय बिरले पुरुषोंको होता है। कोई भी चीज पायी हो—कहते हैं ना इसका उपयोग करो, यह वस्तु व्यर्थ न पड़ी रहे। तो इस प्रकार आत्माने यदि लब्धि पायी है तो उसका उपयोग करो। हम आप सबको लो कि गणितके बड़े-बड़े हिसाब लगा लें और बड़े-बड़े व्यापारके कमाईके काम कर लें, अनेक युक्तियाँ निकाल लें। सरकार अगर अन्याय करे तो अपन खुद एक कलाके बलसे रास्ता निकाल लें तो ये सारी बातें बुद्धिके बिना होती हैं क्या ? बुद्धि तो प्रकट है, क्षयोपशम तो अवश्य है। अब ऐसा क्षयोपशम पाकर, एक जाननेकी योग्यता पाकर यदि ज्ञानके अर्जनके लिए न चले तो यह हम आपके लिए एक कितनी बड़ी भूलकी बात होगी ? तो लब्धि पायी है तो उसका उपयोग सही करना चाहिए। अगर सही उपयोग न किया जायगा लब्धियोंका, बड़ी जानकारी की हमने, योग्यता पायी और उसके साधनभूत ये पञ्चेन्द्रियाँ मिल गईं, मन भी मिल गया, अब यदि हम इन इन्द्रिय और मनका उपयोग सही नहीं करते तो इन्द्रियकी ओरसे मानो यह उत्तर मिल जायगा कि हम आपको मिले थे, मगर आपने मेरा उपयोग कुछ नहीं किया, मेरी कुछ कदर नहीं किया तो आपके पास मेरा क्या जाना ? तो जब हमने कर्णेन्द्रियकी कदर नहीं की, वीतराग वाणीका सुनना, भगवद्भक्तिका श्रवण करना, धर्मोपदेश सुनना, हितकी बात सुनना, ये काम यदि कानोंसे नहीं किए गए तो मानो कान यह कह देंगे कि हम तो बड़ी मुश्किलसे आपकी सेवामें आये थे, मगर आपने तो हमारी कदर ही नहीं की। अब हमको आपके पास रहनेसे क्या फायदा ? तो मतलब यह है कि कान न रहेंगे, नदारत हो जायेंगे, चारइन्द्रिय जीव बन जायेंगे। इस मनुष्यने आँख पाकर आँखका यदि सदुपयोग न किया, स्वाध्याय करना, सत्संगमें रहना, शांत मुद्रावोंके दर्शन करना, यह सब है एक चक्षुइन्द्रियसे लाभ लेनेकी बात, मगर लाभ न लिया जा सका तो मानो चक्षुइन्द्रियकी ओरसे ही यह वकील एकदम कोरा जवाब दे देगा कि हम तो बड़ी कठिनाईसे आपकी सेवामें आये थे और आपने हमारी बात भी न पूछी, हमारी कुछ कदर भी न की तो अब हमको क्या प्रयोजन है आपसे ? मायने यहाँसे मरण करनेके बाद ये आँखें न मिलेंगी, तीनइन्द्रिय जीव बनेंगे। ऐसे ही यदि घ्राणइन्द्रियका सदुपयोग नहीं करते तो ये इन्द्रियाँ भी न प्राप्त होंगी। रसनाका सदुपयोग न करें तो द्वीन्द्रिय भी न बन पायेंगे।

स्पर्शनइन्द्रियका सदुपयोग न होनेपर निगोद जैसी स्थितिका उपभोग—अच्छा, यदि स्पर्शनका हम सदुपयोग न करें तो कह दें क्या कि स्पर्शनइन्द्रिय न मिलेगी। अगर यह वाणी सुननेको मिले कि जो स्पर्शनइन्द्रियका दुरुपयोग करे तो उसको स्पर्शनइन्द्रिय न मिलेगी। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह तो बड़ा अच्छा है। स्पर्शनइन्द्रिय न होनेके मायने है सिद्ध भगवान हो गए। सो ऐसा नहीं होगा, किन्तु स्पर्शनइन्द्रियका सदुपयोग न करे तो उसका फल यह है कि एकेन्द्रिय नामके स्पर्शनइन्द्रियकी लब्धि होनेपर भी नाम नामकी बात रहेगी, उसका कोई एक व्यक्त फायदा नहीं उठा सकते। बन गए निगोद। एक तो निगोदमें भी ज्ञान क्या और फिर एक शरीरके अनन्त निगोद स्वामी। देखो जगतमें जितनी दुर्गतियाँ हैं उन सब दुर्गतियोंमें सबसे बड़ी विडम्बना वाली दुर्गति यह है कि शरीर एक, और मालिक अनन्त जीव। यहाँ अगर कह दिया जाय कि तुम्हारे शरीरके १० जीव मालिक रहेंगे तो आप पसंद न करेंगे। आप समझेंगे कि मैं तो इतना दूषित बन जाऊँगा, इतने लोगोंसे लद जायेंगे। तो पापकर्मका वह फल है कि जहाँ जीव तो अनन्त हैं स्वामी और शरीर मिला है उनको एक और जब एक साथ जन्म लेते, एक साथ मरण करते और एक साथ सांस लेते, जो भी है, एक कविने कहा कि जो लोग बहुत तीव्र मोही हैं स्त्रीमें या किसीमें उनके सुखमें तो सुख मानते, उनके दुःखमें दुःख मानते, उनके मुखको ही देखते रहते हैं तो जो लोग ऐसा करते हैं कि स्त्री या अन्य किसीसे जिससे प्रीति हो उसका सुख दुःख समझते, उसकी वेदनामें अपनी सहानुभूति रखते मोहवश तो मानो वे निगोदमें सब कुछ निभा लें। बात जो बीतती है उसका वे मोही जीव अभ्यास कर रहे हैं, क्योंकि निगोदमें जाकर उन्हें यही कवायत करनी पड़ेगी। एक साथ जन्म हो, एक साथ मरण हो, एक साथ सबकी एकसी दशा बने तो उसका अभ्यास मानो निगोद जाने वाले मनुष्य यहाँ कर रहे हैं। तो यह निगोद दशा तो एक बड़ी दुर्गतिका स्थान है कि शरीर तो एक, और उसके स्वामी अनंत। यह इन्द्रियका प्रकरण है।

इन्द्रियज ज्ञानकी हेयताका संकेत—यहाँ यह बताया गया है कि संसारी जीवोंको जानकारीमें दोनों प्रकारकी इन्द्रियाँ साधक होती हैं—(१) द्रव्येन्द्रिय और (२) भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय तो शरीरके भीतरकी रचना है और भावेन्द्रिय भीतरका क्षयोपशम, योग्यता और जाननेकी तैयारी यह है भीतरकी इन्द्रिय। इन्द्रिय पाकर मौज मानना कि खेद मानना? मौज कम मानो, खेद अधिक मानो। खेद यह मानो कि हाय कैसा इस परमेश्वर अपने आप ज्ञानस्वरूप ज्ञानसे ज्ञानकी परिणति करता रहे, ऐसा उसका स्वभाव है, पर क्या विकट स्थिति हुई कि इन्द्रियके द्वारा हम जान पा रहे हैं। ये इन्द्रियाँ चाहने योग्य नहीं, कोई भी इन्द्रिय और इन्द्रियसे होने वाला ज्ञान और आनन्द भी चाहने योग्य नहीं है।

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥१६॥

जीवलक्षणके प्रकरणमें संसारीके ज्ञानोपकरणरूप इन्द्रियोंका कथन—दूसरे अध्याय में जीवतत्त्वका वर्णन चल रहा है। तो सर्वप्रथम तो लक्ष्यमें आ जावे कि जानें तो कैसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानें लक्ष्यमें आया, जिसको लक्ष्य बनाया उसे बतानेके लिए ५३ भावोंका वर्णन किया, क्योंकि ५३ भावोंके रूपमें जीवकी पकड़ होती है। ये ५३ भाव लक्षण नहीं हैं जीवके, क्योंकि लक्षण वह होता है जिसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोष नहीं होते, किन्तु जीव जरूर हैं ये सब। औपशमिक भाव वह भी जीवका परिणाम, क्षायिक भाव वह भी जीवका परिणाम, औदयिक भाव यह भी जीवका परिणाम। तो लक्ष्यमें तो ये सब स्वतत्त्व आ जाते हैं, पर यह लक्षण नहीं बनता। तो स्वतत्त्वका वर्णन करनेके बाद फिर लक्षण बताया गया जीवका लक्षण उपयोग है। फिर जिसका लक्षण उपयोग है उस जीवके भेद बताये गए—संसारी और मुक्त। मुक्तका वर्णन अधिक है नहीं, क्योंकि एक समान हैं, महिमा अधिक है, पर वर्णन करनेको बात अधिक नहीं है। तो संसारी जीवका ही वर्णन करना अभीष्ट है। संसारी जीव दो प्रकारके हैं—त्रस और स्थावर। त्रस कौन कहलाते हैं जो दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय हैं सो त्रस हैं, इसमें इन्द्रिय शब्दको सुनकर यह जिज्ञासा बनी कि इन्द्रिय किसे कहते हैं? इन्द्रियका स्वरूप बताया, इन्द्रियके भेद बताये। अब यह बतला रहे हैं कि जो ५ इन्द्रिय बताये हैं वे कौन-कौन हैं? इसका उत्तर है—इस सूत्रमें स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये ५ इन्द्रियाँ हैं। सूत्रमें इन्द्रियका जिक्र नहीं है खाली नाम दिया है। तो सूत्र जैसे बना है उसके अनुसार तो यह अर्थ है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र हैं। अब ये क्या हैं? सो इन्द्रियका प्रकरण चल रहा तो पंचेंद्रियाणि इस सूत्रसे इंद्रियाणि की अनुवृत्ति ली गई। यद्यपि पंचेंद्रियाणि सूत्र और प्रथम सूत्रके बीचमें तीन सूत्र और आये, लेकिन वे तीनों सूत्र इन्द्रियकी ही बात कर रहे हैं इसलिए वहाँ कोई फर्क न पड़ेगा अनुवृत्ति लगानेमें। तो इन्द्रियाणिकी अनुवृत्ति होनेसे अर्थ बना नाम लेकर कि ये ५ इन्द्रियाँ हैं, इनका अर्थ क्या है? स्पर्शन।

स्पर्शनादिका करणसाधनमें परिचय—देखिये इन इन्द्रियोंका अर्थ दो ढंगसे सुनना है—(१) करणसाधन (२) कर्तृसाधन। इनका प्रयोग हर जगह दो ढंगमें होता है। जैसे कहते हैं ना कि मैं हाथके द्वारा काम करता हूं। यों भी लोग बोलते हैं और यह हाथ काम करता है यों भी बोलते हैं। तो हाथ काम करता है यह तो कर्तृसाधन है, क्योंकि इसमें स्वतंत्रताका प्रकाश है। हाथ काम कर रहा और करणसाधनमें परतंत्रता जैसी झलक है—मैं हाथके द्वारा काम करता हूं। एक बीचके माध्यम मूलमें वह परतंत्रता सी जंची। बात एक है मगर कहने-कहनेमें ये दो फर्क आते हैं। जैसे मैं काम करता हूं और मेरे द्वारा काम हो गया। बात दोनोंमें एक ही कही गई पर आशयमें कितना अन्तर है? यद्यपि अहंकारकी पुट दोनोंमें जंच तो रही है, मगर मैं काम करता हूं, मैंने काम किया, इनमें अहंकारकी मात्रा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेष है और मेरे द्वारा काम हो गया, मेरे निमित्तसे काम हो गया, इसमें अहंकारका पुट कम है। तो बोलचालमें और इन साधनोंके फर्कमें इसके साथ बहुतसे फर्क आ जाते हैं। इन्द्रियका अर्थ समझानेके लिए दो साधन उपयोगमें लेना हैं—जैसे स्पर्शन, जिसके द्वारा छुवा जाय उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं। जिसके द्वारा आत्मा स्पर्शका ज्ञान करे उसे स्पर्शनइन्द्रिय कहते हैं। ज्ञान करने वाला आत्मा मगर करण जब लगा दिया जाता साधकतम तो वहाँ परतंत्रता आ जाती है। और इससे यह साफ जाहिर हो रहा है कि आत्मा विवश है और यह स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ज्ञान कर पा रहा है।

स्पर्शनादिका कर्तृसाधनमें परिचय—कर्तृसाधनमें सीधी हुई बात आती है। जो स्पर्श करे सो स्पर्शनइन्द्रिय, जो छुवे सो स्पर्शनइन्द्रिय। इसमें स्वातंत्र्यकी जरूरत नहीं। लोकमें व्यवहार भी दोनों प्रकारका होता है, इसलिए विवक्षा दोनोंकी की गई है। कब स्पर्शन इन्द्रिय काम करती है और कब इसके द्वारा यह जीव ज्ञान करता है? जब जीवको ऐसी योग्यता हो और वातावरण ऐसा हो कि वीर्यान्तरायका तो हो क्षयोपशम और जिस इन्द्रिय द्वारा जाना जा रहा है उस इन्द्रियावरणका हो क्षयोपशम और जो कुछ भी अंग मिला है उस नामकर्मका हुआ लाभ, कहीं उपांग मिले हैं तो अंगोपाङ्गका हुआ लाभ तो ये इन्द्रियाँ काम करती हैं। जैसे एक स्पर्शनइन्द्रिय जिसके पास है उसको ही लिया जाय एकेन्द्रिय जीव, उससे स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा जाननेका, अनुभवनेका अगर बल नहीं प्रकट होता तो कैसे काम बने? उसके भी वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम है और स्पर्शन इन्द्रियावरणका क्षयोपशम है और स्पर्शन इन्द्रियावरणका क्षयोपशम है तब उस इन्द्रिय द्वारा ज्ञान कर पाता है। जैसे यहीं देख लो मनुष्योंको जैसे भोजन करनेमें आनन्द आता है तो गाय भैंसको जब उन्हें भोजन दिया जाता खली भुसका तो वे भी कितना आनन्द मानते हैं? जितना आनन्द मनुष्योंको मानो हलुवा पूड़ी पकौड़ी खानेमें आता है उतना आनन्द क्या पशुओंको भुसमें खली या कुछ आटा या अन्न डाल देने पर नहीं आता है? और इन चारइन्द्रिय जीवोंको भंवरा, मक्खी ततैया वगैरहको उनकी कोई चीज मिल जाय, जैसे मक्खीको थूक, कफ वगैरह मिल जाय तो क्या वे मनुष्योंसे कम मौज समझते हैं? और ये वनस्पति पेड़ समयपर पानी बरष जाय और कुछ खाद पा जायें तो क्या ये उतना मौज नहीं मानते जितना कि मनुष्य मानते? तो उनके भी मौजका अनुभव है, वीर्यान्तरायका क्षयोपशम है इन सबके। जो जितना ज्ञान कर पा रहा है उसको उतने अंतरायका क्षयोपशम है। और उस इन्द्रियावरणका क्षयोपशम है। जीव जिसके द्वारा छुवे उसे स्पर्शन कहते हैं, जिसके द्वारा आत्मा रसन करे, स्वाद ले, रसे उसे रसना इन्द्रिय कहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुतः सर्वत्र ज्ञानकी संवेदन—देखो निश्चयनयसे यह जीव किसी वस्तुका स्वाद ले ही नहीं सकता। यह तो अपनी कल्पना बना सकेगा, भाव बना सकेगा, ज्ञान कर सकेगा और अनुभव कर सकेगा। मगर रसना इन्द्रिय द्वारा फलके रसका ज्ञान करके रसना केवल एक साधन है ज्ञान कराये– यह मीठा है उस ज्ञानका मौज लिया इस जीभने। रसका मौज नहीं लिया क्योंकि रस गंधादिक पुद्गलकी चीजका आत्मामें प्रवेश नहीं होता। वह रसज्ञान किया उस ज्ञानका मौज ले रहा है यह जीव, पर मोही जीव ऐसा भान नहीं कर पाता कि मैं रस-विषयक मौजका ज्ञान ले रहा हूं। वह सीधा यह समझता है कि मैं रसका मौज ले रहा हूं सो वह पदार्थोंकी प्रीति करता है, उनको चबाता है और उनपर ही दृष्टि रखता है। जो तात्विकता है वह मोहीकी दृष्टिमें नहीं है। किसी विषयका उपभोग हो पांचों इन्द्रियोंमें से और मनमें से इन छहों विषयोंमें केवलज्ञानका ही मौज लिया जा रहा है। अन्य बातका मौज यह जीव ले ही नहीं सकता। चाहे मोही हो, अज्ञानी हो, कैसा ही हो। वस्तुस्वरूप ही नहीं कि परसे कुछ मिले। वस्तुके स्वरूपमें ही यह बात नहीं है कि किसी परद्रव्यसे किसी परद्रव्यका गुणपर्याय इस आत्माको मिल सके। तो यह सोचना सब भ्रम है कि मैं अमुक उपभोग करता हूं, अमुक विषयोंको भोगता हूं, मैं खली का मौज लेता हूं, भोजनका मौज लेता हूं, सभा सोसाइटियोंमें बैठकर, लोगोंकी प्रशंसायें सुनकर उनमें अपना यश आख्यान सुनकर मैं उनका मौज ले रहा हूं ऐसा मानता है मोही जीव, लेकिन यह किसीका मौज नहीं ले सकता। इन सब घटनाओंमें जो यह जान रहा, समझ रहा, मौज ले रहा, मगर इस अज्ञानके साथ ले रहा कि वह यह समझ बनाता है कि मैं इन पदार्थोंका मौज ले रहा हूं। कितनी दो टूक बात है, भीतरमें कोई काम कर सकते तो बनता नहीं, मगर उस कामको अंगेज रखा है। करते बनता नहीं पर उसमें लगाव, मोह ये सब बना रखा है नपुंसकोंकी भांति। नपुंसक किसे कहते हैं? जिनके कामवासना पुरुष और स्त्रियोंसे कई गुणी होती है मगर उपभोग कुछ कर ही नहीं सकते, काम कुछ कर ही नहीं सकते। मगर विकल्पमें सब को अंगेज रखा है। तो ये संसारी जीव नपुंसक हैं। ये परद्रव्यका कुछ कर सकते ही नहीं हैं, मगर परद्रव्यको अंगेज रखा है। तो पुरुष कौन है? पुरुष वह है जो अपने आपके बलको संभालता है और अज्ञानको हटाता है। जो कर सकता है उसके करनेमें आगे बढ़ रहा है, जो स्वयं कर सकता है परकी अपेक्षा बिना कर सकता उस अन्तःकार्यमें जो बढ़ रहा है उसका नाम है पुरुष और जो किया ही नहीं जा सकता उसको लपेट रहा है उसे कहते हैं नपुंसक। तो यह इन्द्रियके द्वारा भी जाना जा रहा है। केवल एक अपना ज्ञान, अपनी समझ, अपना विकल्प बनाता, उसमें जो विषय हुआ उसपर दृष्टि देकर कहा जाता है कि इस मनुष्यने इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्पर्श, रस, गंध, वर्णके शब्दको भोगा। घ्राणेन्द्रिय जिसके द्वारा आत्मा गंध ले उसे घ्राण कहते हैं। चक्षुइन्द्रिय जिसके द्वारा आत्मा पदार्थोंको देखे उसे चक्षुइन्द्रिय कहते हैं। श्रोत्र-इन्द्रिय अथवा कर्ण कहो, कर्ण धातुसे कर्ण बना और श्रु धातुसे श्रोत्र बना, जिसके द्वारा आत्मा सुने उसे श्रोत्र कहते हैं। यह तो हुआ कर्णसाधनका अर्थ। उसके द्वारा अर्थ लगा कि परतंत्रता रहेगी और स्वतंत्रताकी विवक्षामें, कर्तृसाधनके रूपमें यों अर्थ लगेगा कि आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, कहते भी हैं लोग कि मेरी आँखें खूब देख रही हैं। बात वही कही जा रही है व्यवहार शब्दोंमें, मगर स्वतंत्रता और परतंत्रताका इसमें भान है। तो जिन-जिन जीवोंके वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम है, इन्द्रियाकरणका क्षयोपशम है, अंगोपांग नामके बल से इस इस प्रकारसे ज्ञान किया करती हैं ये हैं ५ इन्द्रियाँ।

स्पर्शन इन्द्रियका प्रथम निक्षेपणका कारण—अच्छा अब जरा इन इन्द्रियोंमें क्रम देखिये—इस प्रकारसे ही क्यों क्रम किया गया? स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, तो इस क्रमके अनेक कारण हैं। पहला सीधा कारण तो यह है कि जीवोंमें जो इन्द्रिय वालोंका विभाग है—एकेन्द्रिय उनमें कौनसी हो सकती है तो उसको पहले रखा। दो इन्द्रिय उनमें कौनसी इन्द्रिय बढ़कर दोइन्द्रिय कहलाती? उसको बादमें रखा। तीनइन्द्रिय जीव—दो-इन्द्रियसे अधिक कौन इन्द्रिय बढ़ गई, जिससे कि तीनइन्द्रिय कहलाने लगा? उसे तीसरे नम्बर पर रखा। चारइन्द्रिय जीव। अब उससे बढ़कर चारइन्द्रिय बना, उसका नाम आगे रखा। पञ्चेन्द्रिय जीव जिस इन्द्रियके बढ़नेसे पञ्चेन्द्रिय बन गया उसका नाम बादमें रखा। पर दूसरा कारण भी देखिये स्पर्शनइन्द्रिय तो सर्व संसारमें पायी जाती है। चाहे मनुष्य हो, देव हो, मेढक वगैरह पशु हों या पेड़ पौधे पृथ्वी वगैरह हों, प्रत्येक संसारी जीवमें स्पर्शन इन्द्रिय पायी जाती है। तो सर्व शरीरव्यापी होनेके कारण स्पर्शनका ग्रहण पहले है। तीसरी बात—सारे शरीरमें व्याप रही है स्पर्शनइन्द्रिय, श्रोत्र कितनी जगहमें रहते, घ्राण कितनी जगहमें रहती, जो मुखके ऊपर नाक दिख रही है यह घ्राण नहीं, यह तो घ्राणेन्द्रिय का ढक्कन है जिससे कि उसमें चोट न पहुंचे। उस घ्राणेन्द्रियकी रक्षाके लिए मानो यह ढक्कन बना है। इस ढक्कनमें दो छिद्र हैं, मानो ये दो दरवाजे लगे हैं उस घ्राणेन्द्रिय तक पहुंचनेके लिए। जब तक वह धाम न मिले तब तक भीतर घुसते जावो। वह एक धाम जहाँ से दो रास्ते शुरू होते हैं वहाँ है कोई सूक्ष्म पुद्गल जिसके छू जाने पर, जिसके द्वारा छू गया तो स्पर्शनइन्द्रिय बन गया, जिसके द्वारा यह सूँघता है, कैसे सूँघता है? छूकर नहीं। छूकर तो स्पर्शका ज्ञान होता है। इस परमेश्वरकी कैसी लीला हो रही है इस वक्त कि ये सब बातें एक अचरजमें बन रही हैं। ये इन्द्रियाँ किस ढंगसे अपना काम कर रही हैं? कान कैसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्दोंको सुन लेते ? क्या छू कर ? छूनेसे तो स्पर्श आ गया। भले ही शब्द छुवा गया, मगर छूनेके कारण सुना नहीं गया, किन्तु वह तो निमित्तके उद्भूत है जो कोई प्रक्रियासे इसने सुन लिया। तो स्पर्शनइन्द्रिय सर्वशरीर व्यापी है। जिस आँखसे हम देखते हैं सो उस आँख पर कोई चीज लग जाय तो किसका ज्ञान हुआ ? स्पर्शका ज्ञान हुआ कि देखनेका ? स्पर्शका ज्ञान हुआ। और देखनेका ज्ञान कैसे होता ? छूनेसे तो होता नहीं। होता कोई एक विचित्र ढंगसे। इन्द्रिय ही तो है। अपने ढंगसे जाना। तो यह स्पर्शनइन्द्रिय सर्व शरीरोंमें व्यापी है, इस कारण स्पर्शनइन्द्रियका सर्वप्रथम नाम लिया। तीन कारण हुए।

रसना घ्राण चक्षुके क्रमका कारण—इसके बाद रसनाइन्द्रियका नाम आया। कैसे ? रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। अब इस समय यह बात देखना कि कौनसी इन्द्रिय और कितनी जगहको घेरती है, स्पर्शनइन्द्रियने कितनी जगह घेरा ? सारा शरीर घेरा। उसके बाद कुछ कम जगह रसना इन्द्रिय घेरती, फिर भी घ्राणेन्द्रिय श्रोत्रकी अपेक्षा ज्यादा जगह घेरती है। क्रम तो यह है वास्तविक घेरनेकी अपेक्षासे उस स्पर्शनने अधिक जगह घेरा, जीभने उससे कम जगह, घ्राणने उससे भी कम जगह घेरा, और कानने उससे कम जगह घेरा और सबसे कम जगह घेरा आँखने। तो इस क्रमके हिसाबसे यह क्रम बनता है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रोत्र और चक्षु। आत्माके प्रदेश क्रम-क्रम घिरते, इसके हिसाबसे यह क्रम होना चाहिए। लेकिन वे दो कारण और ज्यादा हैं। वे कौनसे कारण हैं कि वह जीव कम है और एकेन्द्रिय जीवमें यह, दोइन्द्रियमें यह, तीनइन्द्रियमें यह और चारइन्द्रियमें यह। अगर इस तरह बनता कि उस चारइन्द्रिय जीवमें स्पर्शन होता, रसना होती, घ्राण होती और कर्ण होते, आँखें न होतीं, इस तरह अगर चारइन्द्रिय जीव होता तो यह क्रम रखा जाता सूत्रमें—स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रोत्र और चक्षु। तो सभी कारणों पर दृष्टि देना है, एक तो यह बात आयी।

सर्वसे अधिक उपकारिताके कारण श्रोत्रइन्द्रियका अन्तमें निक्षेपण—दूसरी बात यह आयी कि इन इन्द्रियोंमें श्रोत्रइन्द्रिय बहुत उपकारी इन्द्रिय है, यों तो लड्डू पेड़ाकी चाट लग जाने वाले लोग तो यह कह देंगे कि रसनाइन्द्रिय सबसे ज्यादा उपकारी है। जिसको जिस इन्द्रियका व्यसन लगा उसको वह इन्द्रिय अधिक उपकारी प्रतीत होती है, लेकिन एक कल्याणलाभकी दृष्टिसे देखा जाय तो श्रोत्रइन्द्रिय बहुत उपकारी है। जिनवाणीके शब्द सुनकर, उनका अर्थ विचारकर तत्त्वज्ञान बनता है और उस चिन्तनके आधारसे बढ़ बढ़कर सम्यक्त्व पैदा होता है और फिर ज्ञान चारित्र पूर्ण होकर सदाके लिए मोक्ष मिलता है। तो प्रारम्भ किसने कराया ? यह सब काम श्रोत्रइन्द्रियका है। श्रोत्रइन्द्रिय बहुत उपकारी है, इस कारण श्रोत्रइन्द्रियका अन्तमें नाम रख दिया। वर्णन बहुत होता है कि जो मुख्य होता है वह या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो पहले नाम आता है या अन्तमें ? तो क्षेत्र घेरनेकी अपेक्षा यह क्रम दूसरा है और एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदिकके हिसाबसे इन्द्रिय मार्गणाकी दृष्टिसे जीवमें जो क्रम पाया जाता है। उसके अनुसार यहाँ इन्द्रियका क्रम रखा है। अब देखिये क्रम भी एक बड़ी अच्छी चीज होती है। किसी बच्चेसे पूछो कि इन्द्रियाँ कितनी होती हैं तो वह ५ बतावेगा। कौनसी ? स्पर्शन, रसना, आँख, नाक और कान। तो इस तरहसे सुननेमें आपको बुरा लगता कि नहीं, क्योंकि उसने क्रम भंग करके बोला, यदि वह कहे कि वाह हमने सब तो बोल दिया, कौनसी इन्द्रिय छूट गई ? तो भाई बोल तो दिया सब, पर सम्यग्ज्ञानके अंगका पालन नहीं किया। जैसे किसी आदमीको आप यहाँ बुलावें। वह आये तो सही पर टेढ़ा मेढ़ा बेढंगा रूप बनाकर आये तो आपको उसका आना पसंद आयेगा क्या ? पसंद तो न आयगा। यदि वह कहे कि कैसे भी आये पर आये तो सही। तो भाई ठीक है, आये तो सही, पर जिस ढंगसे विनय पूर्वक आना चाहिए था उस तरहसे नहीं आये। आना तो चाहिए था सात्त्विक वृत्तिसे, कुछ आज्ञाकारिताकी मुद्रा लेकर तो आपको भला जंचता। तो यह विधि, यह ढंग ये सब भी एक बातको बनाते हैं। अब उसमें कोई और कृत्रिमता करके और ढंग बनावे तो वह भी बुरा हो जाता है। प्रकृति जिस ढंगको मंजूर करती है वह ढंग ठीक है। अब कृत्रिमतासे कुछ और ढंग बढ़ा दिया जाय तो वह भीतरी बातकी पूर्ति करने वाला नहीं है, किन्तु भीतरसे और बाहर ले जाता है। तो यह एक क्रम है जिस क्रमसे इन इन्द्रियोंका क्रम रखा।

श्रोत्रइन्द्रियसे उपदेश श्रवण कर रसनासे वक्तृत्व होनेमें भी श्रोत्रके बहुप्रकारित्वकी सिद्धि—एक आशंका यह है कि जो यह कहा कि श्रोत्रइन्द्रियका बहुत उपकार है तो यह बात तो ठीक है, पर रसनाइन्द्रिय भी तो बहुत उपकारी है। अरे इस रसनाइन्द्रियके कारण ही तो वक्तापनेकी बात बनती है, सारा वचनव्यवहार चलता है। तो इसका समाधान एक तो शंकाकारने ही खुद कर दिया। रसनाइन्द्रिय भी उपकारी है—इसके मायने यह हैं कि शङ्काकारने पहले तो यह मान लिया कि श्रोत्रइन्द्रिय बहुत उपकारी है, ऐसा मानकर शंका रख रहा है कि रसनाइन्द्रिय भी बहुत उपकारी है। तो उस शङ्काकारने भी ये ही समाधान दे दिया। और फिर दूसरी बात यह है कि रसनाइन्द्रिय उपकारी बनी इस मामलेमें कि वह वक्ता है, मगर उसमें भी वक्तृत्वकी बात कब आयी ? पहले सुना, बाँचकर सुना, स्वाध्याय करके भी तो सब सुना जाता है। तो श्रवणका काम पहले हुआ इसलिए बहु उपकारी तो श्रोत्रइन्द्रियको मानना चाहिए, क्योंकि श्रोत्रनली द्वारा उपदेशको सुनकर ही पुरुष आराधना द्वारा बोलनेके प्रति व्यापार करता है, इस कारण बहुउपकारी श्रोत्रइन्द्रिय है और इसी कारण श्रोत्रइन्द्रियका इन पाँचों इन्द्रियोंके अन्तमें नाम रखा गया है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्विविध इन्द्रियवालोंमें इन्द्रिय घटनाका प्रसंग होनेसे कुतर्कका अनवसर—प्रकरण यह चल रहा है कि स्पर्शन आदिक इन्द्रियका जो क्रम रखा गया है उसमें श्रोत्रइन्द्रियका जो अन्तमें निक्षेपण है, अन्तमें श्रोत्रका नाम लिया है। इसका कारण यह है कि श्रोत्रइन्द्रिय बहुत उपयोगी इन्द्रिय है। तो इस पर शङ्काकारने यह शङ्का की कि रसनाइन्द्रिय भी तो बड़ी उपकारी है। उससे व्याख्यान हो और उपदेश चले तो रसनाइन्द्रियको भी अतीव उपकारी जानकर अन्तमें रखते। उसके समाधानमें यह कहा गया था कि श्रोत्रइन्द्रियसे उपदेश श्रवण कर फिर रसनाइंद्रियसे व्याख्यान बनाते, इस कारण प्रधान तो श्रोत्रइन्द्रिय है। अब इस विषय पर शङ्का होती है कि यह कहना तो संगत नहीं कि श्रोत्रइन्द्रियसे सुनकर वक्तृत्व होता है। देखो सर्वज्ञ भगवान वक्ता हैं ना, दिव्यध्वनि खिरती है, उपदेश उनका होता है, मगर वे श्रोत्र-इन्द्रियसे सुनकर नहीं बोलते। उनकी दिव्यध्वनि खिरती है तो यह बात कैसे घटित हुई कि श्रोत्रइन्द्रियसे सुननेके बाद फिर व्याख्यान किया जाता है। भगवानके व्याख्यान तो चल रहा, वक्तृत्व तो कहते हैं। कहते भी हैं मंगलाचरणमें कि सर्वज्ञ भगवान मूल वक्ता हैं। तो वक्तृत्व चल रहा, मगर श्रोत्रइन्द्रियसे सुना तो नहीं उन्होंने इस कारण यह दलील थोथी मालूम होती है। इस शङ्काका उत्तर यह है कि यह चल रहा है इन्द्रियका प्रकरण, सो इन्द्रियवान जीवोंमें ही सब बात घटित करना है। इन्द्रियवान जीवोंमें, इन संसारी जीवोंमें जो लोग छद्मस्थ वक्ता हैं, व्याख्यान करते हैं उन्होंने पहले उपदेशको सुना और सुनकर अवधारण किया, फिर व्याख्यान किया, इससे केवल इन संसारी इन्द्रियवान क्षयोपशम वाले जीवोंमें ही यह बात घटानी चाहिए। यह इन्द्रियका वर्णन वहाँ ही है। यद्यपि भगवान अर-हंतके ये इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, मगर यहाँ कोरी द्रव्येन्द्रियका वर्णन नहीं चल रहा। जिसके द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ये नाना भेद बताये गए हैं उस इन्द्रियकी बात चल रही है। अर-हंतके द्रव्येन्द्रिय तो हैं, पर भावेन्द्रिय तो नहीं हैं। और इसी कारण भगवान सर्वज्ञके इन्द्रिय प्राण नहीं माना गया। वहाँ इन्द्रिय प्राण नहीं, मनोबल नहीं। वचनबल, कायबल, श्वासो-च्छ्वास और आयु—ये चार प्राण अरहंत भगवानके बताये गए हैं। तो वहाँ इन्द्रियप्राण है ही नहीं, मनोबल है नहीं, क्योंकि इन सब बातोंमें भावेन्द्रियकी प्रधानता है, द्रव्येन्द्रियकी प्रधानता नहीं है। इन्द्रिय तो मुर्दामें भी रह जाती हैं। जीव चला गया, शरीर यहीं पड़ा हुआ है तो द्रव्येन्द्रियां कहाँ जायेंगी? मगर इन्द्रियका वर्णन है, उसमें दोनोंका समूह लग गया। उसमें प्रधान है भावेन्द्रिय, सो द्रव्येन्द्रियका प्रकरण होनेसे इन्द्रियवान संसारी जीवोंमें ही यह बात घटायी जायगी कि जिनमें इन्द्रियकृत हित अहितका उपदेश चलता है उनमें ही यह बात बतानी है कि श्रोत्रइंद्रियसे पहले सुनकर फिर वह वक्ता बनता है। यहाँ तक प्रकरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह चला कि स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—ये ५ इन्द्रियाँ हैं।

इन्द्रियोंमें परस्पर तथा इन्द्रियवानमें कथंचित् भेद अभेदका कथन—अब यह बात विचारनी है कि इन पाँचों इन्द्रियोंमें परस्पर भेद है या अभेद? क्या ये सब इन्द्रियाँ एक बात हैं या ये भिन्न-भिन्न कोई तत्त्व हैं? उत्तर यह है कि कथंचित् एक हैं, कथंचित् नाना हैं। ज्ञानावरणका क्षयोपशम पाकर होता है, यह बात इन पाँचों इंद्रियमें है। तो उसकी अपेक्षासे पाँचोंमें एकता है। लेकिन प्रतिनियत इनके अवयव हैं जुदे। आँख कहाँ, कान कहाँ, सबके अपने-अपने धाम जुदे-जुदे हैं और प्रतिनियत पर्यायको परखें कि यह इन्द्रिय इस प्रतिनियत अर्थको विषय बनाती है, इस कारण ये इंद्रियाँ सब एक नहीं, किन्तु भिन्न हैं, नाना हैं। इंद्रियाँ इंद्रियाँ सब हैं और सबमें इंद्रिय बुद्धि हो रही है। इस कारण पाँचों इंद्रियाँ एक हैं, मगर काम उनके जुदे-जुदे हैं। वे भिन्न-भिन्न कारणरूप हैं, इस कारण वे जुदे हैं। ये भी इंद्रिय हैं, ये भी इंद्रिय हैं, ऐसी इंद्रियकी अनुवृत्ति चली पाँचोंमें इसलिए पाँचोंमें अभेद है, एकपना है, किन्तु उनका विषय जुदा और वह एक दूसरेसे व्यावृत्त है, इस कारण वे एक नहीं हैं और भी समझ लो किसीके एक ही इंद्रिय होती, किसीके दो, किसीके तीन, किसीके चार और किसीके पाँचों। अगर इन इंद्रियोंमें अभेद होता, एकपना होता तो जहाँ एक हो कोई भी इंद्रिय, वहाँ शेष चारों भी आ धमकने चाहिएँ, पर जो एक इंद्रिय हैं उनके सिर्फ स्पर्शनइंद्रिय है। जो दो इंद्रिय हैं उनके स्पर्शन और रसना दो हैं। तो इससे भी यह समझा जाता है कि ये इंद्रियाँ परस्परमें भिन्न हैं। अगर इन सबको एक माना जाय, सब इंद्रियाँ एक हैं तो व्यवस्था नहीं बनती। यदि इंद्रियोंमें सर्वथा अभेद है तो बताओ फिर जीवों में भेद कैसे पड़ गया? कोई लट है, कोई चोंटी है, कोई भंवरा है, कोई मनुष्य है, कोई कान वाला है, कोई कानरहित है, यह भेद कैसे पड़ गया? इससे मालूम होता है कि वे इन्द्रियाँ परस्पर भिन्न-भिन्न हैं और अगर ये अत्यंत भिन्न-भिन्न ही हों, स्पर्शनसे रसना अत्यंत जुदी, रसनासे घ्राण अत्यंत जुदी, एक दूसरेसे अत्यंत जुदे हैं तो फिर या इन्द्रियवानसे भी अत्यंत जुदे हैं तो अत्यंत जुदे पदार्थका सम्बंध तो कुछ नहीं बनता। फिर क्या वजह है कि यह जीव इस इन्द्रियके माध्यमसे जाने, क्योंकि अत्यंत जुदा है। भींतके माध्यमसे क्यों न जान ले? जैसे वह जुदा वैसे ही इसको मान लिया, सो ये कथंचित् परस्पर भिन्न हैं, कथंचित् अभिन्न हैं और ज्ञायक आत्मासे ये निराले हैं, पर इसमें ही इन सबका आवास चलता है, इसलिए एक हैं। यों इन्द्रियाँ परस्परमें कथंचित् एक और अनेक घटायें और इन्द्रियवानसे भी कथंचित् एकपना और पृथक्पना समझना।

ज्ञानका वास्तविक विषय—इन्द्रियाँ ५ होती हैं, जिनका नाम है स्पर्शन, रसना,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घ्राण, चक्षु और श्रोत्र । यद्यपि इन इन्द्रियोंसे जो भी पदार्थ जाना जाता है, सो वहाँ जाननेमें आया पदार्थ और ज्ञान, सो एक परिणमन है इस ज्ञाता जीवका तथापि निश्चयसे जाननेमें यह खुद ही आया, खुद ही खुदके उस प्रकाशरूप, उस विकल्परूप, उस ज्ञेयाकार रूप निज आत्माको यह ज्ञान जानता है, फिर भी व्यवहारदृष्टिसे तो कहना ही पड़ेगा कि जाना गया, लेकिन समझें किस तरह ? अगर हम यह ही कहें कि ज्ञेयाकार परिणामको ही किसीने जाना तो इसमें लोग समझेंगे क्या ? तो जितना निमित्त पाकर, विषय पाकर यह ज्ञान विकल्प बनाता उसका नाम लेकर कहना होगा—इस जीवने घट जाना, पट जाना, पुद्गल जाना आदिक अथवा पुद्गलका रूप, रस, गंध, स्पर्श जाना तो ये अगर अत्यन्त अभिन्न हो जायें जीव और इन्द्रिय परस्पर तब तो एक कुछ रहा । ज्ञान ज्ञेय कैसे माने जायेंगे और यह संसार की विविधता कैसे बनेगी ? इस कारण इन्द्रिय इन्द्रियवानसे कथञ्चित् भिन्न हैं और कथंचित् अभिन्न हैं । इन्द्रियके वर्णनके बाद अब यह बतलाते हैं कि इन इन्द्रियोंके विषय क्या हैं ?

स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥

इन्द्रियोंके विषयभूत अर्थ—उन इन्द्रियोंके विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द हैं । स्पर्श क्या ? जो पुद्गल द्रव्यमें स्पर्श गुण पाया जाता है तो उस स्पर्शगुणकी जो पर्याय है वह स्पर्श है, रस गुणकी पर्याय रस है, गंध गुणकी पर्याय गंध है, वर्ण गुणकी पर्याय कृष्णादिक वर्ण है और भाषावर्गणाके परमाणुओंका जो संयोग वियोगकी हालतमें एक शब्द की अभिव्यक्ति है वे शब्द हैं । ये इन इन्द्रियोंके विषय हैं । स्पर्शनइन्द्रियका विषय स्पर्श, रसनाइन्द्रियका रस, घ्राणेन्द्रियका विषय गंध, चक्षुइन्द्रियका विषय वर्ण याने रूप और श्रोत्र इन्द्रियका विषय शब्द है । अच्छा शब्दके माध्यमसे अर्थ जैसे निकलता ? तो स्पृश् धातुसे स्पर्श, रस धातुसे रस, घ्रा धातुसे घ्राण (गंध) और रूप् धातुसे रूप, वर्ण् धातुसे वर्ण और शप् धातुसे शब्द बनता है । इसका अर्थ समझना हो तो दो विधियोंसे समझा जायगा । कर्मसाधनमें और भावसाधनमें जुदी जुदी इन्द्रियके अर्थ कर रहे हैं । कर्मसाधनमें इन्द्रिय द्वारा जो जाना जाता है उसके नाम चल रहे हैं, इसलिए उसमें कर्तृसाधनकी बात न चलेगी । कर्म और भाव—कर्मसाधनमें तो यह विग्रह बनेगा—स्पृश्यते इति स्पर्शः, जो छुवा जाय उसे स्पर्श कहते हैं । अब क्या छुवा जाता ? पदार्थ छुवा जाता है, द्रव्य छुवा जाता है कि खाली स्पर्श छुवा जाता है ? उस चीजको मत छुवो और वह चीज चिकनी है या रूखी है ? अगर रूखी है तो तुम रूखापन ही छुवो, चीजको हाथ न लगाओ । तो छू लोगे क्या ? यह द्रव्यसे जुदा नहीं है कुछ और । जाननेमें द्रव्य ही आता है, पर्याय जाननेमें नहीं आता, गुण जाननेमें नहीं आता, किन्तु पर्यायमुखेन जब वह वस्तु जानी जाती है तब कहा जाता है कि हमने पर्याय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाना। गुणमुखेन तो वस्तु जानी जाती है, तो कहा जाता है कि हमने स्पर्श आदिक जाना। तो जाननेमें वह आयगा जो सत् है। असत् ज्ञेय नहीं होता।

ज्ञानमें सत्की ही ज्ञेयता——सब द्रव्योंमें ६ साधारण गुण हैं, सो और बात तो सब समझमें आ जाती है कि अस्तित्व गुण है, जिस गुणके प्रसादसे वस्तुमें सत्ता हो। वस्तुत्व गुण है, जिसके प्रसादसे वस्तु अपनी अपेक्षासे स्वरूपसे हो, पररूपसे न हो। सब ध्यानमें आ रहा ना? ठीक कहा जा रहा है। पदार्थ ऐसा ही होता है। द्रव्यत्व गुण, जिस गुणके प्रसाद से पदार्थ निरन्तर परिणमता रहे यह भी बात समझमें आ रही, ठीक है, पदार्थ परिणमता रहता है। अगुरुलघुत्व गुण, जिस गुणके प्रसादसे एक पदार्थ दूसरे पदार्थरूप न परिणमे। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे ही परिणमन करते रहें, यह भी बात ध्यानमें ठीक आती है कि स्वरूप ही ऐसा है। प्रदेशवत्व गुण, जिसके प्रसादसे वस्तुका कोई न कोई आकार रहे वह प्रदेशवत्व गुण है। उसका आकार बहुप्रदेशी है, उसका आकार रहता ही है, मगर प्रमेयत्व गुण क्या चीज है? अर्थ तो बताया गया कि जिस गुणके प्रसादसे पदार्थ ज्ञेय बने, जाननेमें आये तो यह भी कोई गुण वस्तुमें भरा हुआ है क्या कि पदार्थ जाननेमें आ जाय? बस इस समस्याका समाधान है कि जो है सो ज्ञानमें आयगा, जो नहीं है सो ज्ञानमें न आयगा। अच्छा ऐसी चीज तो बताओ कि जो नहीं है और ज्ञानमें आये? अगर कुछ बता दोगे तो असत् कहाँ रहा? वह तो "है" हो गया। जो नहीं है वह प्रमेय नहीं होता, ज्ञानमें नहीं आता। यह इस तरह जानें कि जो जो है सो ज्ञानमें आता है, जो है नहीं उसका नाम भी कौन ले लेगा? कोई नाम नहीं होता। 'असत्' यह शब्द कहकर हम उसका भाव बनाते हैं। अगर शब्द हो, नाम हो तो उसका वाच्य अर्थ भी जरूर होना चाहिए। जितने शब्द हैं उतने वाच्यभूत पदार्थ हैं। और जो है नहीं उसका शब्द कहाँसे आ जायगा? शब्द तो सत् पदार्थ की पहिचानके लिए होते हैं। जो सत् है सो ही प्रमेय है। वही ज्ञानमें आता है। अब देखते जाना ये सब बातें। ज्ञानमें क्या आयगा? सत् आयगा, असत् न आयगा।

गुण व पर्यायमें सत्त्वके लक्षणकी अघटना तथा द्रव्यमें सत्त्वके लक्षणकी घटना—सत् किसे कहते हैं? जो गुणपर्यायवान हो। जिसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य चले उसे सत् कहते हैं। यदि कोई चीज है तो वहां गुणपर्याय अवश्य है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य जरूर है। अब यह परखो कि जो पुद्गलमें स्पर्शगुण, रस, गंध, शब्द और वर्ण गुण हैं वे सत् हैं क्या? याने उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले हैं क्या? नहीं। वे तो उत्पन्न होते हैं, विलीन हो जावेंगे, ध्रौव्यकी कोई बात नहीं। उसका वह गुण पर्यायवान है क्या? कौन गुण? गुणमें गुण होते ही नहीं। गुणवान कैसे हो जायगा? यह ही पर्याय पर्यायमें है तो गुण और पर्याय ये कोई चीज नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। गुणके रूपमें वस्तुको जानना, पर्यायके रूपमें वस्तुको जानना—बस यह चीज चलती है। तो पुद्गलमें ये चार गुण हैं, उनकी ये पर्याय हैं और एक शब्द पर्याय है, ये सब स्पर्श आदिक इन्द्रिय विषयभूत होते हैं।

इन्द्रियोंका दो रीतिसे अर्थ—इन इन्द्रियोंका अर्थ जानेंगे आप दो विधियोंसे—कर्मसाधन और भावसाधन। कर्मसाधनसे तो यह अर्थ चलेगा कि जो छुवा जाय सो स्पर्श। देखो छुवा जाता द्रव्य, मगर स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा उस द्रव्यमें मात्र स्पर्शका बोध हो पाता है। जो रसा जाय सो रस। जो सूंघा जाय सो गंध, जो देखा जाय सो वर्ण रूप और जो सुना जाय सो शब्द। यह है कर्मसाधनकी बात। भावसाधनमें किस तरह अर्थ लगेगा? छूना सो स्पर्श, रसना सो रस, सूंघना सो गंध, देखना सो वर्ण। यह भाव रूपके साथ विमुखता लेकर हो रहा है। इस प्रकार ये स्पर्श आदिक उन इन्द्रियोंके विषयभूत हैं, ऐसी बात सुनकर यह चर्चा उठ सकती है चित्तमें कि परमाणु जो न छुवा जाता है, न रसा जाता है, न सूँघा जाता है, न देखा जाता है, न उसके कोई शब्द होते हैं तो फिर उसमें स्पर्शन आदिक रहे नहीं क्या? समाधान यह है कि मूल तो वह ही है। स्थूल बननेपर भी जो स्पर्शादिक ज्ञानमें आते हैं सो कहीं अलग आज हो नहीं गए। वह पहिलेसे ही था। हम उन्हें न जान सकें, पर उनके मिलाप रूप जो स्कंध हैं उनमें प्रकट हो गए। तो यहाँ की प्रकटतासे अनुमान होगा कि परमाणुमें भी रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं। क्या बात कही गई इस सूत्रमें कि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द इन्द्रियके विषय हैं। यहाँ शङ्का हो सकती है कि ये इन्द्रियके विषय तो नहीं मालूम होते, क्योंकि इन्द्रियाँ स्वतंत्र होकर इन विषयोंको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। जाननहार तो जीव है, फिर ये इन्द्रियके विषय कैसे बन जायेंगे? तो उसका समाधान यह है कि जब इसमें एक व्यवस्था देखी जा रही, जिसको कहते हैं प्रतिनियत इंद्रिय द्वारा होना। स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा स्पर्श ही ज्ञानमें आया, रसनाइन्द्रिय द्वारा रस ही ज्ञानमें आया तो ये स्पर्शन आदिक इन्द्रियोंने इनका जन्म दिया है, इस कारण ये सब विषय इस इन्द्रियके कहलाते हैं। ये हुए ५ विषय। देखिये जीव जुदा, पुद्गल जुदा और पुद्गलमें ही है ये ५ बातें—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द। इनको विषय करने वाली ये इन्द्रियाँ मूर्तिक हैं, भौतिक हैं, पौद्गलिक हैं। इनके माध्यमसे जो जाना गया वह पुद्गल तक सम्बंधित है। जान लिया गया, ये हुए ५ विषय इन इन्द्रियोंके। अब इनमें जो यह क्रम रखा उसका क्या कारण है? उसका सीधा कारण यह है कि जैसा इन्द्रियका क्रम है वैसा ही इन्द्रियके विषयभूत पदार्थका क्रम है।

पृथ्वी जल अग्नि वायुमें सबमें रूप रस गंध स्पर्श चारों न होकर चार तीन दो एक ही रहनेकी आरेका—यहाँ बाधा डाली जा सकती है कि पुद्गलमें कहते कि ये चारों चीजें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पायी जातीं सो बात सही नहीं जंचती। देखो चारों बातें पृथ्वीमें पायी जाती हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श। जो पृथ्वी है, ढेला है, पिण्ड है, पत्थर आदिक हैं, घन हैं उनमें तो स्पर्श भी है, रस भी है, गंध भी है और रूप भी है, मगर जलमें तो गंध नहीं है, रूप है, रस है और स्पर्श है। जलमें गंध नहीं होती। जो दार्शनिक नहीं मानते गंध जलमें तो उनसे कोई प्रश्न करे कि जब हम कहीं भी पानीको सूंघते हैं तो कोई पानी दुर्गन्धरहित मालूम होता और किसी पानीमें दुर्गन्ध भी तो मालूम देती है? तो यह कैसे कहा जाय कि पानीमें गंध नहीं है? तो उनका उत्तर है कि पानीमें केवल तीन ही चीजें हैं—रूप, रस, स्पर्श और जो गंध आती है पानीमें तो पानीमें पृथ्वी मिली है, धूल मिली है, कीचड़ मिला है उससे दुर्गन्ध है। वह तो सब पृथ्वी है। तो पृथ्वीकी गंध आती है, पानीकी गंध नहीं आती। यह सब शङ्काकार कह रहा, क्योंकि समझमें कुछ ऐसा ही जल्दीमें जंच रहा कि शङ्काकारका इसमें क्या कसूर है? ठीक ही तो कह रहा, पानीमें कहाँ गंध है? पानीमें जो धूल वगैरा पड़ी है उसकी गंध है। तो शङ्काकारके सिद्धान्तसे जल केवल रूप, रस, स्पर्श वाला है। अच्छा देखो अग्निमें केवल दो ही चीजें पायी जातीं रूप और स्पर्श। शङ्काकारके सिद्धान्तकी बात कह रहे हैं। बताओ किसीने अग्नि खाया है क्या? न खट्टी है, न मीठी है, अग्निमें कहाँ रस धरा? अच्छा कभी अग्निमें गंध आयी है क्या? कोई कहे कि हाँ जब लोभान, गंधक वगैरह चीजें अग्निमें डालते हैं तो अग्निसे गंध आती है तो भाई वह अग्निकी गंध कहाँ रही? वह तो पृथ्वीकी गंध है। ये लोभान, गंधक वगैरह तो पृथ्वीकी चीजें हैं? शङ्काकार कहता जा रहा है कि बताओ हवामें सिवाय स्पर्शके और कुछ भी है क्या? किसीको हवा खट्टी, मीठी, चरपरी आदि लगी क्या? किसीने हवाको आँखों देखा क्या? हवामें केवल स्पर्श ही स्पर्श है। स्पर्शसे जाना गया। आज बड़ी तेज हवा है, तो फिर यह कहना कि पुद्गलमें ये चारों गुण होते हैं, यह बात सही तो न रही।

रूप, रस, गंध, स्पर्शमें अविनाभाव होनेसे जहां एक भी पाया जावे वहां चारोंके रहनेका नियम बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि तुम्हें मालूम पड़े या न मालूम पड़े, तुम्हें एक ही मालूम पड़ जाये तो यह निश्चय जानो कि वहां चारों ही हैं। चारों अविनाभाव होकर रह रहे हैं। फुटकर न मिलेंगे, और उसका प्रमाण? अच्छा प्रमाण सुनना है तो सुनो। गेहूं, जौ, चना ये सब पृथ्वी हैं या वायु हैं, सो बताओ? शंकाकारको समाधान कराया जा रहा, और शंकाकार जो मानता उसको ही तो कहना पड़ेगा—गेहूं, जौ, चना ये सब पृथ्वी कहलाते हैं, वहाँ वनस्पति कोई नाम नहीं। वनस्पति भी पृथ्वी कहलाती है। पिण्ड है ना, तो जौ पृथ्वी है। और खूब जौ खा ले कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो देखिये—कितनी वायु सरती है, कितनी हवा बन जाती है ? तो अगर जौ में हवा न होती तो यह कहांसे आ गई ? जहाँ एक चीज हो वहाँ चारों समझनी चाहिएँ। अच्छा और भी कुछ दृष्टान्त मिलेंगे। जैसे कपूर, पीपरमेन्ट, अजवायनका फूल, ये बताओ ये पृथ्वी हैं कि पानी ? पिण्ड है। जो पिण्ड है सो पृथ्वी और इन तीनोंको इकट्ठा कर दो तो जल बन जाय। न होता जलपना तो कैसे जल बन गया है ? और और चीजें भी देख लो, जहाँ एक चीज पायी जाय वहाँ चारों ही होती हैं। हमारी समझमें आये अथवा न आये, आगे पीछे समझमें आयगा। आगे पीछे पदार्थमें व्यक्त होगा। तो ये चारों चीजें एक साथ रहती हैं सब जगह। इस तरह ये ५ स्पर्शन आदिक इन्द्रियके विषय बताये जा रहे हैं।

इन्द्रियज ज्ञानका विषय पर्यायमुखेन पदार्थ—इन्द्रियके विषय क्या हैं ? इन्द्रियके द्वारा कौनसे पदार्थ जाने जाते हैं, यह प्रकरण चल रहा है। स्पर्शनइन्द्रियका विषय है स्पर्श, रूखा, चिकना, ठंडा, गर्म, हल्का, भारी, कड़ा, नर्म। इन ८ प्रकारकी पर्यायों रूप स्पर्श स्पर्शन इन्द्रियसे जाना जाता है अथवा यह ८ प्रकारका स्पर्श नहीं जाना जाता, किन्तु इन स्पर्शों की पर्यायें जिसमें बीतती हैं, ऐसे पदार्थको जाना जाता है। रसनाइन्द्रियसे क्या जाना जाता ? खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा, कषैला—ये ५ प्रकारके रस जाने जाते हैं, रस नहीं जाने जाते, किन्तु रसवान पदार्थ जाने जाते हैं। घ्राणइन्द्रियके द्वारा क्या जाना जाता ? सुगंध और दुर्गन्ध। सुगंध और दुर्गन्ध नहीं जाने जाते, किन्तु सुगंध दुर्गन्ध वाले पदार्थ जाने जाते हैं। इसी प्रकार चक्षुइन्द्रियके द्वारा काला, नीला, पीला, लाल, सफेद आदि ये पर्यायें जानी जाती हैं अथवा ये ५ नहीं जानी जातीं, किन्तु इन ५ पर्यायों वाला पदार्थ जाना जाता है। कर्णेन्द्रियके द्वारा शब्द जाने जाते हैं। शब्द एक पर्याय है। वहाँ भी यह बात समझें कि मात्र शब्द नहीं जाने जाते, किन्तु शब्द पर्याय वाला पदार्थ जाना जाता है। इस प्रकार ५ इन्द्रियके विषय ये स्पर्शादिक हैं।

रूप, रस, गंध, स्पर्शमें परस्पर तथा वस्तु व इन गुणोंमें अभेद होनेपर भी कथंचित् भिन्नताका व्यवहार—अब इन स्पर्शादिकमें यह बात जाननी है कि पदार्थमें ये अलग-अलग बातें हैं या इनमें एकत्व है। ये सब एक ही चीज हैं। जैसे आपमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये न्यारे-न्यारे हैं या इन सबका एक पिण्ड है, इस बातकी चर्चा की जा रही है। विचार करो। अगर यह कहा जाय कि रूप, रस, गंध, स्पर्श सब एक हैं और रूपादिक वाले पदार्थ भी इन रूपादिकसे एक हैं, यदि ऐसा सर्वथा एक माना जाय तो अगर किसी पदार्थका रूप जाना तो चारों क्यों नहीं ज्ञानमें आते ? जब चारोंको एक एक मान लिया कि ये चारों भिन्न-भिन्न नहीं हैं तो एकका ग्रहण होनेपर चारोंका ग्रहण होना चाहिए। अगर रसनाइन्द्रियसे रस चखा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो रसके साथ स्पर्शादिकका भी तुरन्त ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि एक है, और इसी प्रकारसे रूपादिक बातें और जिसमें रूपादिक पाये जाते वे पदार्थ यदि ये दोनों सर्वथा एक हैं तो या तो रूपादिक रहेंगे या पदार्थ रहेगा। फिर ये दो बातें कहाँसे आ गईं ? इसलिए सर्वथा एकत्व तो कहा नहीं जा सकता और सर्वथा भिन्नता भी नहीं कही जा सकती। अगर रूप, रस, गंध, स्पर्श बिल्कुल न्यारे-न्यारे हैं तो रसका अगर ग्रहण है तो स्पर्शादिक बिल्कुल ये अलग रहें, उस पदार्थमें क्यों रहा करते हैं ? अगर ये अत्यंत भिन्न हैं तो ये स्वयं पदार्थ बन बैठेंगे। और ऐसा निरंशवादियोंने माना है और जैनसिद्धान्तमें या वस्तुमें ऐसा नहीं है। निरंशवादी तो यह कहते हैं कि रूपक्षण अलग पदार्थ है, रसक्षण अलग पदार्थ है, गंधक्षण अलग पदार्थ है और स्पर्शक्षण अलग पदार्थ है, ये सब अत्यंत भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। तो ऐसे अगर भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं तो पदार्थका स्वरूप यह है कि उसमें गुण और पर्याय होती है तो क्या रूपमें भी गुण और पर्याय भरी हुई है ? क्या रस आदिकमें भी है ? सो तो नहीं है। इससे ये सब अलग-अलग चीजें नहीं हैं। कथञ्चित् इनमें अलग-अलगपना है और कथंचित् एकपना है। अलग-अलगपना तो इस तरह जाहिर होता कि अलग-अलग इन्द्रियोंसे उनका परिचय होता है। आँख केवल रूपका ही परिचय कर सकती है। जीभ केवल रसका ही परिचय करती है। तो प्रतिनियत जुदे-जुदे इन्द्रियके द्वारा ज्ञान होता है, इस कारण वे जुदे-जुदे हैं और सर्वथा जुदे नहीं हैं। अगर सर्वथा जुदे हों तो यदि आमके रसकी जरूरत है तो उसमेंसे केवल रस ले लो, और सब चीजें अलग बनी रहें, ऐसा तो नहीं है। इस कारण ये परस्पर कथंचित् भिन्न हैं, कथंचित् अभिन्न हैं, सर्वथा न भिन्नता है, न अभिन्नता है।

इन्द्रियविषयोंके परिचयसे प्राप्तव्य शिक्षा—यहाँ चर्चा चल रही है उनकी जिनको हमारी इन्द्रियाँ जानती हैं। जो इन्द्रियका विषय है वह है क्या चीज ? साथ ही यह भी जानते जाना कि इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञात हुआ है वह सब विनश्वर चीज है। ये इन्द्रियाँ आत्माको नहीं जानतीं। जानती हैं आत्मासे भिन्न पदार्थको, क्योंकि इनको आदत खुदको ता समझनेकी नहीं है। तो आत्माको समझनेकी बात तो दूर रहो। आँखें खुद अपनी आँखे नहीं देख पातीं। तो आत्माको जानें यह तो बहुत दूरकी बात है। तो इन इन्द्रियोंका विषय ये सब बाह्य पदार्थ हैं, भिन्न हैं, असार हैं, इसलिए हमें इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रीति नहीं बसानी चाहिए। पूर्व संस्कारवश इन्द्रियके विषयोंमें प्रीति बनती है तो उसे खेदके साथ भोगना चाहिए, न कि आसक्तिसहित भोगना चाहिए। तो ये स्पर्शादिक इन पदार्थोंमें, पुद्गलमें पाये जाते हैं, इसलिए इन्द्रियका विषय मात्र पुद्गल है। अमूर्त पदार्थ इन्द्रियका विषय नहीं। पुद्गल सभी मूर्त हैं, रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं।

समस्त पुद्गलोंमें रूप, रस, गंध, स्पर्शकी अनिवार्यता—कुछ दार्शनिकोंने माना है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसा कि वायुमें केवल स्पर्श पाया जाता, स्पर्शके अतिरिक्त और कुछ नहीं पाया जाता। लेकिन अनुमानसे, युक्तिसे सिद्ध है कि वायु, रूप, रस, गंधवान है, क्योंकि स्पर्श वाला होनेसे। जैसे– यहाँके घट-पट आदिक पदार्थ, ये भी पौद्गलिक हैं, वायु भी पौद्गलिक है। अगर कहो कि नहीं, वायुमें इसका पता नहीं पड़ता कि इसमें रस है, गंध है। तो बताओ परमाणुमें पता पड़ जाता क्या कि इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श है ?

तो उत्तर यह मिलेगा कि उन परमाणुओंमें पता नहीं पड़ता, मगर है जरूर। तो पता न पड़े इससे एकान्तका निर्णय तो नहीं बन गया कि वहाँ वे तत्त्व हैं नहीं। जब परमाणुओंका कार्य है वायु वगैरा तो जो उसमें पाये जा रहे हैं, कार्य बननेपर वे गुण सब रहेंगे। वायु भी रूप, रस, गंध, स्पर्श वाली है स्पर्शवान होनेसे, इसी तरह सभीमें लगा लो– जल है वह भी गंधवान है। रूप, रस, स्पर्श तो मानते ही हैं दार्शनिक, गंध नहीं मानते, लेकिन रूप, रसवान होनेसे जल भी गंधवान है और जलमें गंध, स्पर्श भी होते हैं। बिल्कुल साफ जल है, पर उसे सूँघो तो कुछ तो बात आती है। कोई कहे कि वह तो पृथ्वीके सम्बंध से गंध आयी तो हम पृथ्वीमें भी यह कह बैठेंगे, पृथ्वीमें रस नहीं होता। वह जलके सम्बन्ध से रस है। कुछ भी कह सकते हैं इस कारणसे सब अव्यवस्था बनेगी। तो यह मानना चाहिए कि जो भौतिक है, जो पौद्गलिक है. उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों पाये जाते हैं, इन चारोंका अविनाभाव है। इनमें एक न हो तो तीनों नहीं हैं, एक भी है तो चारों समझिये। ऐसे ये पुद्गल द्रव्य जो इन्द्रियके विषयभूत हैं वे सब रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं। द्रव्योंकी जो संख्या बना दी है कुछ दार्शनिकोंने उनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु पृथक् पृथक् द्रव्य माना और धर्म अधर्मको उन्हें खबर ही नहीं कि ये भी कोई द्रव्य हैं। तो द्रव्यकी सीमा यह है कि जो कभी भी त्रिकालमें भी एक दूसरे रूप न हो सकें उतने द्रव्य होते हैं। जाति अपेक्षा उतने द्रव्य होंगे जो एक तीनों कालमें भी कभी दूसरे रूप न बनेगा। जैसे जीव है तो वह कभी पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल रूप नहीं बनता। पुद्गल है वह भी अन्य ५ रूप नहीं बनता। कोई भी एक जातिका द्रव्य है वह अन्य ५ रूप त्रिकाल भी अनन्त काल तक न बन सकेगा। बस इस प्रकारसे इस द्रव्यकी जातिकी संख्या जानी जाती है। मगर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुमें तो एक दूसरे रूप तुरन्त भी बन सकता है। जैसे पृथ्वी है, लोहा है, चाँदी है, सोना है—ये कभी द्रवरूप बन जायेंगे। जलका लक्षण द्रवपना बताया गया है। जो बहे सो जल। इस पृथ्वीका जलरूप बन गया, जलका पृथ्वीरूप बन गया। पृथ्वी कहते हैं घनको और जल व कहते हैं द्रवको। पानीका बर्फ बन जाता, वह इतनी कड़ी हो जाती कि किसीको मार दी जाय तो चोट पहुंचा दे। चन्द्रकान्तसे जल झड़ने लगता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो पृथ्वी जल बन जाय, जल पृथ्वी बन जाय, जब यह अदल-बदल चलती है तो फिर ये कैसे अलग कहे जायें ? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके स्कंध एक दूसरे रूप हो सकते हैं, इस कारण ये स्वतंत्र स्वतंत्र द्रव्य नहीं हैं। द्रव्य जाति तो एक है, भले ही सभी दार्शनिक जो अपनी-अपनी बात मानते हैं, उनको अपनी ही बात बड़ी सुहावनी या निर्दोष लगती है, मगर जब निर्णयके मैदानमें आते, दार्शनिकोंके क्षेत्रमें आते और वहाँ चर्चा होती तब यह विदित होता है कि हमारे कथनमें कितनी कमी है ?

तत्त्वस्वरूपका परिचय न होनेसे बिडम्बना—बस जब तत्त्वस्वरूपकी बात नहीं देखी, समझी गई तो वस्तुस्वरूपके मामलेमें भी गड़बड़ी रही और भक्ति आचरणके मार्गमें भी गड़बड़ी रही। जैसे जिस-जिस चीजसे लोगोंको कुछ फायदा मिला उस-उसको देव माना जाने लगा। यह एक साधारण लौकिक जनोंकी देव माननेकी कुञ्जी है। बड़का पेड़ बड़ी छाया देता और उसकी ठंडी छाया होती, उसका बड़ा उपकार है। पहले जमानेमें जंगलका निवास अधिक था, झोंपड़ी कम थी तो बड़का वृक्ष उस समय बड़ा उपकारी समझा जाता था। तो जो उपकारी हो उसको तो महत्त्व देना चाहिए। लो बड़का पेड़ देव बन गया। पीपलकी हवा अनेक रोगोंको दूर करती है, नीम और पीपल इनकी हवा बहुतसे रोगोंको दूर करती है, इस कारण उन्हें भी देव मानने लगे। तो जो जो बात अपने को एक लाभकारीसी जंची बस उसे देव माना जाने लगा। गाय एक पशु है। रक्षा करो पशुओंकी—बात ठीक कही मगर उसमें एक ऐसी दुविधा लाना कि गाय तो देवताका रूप है, उसकी रक्षा करना चाहिए और बाकी पशु वे देव नहीं हैं, उन्हें जो चाहे करें, उनपर कोई ख्याल नहीं लाते। तो भला बतलावो पशु है तो एक बेचारा प्राणी ही तो है। मल, मूत्र, हड्डी आदिक सब अपवित्र चीजों का ही तो यह देह है, उसमें देव माननेकी क्या बात, पर गाय बहुत उपकारी जानवर है, उससे सबको बहुत लाभ मिलता है, वह दूध देती है, सबको पुष्ट बनाती है। दूध एक ऐसी चीज है कि जिससे मनुष्योंकी रक्षा है। तो जो दूध दे वह तो माताकी तरह मान लिया। माताका भी दूध पीकर बच्चा बड़ा बनता है, पुष्ट बनता है, तो माँ की तरह गायसे भी हमारा पालन पोषण होता है इसलिए गौ माता कहा गया। पर पता नहीं भैंसको क्यों छोड़ दिया ? भैंसको तो बड़ी मौसी कहा जाना चाहिए। भैंस तो गायसे भी अधिक दूध देने वाली होती है। सम्भव है कि उस समय हमारे देशमें भैंसें न पायी जाती हों। बादमें किसी बाहर देशोंसे आयी हों।

तो जो-जो चीजें लोगोंको ज्यादा लाभकारी जंचीं वे देव मानी जाने लगीं। सूर्य और चन्द्र देव माने जाते हैं, क्योंकि सूर्यका उतना उपकार है कि मानो सूर्य ५-७ दिन न निकले,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

खूब बादल हो जायें और पानी भी खूब बरस रहा हो तो कहो उस समय कितनी ही बीमारियाँ फैल जायें, कितने ही लोगोंकी मृत्यु हो जाती है, और उस सूर्यके प्रकाश बिना फसल नहीं पैदा हो सकती। अगर कोई कहे कि फसल तो बिजलीकी गर्मीसे पैदा हो जायगी तो अभी तक तो कोई ऐसा उदाहरण सुननेमें नहीं आया। सूर्यके प्रकाश बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकते, खेती नहीं हो सकती, इसलिए सूर्य उपकारी मालूम पड़ा, इससे यह देव माना जाने लगा। यद्यपि सूर्यमें रहने वाला देव देव है, देवगतिका जीव है। वह भी कोई पूज्य नहीं है। भले ही वह ज्योतिषियोंका प्रतीन्द्र है, मगर पूज्य नहीं है। पूज्य तो रत्नत्रयधारी आत्मा होता है। चन्द्रको भी देव माता जाता है, क्योंकि उसमें शीतलता विशेष है। देखा होगा कि गर्मीके दिनोंमें शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षकी रातोंमें कितना अन्तर रहता है? शुक्लपक्षकी रातों में कुछ शीतलता विशेष रहती है। इससे चंद्र भी बड़ा उपकारी होनेसे देव माना जाने लगा। एक ही बात क्या, अनेक बातें ऐसी हैं, मगर ये सब पौद्गलिक बातें हैं। उनसे जीवका क्या उपकार है? उपकार तो जीवका एक अपने आपके अंतस्तत्त्वके ध्यानसे है। ये तो सब लौकिक बातें हैं। तो ये सब होती हैं। कितनी ही चीजें ऐसी होतीं कि जिनसे उपकार तो बहुत होता है, मगर खराब हैं, घृणाके योग्य हैं, इसलिए लोगोंने उनका कोई आदर नहीं किया। जैसे चूल्हा, चक्की ये भी तो बड़ी उपकारी चीजें हैं। बहुतसे लोग तो इन्हें भी पूजते हैं। और क्यों जी क्या संडास कम उपकारी चीज है? उसके बिना भी तो काम नहीं चलता, मगर उसको तो किसीने नहीं पूजा। तो ये सब दुनियामें जब-जब जो-जो नेता कहलाये, इस प्रजाके और उन नेताओंकी जैसी बुद्धि गई, जैसा मार्गदर्शन किया उस तरहसे ये लोग चलने लगे। ये सब पौद्गलिक हैं, कोई पूज्य नहीं है, लेकिन मोही जनोंने इन्हें उपकारी जानकर इन्हें पूज डाला, क्योंकि मोहियोंको पुद्गलसे ज्यादा नाता रहता है। इनमें ऐसी द्रव्यताकी बुद्धि बनी है। ये सभी पदार्थ रूप, रस, गंध, स्पर्शवान हैं, पुद्गल हैं और इन चारों गुणोंकी प्रतिसमय उनमें पर्यायें होती रहती हैं। चाहे उसका ज्ञान हो अथवा न हो। इस प्रकार इस सूत्रमें इन्द्रियका वर्णन किया।

मनका उपकार व विषय जाननेकी जिज्ञासा—अब तक यह एक जिज्ञासा बनती है कि इन्द्रियकी गोष्ठीसे इस मनका बहिष्कार कर दिया गया है। यह मन इन्द्रियमें शामिल नहीं है। यद्यपि देखो इन्द्रियसे भी ज्यादा काम मन कर रहा है और द्रव्य मनका आलम्बन लेकर बहुत बड़े-बड़े भोग उपभोगकी बातें की जाती हैं, लेकिन यह मन बाहर है नहीं, लोगों को दिखता है नहीं, इस कारण इस मनको अन्तःकरण कहकर टाल दिया और इन्द्रियमें इसको शामिल नहीं किया। अच्छा, नहीं किया, पर यह तो बतलावो कि मनको ईषत् इन्द्रिय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो माना है। मनका भी कोई विषय है, कार्य है कि नहीं ? कोई कहता है कि हाँ हाँ मनका भी कार्य है। मनका यह कार्य है कि इन्द्रियके काममें सहयोग देना। इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंको भोगती हैं और मन उनमें सहकारी होता है। जैसे कि हम आप लोगोंको अच्छी तरह पता है कि हम देखते तो हैं, रूप भी ज्ञानमें आता है, पर इस मनके सहयोगकी वजहसे बड़ा स्पष्ट समझमें आता है। मन न हो और केवल आँखसे रूप देखते हैं तो वह कैसा देरमें समझमें आता है ? आया तो है समझमें, मगर भंवरा ततैयेको मामूली ढंगसे समझमें आता, उनमें कुछ दृढ़ता नहीं। उनमें हम संज्ञियों जैसी स्पष्टता नहीं। इस तरहसे चलना होगा तो मन इन्द्रियके विषयका परिचय करानेमें सहकारी होता है, ऐसा एक उत्तर आया। किन्तु इसके बाद यह भी एक जिज्ञासा है—तो क्या मनका एक-एक स्वतंत्र विषय नहीं है ? केवल इन्द्रिय अपने मनको जानें, क्या इतना ही काम है मनका या मनका कोई स्वतंत्र विषय है जिससे यह सीधा इस विषयको जान ले इन्द्रियकी कोई बात न हो ? हाँ है विषय। इसी विषयका वर्णन अगले सूत्रमें कहते हैं।

श्रुतमनिन्द्रियस्य····॥२१॥

मनके विषयका प्ररूपण—अनिन्द्रियका विषय श्रुत है, मनका विषय श्रुतज्ञान है। श्रुतके मायने हैं आगम, आगमका बोध। एक बात यह समझ लेनी है कि श्रुतज्ञान तो एकेन्द्रियके भी कहा, दोइन्द्रियके भी कहा। जिनके मन नहीं है उनके भी श्रुतइन्द्रियका विषय कहा, और यहाँ बतला रहे हैं कि मनका विषय है श्रुत तो इसका अर्थ लेना है—इन्द्रियका विषय नहीं है सम्यक् श्रुत। इन्द्रिय द्वारा भी श्रुतज्ञान होता, एक तो इस बातको मना नहीं किया गया। एक मनका विषय बतलाया है। मनका विषय श्रुत ही होता, अन्य नहीं। एक साधारण रूपमें यह अर्थ लेना, मनका विषय रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं। जानता मन इसको भी है, मगर जानेको जानता है, अनजानेको नहीं जानता। मतिज्ञानसे रूप, रस, गंध, स्पर्श को जानकर फिर मन उनके बारेमें खोटा जाना करे, यह तो बात चलेगी, मगर उसका साक्षात् विषय नहीं है। यह विषय इन्द्रियका है। साक्षात् विषय मनका क्या है ? श्रुत। दूसरी बात यहाँ यह समझनी कि यह मोक्षशास्त्र मुख्यतया सम्यग्ज्ञानके विषयका वर्णन करेगा। प्रथम अध्यायमें एकदम बताया है कि मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल—ये ५ ज्ञान हैं। सब कुछ वर्णन किया, अधिक वर्णन किया, विस्तारसे किया, फिर अन्तमें जाकर एक सूत्रमें यह कह दिया कि मति, श्रुत, अवधि विपरीत (उल्टा) भी होते हैं। अगर सब ज्ञानोंसे बात कहनेका प्रयोजन होता इस ग्रंथका विपरीत ज्ञान सम्यग्ज्ञान, तब फिर यह अलगसे सूत्र कहनेकी क्या जरूरत थी ? वह एक गौण बात है। प्रसंगवश बताया गया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्यों ऐसा बताया गया ? यहाँ तो मोक्षमार्गका प्रकरण है। हमको मोक्षका मार्ग मिले, उससे जो-जो कुछ जानकारियाँ करना चाहते वे जानकारियाँ करायी जा रही हैं। और स्पष्ट कहा—प्रमाणनयैरधिगमः। समस्त तत्त्वोंका परिचय प्रमाण और नयोंसे होता है। तो क्या मिथ्या ज्ञानोंसे भी परिचय हुआ करता ? तो सच्चा परिचय तो नहीं है। एक बात उससे यह जानेंगे कि इस ग्रंथमें सम्यग्ज्ञानका वर्णन है।

आगमज्ञानकी मनोविषयता—दूसरी बात जहाँ श्रुतज्ञानका वर्णन किया, लक्षण बताया तो कहा है—'श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदम्' श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है और उसके दो अनेक और १२ भेद हैं। यहाँ भेद वाली बात कहनेसे किस श्रुतज्ञानकी बात समझी गई ? सम्यक् श्रुतज्ञानकी, आगमकी बात। इसके दो भेद हैं अंगबाह्य, अंगप्रविष्ट। द्वादशांग जिनवाणी उसे ही श्रुतज्ञानमें लिया है, ऐसा श्रुतज्ञान मनका ही विषय हो सकता है, इंद्रियका नहीं। मनका स्वतंत्र विषय भी है। क्या ? श्रुतज्ञान। मुख्य विषय यहाँ लिया जाय आगम सम्बन्धी तत्त्वज्ञानको और गौणरूपसे लिया जाय कि मतिज्ञानसे जाने गए पदार्थका ज्ञान। यद्यपि इस आगम वाले श्रुतज्ञानको भी हम ज्ञान मतिपूर्वक करते। मति बिना यहाँ भी नहीं होता। आगमका पढ़ना, बाँचना, सुनना, देखना, इन्द्रियसे काम पहले हुआ, उसके बाद फिर श्रुतज्ञान चला, मगर वह श्रुत अनिन्द्रियका एक साक्षात् विषय भी है। वह इन्द्रियों द्वारा समझा नहीं जा सकता। ऐसा श्रुतज्ञान मनका विषय है, श्रुतज्ञानका विषयभूत पदार्थ वह श्रुत है। श्रुतज्ञान मनका विषय नहीं किन्तु श्रुतज्ञानमें जो समझा गया वह मनका विषय है। ज्ञानको मनका विषय नहीं कहा जा रहा, विषयको भी उस नामसे पुकारते। जैसे कोई केलेकी डलिया लिए केला बेच रहा तो लोग कहते हैं ऐ केला यहाँ आवो तो क्या उसने केला को बुलाया ? उसने तो केला बेचने वाले आदमीको बुलाया। यह बात केला बेचने वाला और खरीदने वाला दोनों समझते हैं, सौदा हो जाता है। तो ऐसे ही मनका विषय श्रुत है, इसका अर्थ यह लेना कि श्रुत ज्ञानसे जो जाना गया वह मनका विषय है।

विकृत आनन्द और ज्ञानकी उपेक्षा करके स्वाभाविक ज्ञान व आनंदके उपायमें लगने का अनुरोध—स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द व श्रुत, ये सब विषय हैं आखिर ज्ञानके ही। वह तो एक दुविधा लग गई। कर्मका प्रसंग और आवरण लगा हुआ है इसलिए ये सब भिन्न भिन्न बातें होती हैं, पर यह है परमात्मा परमेश्वरकी लीलाका विषय। यह जानता है। अभी इसकी उल्टी लीला चल रही है, सो यह उल्टा काम करता रहता है। जब इस भगवान परमेश्वरकी सीधी लीला होगी तो वहाँ अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्द, इनका अनुभव बनेगा। तो ऐसी एक पवित्र स्थिति पानेके लिए हमारा यह कर्तव्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि इन स्थितियोंका स्रोतभूत जो एक सहज ज्ञानस्वरूप है, सहज चैतन्यभाव है उस सहज भावकी हम दृष्टि करें और उस सहजभावरूप अपनी प्रतीति बनायें कि मैं तो यह हूं। मैं गुम गया था, मैं जगह-जगह ढूंढ़ रहा था अपनेको याने बाह्य पदार्थमें ज्ञान और सुख ढूंढ़नेका अर्थ है अपने आपको ढूंढ़ना, क्योंकि ज्ञान आनन्दस्वरूप मैं हूं और मैं आनन्द बाहर ढूँढ़ूँ तो इसके मायने हैं कि मैं अपने आपको बाहर ढूँढ़ रहा था। गुम गया था, इसकी सुध भी नहीं थी। अब जाना अपनेको, अब इसे न छोड़ेगा। देखो बाहर ढूँढ़नेको बेवकूफी कहते हैं। जैसे कोई आदमी खुद तो खड़ा है और कहे कि मैं गुम गया, मुझे बताओ। वह बाहर झाँकता फिरे, मेरा मैं गुम गया, इस तरह यदि कोई चेष्टा करे तो जैसे वह मूर्ख है, इसी तरह बाहरमें हम झूठे आनंदको, झूठे ज्ञानको ढूँढ़ें तो हम भी मूर्ख हैं। हम अपने आपमें अपनेको ढूँढ़ें तो अपना मालिक अपना प्रभु अपनी दृष्टिमें रहेगा और वहाँ वास्तविक आनन्द प्राप्त होगा। इसलिए बाहरमें हम ज्ञान और आनन्द ढूँढ़नेको व्यग्रता छोड़कर ज्ञानानन्दस्वरूप जो निज अंतस्तत्त्व है उसमें यह अनुभव करें कि 'मैं यह हूं।' ऐसा जो ज्ञानी होगा उसको सर्वसिद्धि प्राप्त होगी।

उपद्रवोंके मूल इस शरीरकी आस्था न कर दोषोंसे दूर रहनेका संदेश—हम आप सब लोग हैं क्या ? इस समय हमारी आपकी स्थिति है क्या ? स्थिति है यह कि शरीर और जीव—इन दोका व्यक्त एक बंधन है और जिसके कारण यह एक भव बन रहा है। मैं मनुष्य हूं, कोई पशु है, कोई पक्षी है, कोई कुछ है, तो हैं क्या ये ? जो जीव दिख रहे हैं, जिन्हें हम प्राणी समझते हैं वे हैं क्या ? शरीर, कर्म और जीव, इन तीनका पिण्ड है, अपनी अपनी बात है, ऐसा समझकर सुनना है। सब बात अपने आपपर घटाना है। यह क्या है ? शरीर, कर्म और जीव इन तीनका पिण्ड। पिण्ड रहो किन्तु मैं तो जीव ही हूं, शरीर नहीं हूं, कर्म नहीं हूं। मगर वह बन्धन बन गया है और उस बन्धनकी हालतमें यह स्थिति हो गई है कि भूख प्यास सर्दी गर्मी आदिक बाधायें मानते हैं। मानने वाला तो यह जीव है। बाधायें शरीर नहीं मानता। शरीरमें तो कोई अपने आपके काम होते हैं, पर वेदना मानता है यह जीव। तो शरीरका बन्धन है और उस नातेसे हम आप सब दुःखी हो रहे हैं। दुःख का कोई ठिकाना है क्या ? शरीरका दुःख है, वह तो चल ही रहा। भूख प्यास, सर्दी गर्मी और इसके अतिरिक्त इस शरीरके सम्बन्धके हो कारण सम्मान, अपमान, प्रशंसा, निंदा आदि के भी दुःख लगे हुए हैं। जीव शान्त तब कहलाये जब इसमें रंचमात्र भी क्षोभ न हो। तब तो कहना चाहिए कि जीव शान्त हो गया। जिसमें क्षोभ है उसमें शान्ति कहाँ ? निन्दा सुनते हैं तो क्षोभ आ जाता है, प्रशंसा सुनते हैं तो क्षोभ आ जाता है। निन्दासे होने वाला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षोभ क्रोधसे भरा है। प्रशंसासे माना जाने वाला क्षोभ तृष्णासे भरा है। जितना दुःख क्रोध में है उतना ही दुःख तृष्णामें है। लोग तृष्णा और क्रोध– इन दोके वश होकर अपने आपके जीवनको दुःखी कर रहे हैं। कोई उपाय ढूँढ निकालो ऐसा कि मेरेमें क्रोध न रहे और तृष्णा न रहे। अन्यथा यह जीवन कितना व्यतीत हो गया? थोड़ा रहा सहा जो जीवन है वह भी विषय कषाय विकल्पोंमें ही बीता जा रहा है। इससे तो समझो कि हमारा भविष्य बहुत बिगड़ जायगा।

श्रेष्ठ मनके लाभका सदुपयोग सकल संकटोंसे मुक्ति पानेके उपायका निर्माण—हम, जीव हैं, हम कभी मरने वाले नहीं हैं, सदा रहने वाले हैं। एक शरीर छोड़ते हैं दूसरे शरीर में पहुंचते हैं, ऐसा काम हम अनादिकाल से करते चले आ रहे। एक शरीर छोड़ा, दूसरे शरीरको ग्रहण किया, उसे छोड़ा फिर और शरीर ग्रहण किया। इस तरहके सिलसिलेमें आज हम आप मनुष्य हैं तो मनुष्यभवकी स्थिति कितनी सुन्दर है, श्रेष्ठ मन मिला है, ऐसा मन मिला है कि जैसा देव और नारकियोंमें भी सम्भव नहीं। जो अन्य संज्ञीपञ्चेन्द्रिय हैं उनके भी सम्भव नहीं, ऐसा विशिष्ट मन मिला है, इसे पाकर ऐसा कोई उपाय ढूँढ निकालें कि जिससे इस भवमें भी शान्ति हो और आगे भविष्यमें भी शान्ति हो। यहाँ बहुत बड़ी जिम्मेदारी है हम आपकी और इसी कारण इस समय हम आपको दो काम पड़े हुए हैं। शरीरका सम्बन्ध है, इस नाते से तो आजीविका का काम पड़ा है और चूँकि मैं आत्मा हूं इस नातेसे हमें एक शांतिका काम पड़ा है। गृहस्थजनोंको शांति चाहिए और साथ ही कुछ आजीविका। इस परिस्थितिमें आजीविका मुख्य चीज नहीं है, किन्तु जब हमारा एक ऐसा फंसाव हो गया कि हम शरीरमें फंसे हैं तो आजीविका भी चाहिए। तो आजीविका और आत्मकल्याण इन दो की जरूरत है कि नहीं? गृहस्थावस्थामें रहकर कोई कहे कि आजीविकासे हमें मतलब नहीं, तो आत्मकल्याण कर न पायेंगे गृहस्थीमें, क्योंकि आजीविकाका कोई सिलसिला नहीं बनाया, तो घरमें रात दिन झगड़ा, खुद भी परेशान तो वहाँ गृहस्थीमें रहकर आत्महितकी बात न कर पायेंगे, इसलिए आजीविका भी आवश्यक है, मगर इससे भी आवश्यक आत्मकल्याण है। अगर आजीविकामें कुछ कमी रह जायगी, सो तो बात निभ जायगी, मगर आत्मकल्याणमें बाधा आती है तो इस बातकी पूर्ति अन्य प्रकार न होगी। हमें चाहिए शांति आप सबको चाहिए आनंद शांति। वह किस प्रकार मिले, इसका जरा उपाय बनाओ।

परके लगावमें शान्तिकी असम्भवता—अब तक यह जीव कुटुम्बमें, वैभवमें, बाहरी बातोंमें, इज्जत प्रतिष्ठामें तृष्णा करता चला आया, उनमें लगाव करता चला आया, पर इनमें लगाव कर-करके क्या कोई कभी शान्त हो पाया आज तक? बहुत बढ़िया संयोग मिले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हों किसीको स्त्री पुत्रादिकके, सभी बड़े आज्ञाकारी हैं, विनयशील हैं, मगर क्योंकि पहली बात तो यह है कि जिनका संयोग है उनका वियोग जरूर होगा। चाहे कितना ही भला मिला हुआ हो, पर वियोग अवश्य होगा। तो जब वियोग होगा तब यह जीव कितना दुःखी होगा, क्योंकि मोह करता आया ना। अब मोहकी आदत तो बनी है, उनको अपनेमें समा लेनेकी भावना बनी है, और हों गया वियोग तो उसे बड़ा कष्ट होता है। दूसरी बात यह है कि जब तक संयोग है तब तक भी इष्ट पदार्थोंसे शान्ति नहीं मिलती, किन्तु घबड़ाहट और आकुलता ही रहेगी। उसकी ओर आकर्षण रहे तो अपनेको और भुला दिया और बाह्यपदार्थों में हमने अपना दिल लगा दिया, वहाँ कोई ठिकाना है नहीं, इसलिए वहाँ भी दुःख होगा। इसलिए भाई जितना जीवन शेष है उस जीवनका सदुपयोग यह है कि शुद्ध आत्माकी पहिचान करें और अपने आपके स्वरूपकी पहिचान करें, बस प्रारम्भिक धर्म इसीमें है और इसी में रमनेको चारित्र बोलते हैं। शुद्ध आत्मा कौन हैं ? ये संसारी जीव तो मलीन हैं, बन्धनमें हैं। कर्म, शरीर और जीव—इन तीनका चक्र चल रहा है यह, पर जो शुद्ध आत्मा है प्रभु अरहंत सिद्ध, वे समस्त विकल्पोंसे रहित हैं। रागद्वेष मोहका भाव वहाँ उतरा ही नहीं है, मूलसे नष्ट हो गया है, इसलिए उनको अनंत ज्ञान उत्पन्न हुआ, अनंत आनंद उत्पन्न हुआ है। दृष्टिका फर्क है। दृष्टि अगर परके लगावकी आ जाती है तो उस लगावमें लगाव बढ़ता जाता है और वह हैरान हो जाता है। दृष्टि अगर प्रभुकी ओर, आत्माकी ओर लगती है और ऐसा ही सत्संग मिलता है कि एक दूसरेको प्रेरणा देने वाला बनता है तो उसकी पवित्रता बढ़ती है, और यह सुखी हो जाता।

वस्तुस्वातंत्र्य तत्त्वके बोधामृतका पान होनेपर मोहविषवमनकी संभवता—भैया ! मोहविषपान अगर किया है तो इसका वमन करना होगा। तब यह सुखी शांत होनेका मार्ग पा सकता है। देखिये काम सहज है और बहुत बड़ा है। प्रत्येक जीवसे ममता हट जाय, मोहबुद्धि दूर हो जाय, अज्ञान मिट जाय, यह मेरा है, यह मेरा सर्वस्व है, इससे ही मेरा महत्त्व है, इससे ही मेरा गुजारा है, ऐसी जो एक भ्रांति बना रखी है, यह दूर हो जाय वह उपाय बनानेका काम पड़ा हुआ है। सारी जिंदगी करनेका काम वास्तविक यह है कि सत्य ज्ञानका प्रकाश हो, सत्य ज्ञानका प्रकाश होनेपर भी जब तक कमजोरी है, गृहस्थीमें रहते हैं, राग करना पड़ेगा, रागका व्यवहार बनेगा और वह राग-व्यवस्था बनायेगा, फिर भी जहाँ अज्ञान दूर होता है वहाँ फिर घबड़ाहट नहीं रहती। जीवके विह्वल होनेका कारण तो केवल मोहभाव है। इस मोहभावको हटाना है, यह हमारे करनेका काम पड़ा है और यह हटेगा तब, जब वस्तुका सही-सही स्वरूप जान लेंगे कि पदार्थ सब जुदे-जुदे स्वतंत्र-स्वतंत्र हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्त्वज्ञानके उद्यममें लगनेके अर्थ आवश्यक सदाचारकी आवश्यकता—अच्छा तत्त्व का ज्ञान करनेके लिए पहले थोड़ी अपनी तैयारी तो बनावें। जिसके रात-दिन खाने-पीनेकी धुन लगी है तो उस संस्कारमें आत्मज्ञानकी सद्बुद्धि उत्पन्न नहीं हो सकती। कुछ संयोग करना पड़ेगा, जो अपने आलस्यमें, व्यसनोंमें अथवा हिंसामें लगा है उसका चित्त इतना बेठौर हो जाता है कि वह अपने आत्माका ज्ञान करनेका पात्र नहीं रहता, इसलिए थोड़ा बाह्यमें सदाचार रहे और अंतरंगमें आत्माके ज्ञानकी धुन रहे। कमसे कम इतना सदाचार तो हो कि जो अभक्ष्य चीजें हैं, मद्य, मांस, मधु वगैरा उनका सम्बंध न रहे, रात्रिभोजनसे हमारा सम्बंध न रहे। लोग सोचते जरूर हैं ऐसा कि क्या बात है ? खूब उजेला रहता है, रात्रिमें बिजलीका उजेला कर लो—क्या दोष है ? मगर उसमें एक तो आध्यात्मिक दोष और एक बहिरङ्ग दोष, दोनों ही बताते हैं। आध्यात्मिक दोष तो यह है कि रात्रिका वातावरण ऐसा होता है कि उस वातावरणमें उस रात्रिमें जिनको भोजनकी रुचि है उनको आसक्ति विशेष होती है, राग उनके विशेष होता है अन्यथा वह सुलभ है। दिनमें खा लिया जाय। रात्रि में भोजन लोग क्यों खाते कि उसके प्रति राग, आसक्ति, ममता आदि विशेष हैं। लोग रात्रि भोजन करते हैं, पर उससे एक विकट कर्मबन्ध होता है। दूसरी बात यह है कि रात्रिके समय कितना ही आप प्रयोग कर लें, जंतुवोंका संचार बहुत रहता है। कितना ही प्रकाश बना लें। यह प्राकृतिक बात है कि सूर्यके प्रकाशमें कीटाणु नहीं ठहरते, और रात्रिके समयमें वे सब उमड़ आते हैं। देखा होगा आपने कि जहाँ रात्रिको मच्छर बहुत अधिक होते हैं वहाँ दिनमें बहुत कम रहते हैं, अथवा मिलते भी नहीं और रात्रिमें चारों ओरसे कितने झुंडके झुंड आ जाते हैं। ऐसी ही अन्न सब कीटोंकी बात है। दिनके प्रकाशमें कीट नहीं होते, रात्रिमें कीट होते हैं।

हिंसाका दोष लगना, आसक्तिका दोष लगना और आत्मज्ञानका पात्र न रहना, सबसे बड़ा भारी नुक्सान है। हिंसासाध्य भोजन न करें, जहाँ तक हो पवित्रतासे भोजन बनायें, कभी किसीकी झूठी गवाही न दें, कभी किसीके प्रति झूठ न बोलें, किसीकी निन्दा करनेका भाव न रहे, किसी परस्त्रीपर कुदृष्टि न रहे और चित्तमें तृष्णा न रहे कि अधिक धन जुड़े। अगर ऐसा कुछ संयम थोड़ा-थोड़ा बन सक रहा है तो प्रभुभक्ति और आत्मज्ञान दोनोंमें प्रवेश होनेका मार्ग पाया जा सकता। अन्यथा परिग्रहकी तो तृष्णा लगी है और भगवानकी भक्ति कर रहे हैं तो मन जहाँ बैठा है भक्ति तो उसकी कहलायगी। प्रभुकी भक्ति कहाँ रही ? अगर प्रभुमें चित्त गया है तो प्रभुकी भक्ति कहलायगी। तो अपनेको आत्मज्ञान चाहिए और आत्मज्ञान पानेके लिए मनका ऐसा सदुपयोग बनायें कि थोड़ा संयम रहे, सत्संग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की रुचि रहे, ज्ञानार्जनका प्रयत्न रहे तो यह जीव अपने आत्माका बोध कर सकता है।

विनश्वर पदार्थमें लगाव रखनेका अनौचित्य—अब जरा अपने-अपने आत्माकी बात सोचो कि मैं कौन हूं ? बारबार अपने को अनुभव करो कि मैं कौन हूं ? तो अन्तरसे एक आवाज आयगी कि जो जाननहार है, जो समझने वाला है, जिसमें ज्ञान है वह मैं हूं। इस मुझका जगतके किसी बाहरी प्रसंगसे कुछ सम्बन्ध है क्या ? जिस घरमें रह रहे हैं वह घर आपका है क्या ? घर छोड़कर न जाना पड़ेगा क्या ? सारा वैभव छूटेगा नहीं क्या ? इस जगतमें मेरा है क्या ? कुछ भी नहीं है। एक साधु जा रहा था नगरमें, एक बड़ी हवेली मिली। वहाँ एक चौकीदार बैठा था तो साधु पूछता है कि यह धर्मशाला किसकी है ? तो चौकीदार बोला—महाराज यह धर्मशाला नहीं है, धर्मशाला तो आगे है। साधु बोला—मैं यह नहीं पूछता, यह बतलावो कि यह धर्मशाला किसकी है ? तो फिर चौकीदार बोला—महाराज यह तो अमुक सेठकी हवेली है, धर्मशाला तो आगे है। इतनेमें उस मकानका मालिक जो ऊपरसे सुन रहा था उसने साधु महाराजको बुलाया और कहा—महाराज आपको ठहरना हो तो यहाँ ठहर जाइये, पर यह धर्मशाला नहीं है। धर्मशाला तो आगे है, यह तो आपकी हवेली है। तो साधु बोला—भाई हमें ठहरना नहीं है। हमने तो यों ही पूछा कि यह धर्मशाला किसकी है ? तो फिर वह सेठ बोला—महाराज यह धर्मशाला नहीं है, यह तो हमारी हवेली है। अच्छा इसको किसने बनवाया ? हमारे बाबाने। वे इसमें कितने दिन रहे ? महाराज वे तो पूरी हवेली बनवा भी न पाये थे कि गुजर गए थे। फिर किसने पूरी बनवायी ? हमारे पिताने। वह इसमें कितने दिन रहे ? कुल ५ वर्ष। और आप अब कितने दिन इसमें रहेंगे ? बस इतनी बात सुनते ही सेठकी आँखें खुल गईं और सब बात समझ गया। साधुके पैरोंमें गिरकर बोला—महाराज सचमुच यह धर्मशाला है, हवेली नहीं। तो यहाँके ये मकान महल धर्मशालाकी तरह समझो, कोई कितने दिन रह रहा, कोई कितने दिन ? बल्कि धर्मशालामें तो मंत्री वगैरासे प्रार्थना कर लो तो १०-५ दिन और भी ठहर सकते, पर ये मकान महल तो ऐसी धर्मशाला हैं कि आयुका क्षय होने पर कितनी ही मिन्नतें करो पर एक क्षण भी ठहर नहीं सकते।

स्व-पर अर्थका तात्त्विक ज्ञान पानेमें हित—जरा अपने आपपर करुणा करके सोचो तो सही कि मेरेको अब क्या करना चाहिए जिससे मुझे इस भवमें भी शान्ति मिले और भविष्यमें भी शान्ति मिले। वह काम है यह कि सही तत्त्वज्ञान उत्पन्न करें। अज्ञान चित्तमें मत बसावें। सही-सही जान लें कि यहाँ दिखने वाला जो कुछ है यह क्या है ? दिखने वाला जो यह मैं हूं वह क्या है ? जरा इन दो बातोंका सही-सही निर्णय कर लो। जो दिखने वाली

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चीज है यह सब माया है, ये सब विनाशीक हैं, परमार्थ नहीं हैं। परमार्थ तो एक-एक परमाणु है। अब जहाँ बहुतसे परमाणु जुड़ गए और एक यह शक्ल बन गई तो ये परमाणु बिखरेंगे नहीं क्या ? अवश्य बिखरेंगे। तब ये टूट जायेंगे। बतलावो महावीर भगवानका महल कहाँ पर है ? राजघरानेके तो थे ना, बड़े अच्छे महल थे, मगर अब कहाँ हैं वे महल और उनसे पहले भी जो चक्रवर्ती आदिक हुए उनके महल कहाँ हैं ? थे तो ये सब, पर सब नष्ट हो गए। तो ऐसे ऊँचे पक्के महल भी न रहे उन बड़े पुरुषोंके तो फिर हम आपकी साधारण झोंपड़ियोंकी तो बात ही क्या ? बताओ कौरव पाण्डवोंका, रामचन्द्रजी का कितना सुखद परिवार था, कैसा उनका आपसमें मेल था, एक दूसरे पर अपने आपका कैसा बलिदान करने वाले थे, पर कोई रहा क्या ? जब बड़े-बड़े पुरुष जिनके जमानेमें उनका बहुत बड़ा प्रताप फैला था वे भी न रहे तो फिर हम आपकी तो बात ही क्या है ? हम आपकी यह छोटीसी जिन्दगी भी जल्दी ही व्यतीत हो जायगी। कुछ रहनेका नहीं है इसलिए इन चीजोंमें लुभाना न चाहिए और एक तत्त्वज्ञान उत्पन्न करनेमें लगें।

मनका विषय श्रुत है इस प्रकारके परिचयसे आत्मशिक्षणका दिग्दर्शन—असलमें मैं क्या हूं, मुझे क्या करना चाहिए जिससे कि मुझे शान्ति रहे इसका प्रयोगात्मक ज्ञान करें। यहाँ कोई किसी मजहब (धर्म) की बात नहीं कह रहे, यह तो एक आत्माके धर्मकी बात कही जा रही है। चाहे किसी भी बिरादरीका हो, सबके आत्माकी बात चल रही है कि यदि अपनेको शान्त होना है तो पहला काम यह है कि अपने स्वरूपका सही ज्ञान करना चाहिए कि मैं देहसे भी न्यारा, प्रसंगोंसे भी न्यारा, विकारोंसे भी न्यारा एक ज्ञानमात्र तत्त्व हूं। देखो आत्माके समझनेकी बात अगर कठिन लगे तो कठिन-कठिन बात कुछ दिन सुनते रहेंगे तो एक दिन वही बात सरल बन जायगी और दूसरे सरल-सरल दिलपसंद बातें सुननेमें मन लगाया तो उससे आपको कुछ फायदा न मिल पायगा। रागके संस्कारमें यह जीव रह रहा है और रागभरी बातोंके सुननेमें ही चित्त लगाया, कुछ दिल खुश हो गया तो उस दिल खुश कर लेनेसे फायदा कुछ न निकलेगा। ज्ञान और वैराग्य बिना इस जीवकी आकुलता दूर नहीं हो सकती।

अब ज्ञानके बजाय रहे अज्ञान और वैराग्यके बजाय रहे राग तो जहाँ अज्ञान और राग बस रहे उसका फिर कोई ठिकाना नहीं रह सकता। कोई उसका फिर एक मार्ग बनाने वाला नहीं बन सकता। अज्ञानको दूर करें, रागको दूर करें, वस्तुकी सही समझ बनायें। अपने आपके आत्मासे प्रीति जगेगी तो आत्माका कल्याण होगा। मुक्ति याने संसारके सर्व संकटोंसे छुटकारा पानेका मार्ग बताया है तत्त्वार्थसूत्रमें मोक्षशास्त्रमें। मोक्षशास्त्रकी बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बताते हुए जीवतत्त्वके वर्णनके एक यह प्रकरण 'श्रुतमनिन्द्रियस्य' सूत्रमें है कि मनका विषय श्रुत है। तत्त्वज्ञान, विवेक, विचार, कल्याणकी भावना—ये सब मनके विषय हैं।

शुभोपयोग द्वारा चंचल मनका नियन्त्रण करके शुद्धोपयोगकी भूमिकामें प्रवेश करनेका संदेश—मन पाया है तो चाहे तो इस मनको विषयोंमें लगा सकते और चाहे तो इस मनको ज्ञान और वैराग्यके साधनोंमें लगा सकते, मगर ज्ञान और वैराग्यकी ओर मनको लगा देंगे तो सदाके लिए संकट छूट सकेंगे और विषयकषायोंमें मन लगाते रहेंगे तो जो दुर्दशा आज तक हुई है संसारमें रुलते-रुलते वही दशा आगे भी रहेगी। इससे जरा मनको समझायें कि रे मन तू बंदरकी तरह चंचल है, तू अपनी चंचलताको छोड़। चंचलता कैसे छूटेगी? ज्ञान और वैराग्यका नियंत्रण हो तो इस मन बंदरकी चंचलता छूटेगी।

किसी राजाको एक देव सिद्ध हो गया। अब वह देव इतना कठिन कि एकदम आते ही बोला—राजन्! बोलो क्या काम है? तुम जो काम बताओगे वही हम कर दिखायेंगे। तुम जो माँग करोगे वह हम ला हाजिर करेंगे। मगर एक बात याद रखना, कुछ न कुछ काम बताते रहना। यदि काम न बताओगे तो हम तुम्हें खा जायेंगे। अब क्या था? राजाने कहा—अच्छा एक बहुत बड़ा तालाब बना दो····लो तालाब बन गया।····राजन् काम बताओ।····अच्छा एक बड़ी सड़क बना दो।····लो बन गई सड़क।····राजन् काम बताओ। अच्छा एक ६० हाथ लम्बी जंजीर लावो। लो आ गई जंजीर। राजन् काम बताओ। इस जंजीरका एक छोर इस खम्भेमें बाँध दो और एक छोर अपने गलेमें बाँध लो।···लो बंध गई। राजन् काम बताओ।···अब तुम बंदरकी भाँति इस खम्भेपर चढ़ो और उतरो जब तक कि हम मना न करें। लो चढ़ गया तो अब उतरनेका काम पड़ा है और उतर आया तो चढ़नेका काम पड़ा है। वह देव बड़ा हैरान होकर उस राजाके चरणोंमें गिरा और बोला माफ करो राजन्, हम अपनी बात वापिस लेते हैं, तुम जब जब याद करोगे तब तब हम तुम्हारी सेवामें हाजिर होंगे। तो भाई ऐसे ही यह मन बंदरकी तरह चंचल है। यह हरदम जीव राजासे कहता है राजन काम बताओ। इसे कुछ न कुछ काम चाहिए। अगर इसे किसी काममें न लगाया जाय तो यह मनबंदर सचमुच ही बरबाद कर देगा इस जीव राजाको। इसे व्यसनोंमें, खोटी बातोंमें लगाकर बरबाद कर देगा। तो यह मनबंदर कहता है जीव राजासे कि राजन काम बताओ। तो यह जीवराजा परेशान हो गया। इस जीवराजाको मनबंदर ऐसा सिद्ध हुआ कि अनादि कालसे तो यह मन इसे मिला ही न था और जब यह मन मिला तो ऐसा बेढब मिला कि यह हर समय कहता कि काम बताओ। तो ज्ञानी जनोंने एक युक्ति निकाल ली। इस मनको परोपकारमें लगाओ, स्वाध्यायमें लगाओ, सत्संगमें बैठो,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधुसेवा करो, ये शुभोपयोगके काम अगर इस मनको बताते रहेंगे, रोज-रोज शुभोपयोग करते रहेंगे तो यह मन शान्त रह सकेगा और इस शुद्ध तत्त्वके ध्यानकी पात्रतासे बिछुड़ न पायगा।

शुद्धोपयोगकी शुभोपयोगानन्तरभाविता—भैया ! आखिर तो शुद्धोपयोग ही लक्ष्य होना चाहिए। आत्माका जो शुद्ध स्वभाव है उस शुद्ध स्वरूपकी दृष्टि हो, यह ही लक्ष्य करना है, मगर जो जीव अशुभोपयोगकी दुर्गन्धमें बसते चले आये हैं उनमें शुद्धोपयोगकी बात एकदम कहाँसे ला देवें ? जिसके भी शुद्धोपयोग बनता है उसके शुभोपयोगके बाद बनता है। शुभोपयोगसे गुजरे बिना शुद्धोपयोग कहाँसे हो सकेगा ? तो यह पर्याय है ना, कोई व्यसन आदिकमें डूबा है, कोई हिंसा, झूठ आदिक अशुभोपयोगमें चल रहा है उस अशुभोपयोगके बाद एकदम शुद्धोपयोग किसीके नहीं होता। उस अशुभोपयोगके बाद कुछ विवेक बनेगा, विचार चलेगा, कुछ शुभ भावना बनेगी, कुछ शुभोपयोग बनेगा। तो शुभोपयोग आया ना बीचमें ? तो जानकर करनेका काम क्या है ? शुभोपयोग। और लक्ष्यमें रखें शुद्ध तत्त्व, बस यही करनेकी चीज है। तो जरा संयममें अपने मनको लगायेंगे तो आत्मज्ञानके हम पात्र रह सकेंगे, और आत्मज्ञान बन गया तो समझो कि हमें सर्वसिद्धि मिल गई। सो समझ लीजिए—"धन कन कंचन राज सुख, सबहिं सुलभ कर जान। दुर्लभ है संसारमें एक यथारथ ज्ञान।" एक तत्त्वज्ञान, वस्तुके स्वरूपकी पहिचान दुर्लभ है। मैं आत्मा केवल ज्ञानानंदमय हूँ, इसका किसी जीवसे रंचमात्र सम्बंध नहीं, सबसे निराला है, ऐसा अपने आपको अपने स्वभावमें निरखा जायगा तो ऐसी प्रसन्नता होगी, ऐसा ज्ञानावरण बनेगा कि जिसमें आनन्द हो आनन्द रहे, क्लेशका रंचमात्र भी नाम नहीं, ऐसी अपने आपमें गहराई पाना है।

अन्तस्तत्त्वका लक्ष्य और अन्तस्तत्त्वमें प्रवेश कराने वाले श्रुतको मनका विषय बनाने का अनुरोध—अन्तस्तत्त्वकी गहराई पानेके लिये थोड़ा वैराग्य अवश्य होना चाहिए, संयम अवश्य होना चाहिए। रात्रिभोजनका त्याग करें, विषयवासनाओंका त्याग करें और लगन लगावें, इसे जानें तो सही कि मैं कौन हूं और इसका उत्तर जहाँ मिले वहाँ जायें, रहें, स्वाध्याय करें, आत्माकी खोज बना लें कि मैं आत्मा हूं क्या ? बस सब सुखका गैल मिल जायगा, सब शान्तिका मार्ग मिल जायगा। हमको किस ढंगमें चलना है, तो मोटे रूपसे यह बात है कि क्रोध, मान, माया, लोभ—ये चारों कषायें न रहेंगी तो शान्ति अपने आप मिल जायेगी। मगर ये चारों कषायें न रहें उसका कुछ उपाय है क्या ? हाँ, उसका उपाय है आत्मानुभव।

मैं केवल ज्ञानानंदस्वरूप हूं, अन्य कुछ मैं नहीं है, यह दृष्टि बनेगी तो हमारी कषायें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शान्त होंगी और यह दृष्टि नहीं है तो हम परका लगाव रखेंगे अब पर पर ही है। हम चाहें कि ये अमुक भाई इस तरह बैठें, इस तरह बात करें तो वह हमारे अधिकारकी बात तो नहीं है और हमारी इच्छाके अनुसार बात न बनेगी तो हम उसमें दुःख मानेंगे, और यह अपना आत्मा भगवान, यह ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा अपने-अपने पास है, कभी यह अपनेसे बाहर नहीं है। जब दृष्टि दें तब ही उसका आनंद लें, और बाह्य वस्तु हमारे अधिकारकी बात नहीं है, हम उसपर दृष्टि रखते हैं तो हमको दुःखी होनेका बराबर मौका आता है। इसलिए समस्त बाह्य प्रसंगोंको मायारूप जानकर उपेक्षा करके कुछ आत्माके ज्ञानको ओर हमें बढ़ना है। हाँ गृहस्थ हैं तो गृहस्थीके नाते ५-६ घंटे आजीविकाका भी काम देखें, उसका विरोध नहीं कर रहे, मगर मुख्य ध्येय यह बनायें कि मैं जीव हूं, मेरेको शांति चाहिए, मेरे को कल्याण चाहिए, मैं सदाके लिए शान्त रह सकूं वह उपाय मुझे चाहिए, अन्य यहाँके प्रसंग इनसे हमारा कोई गुजारा न चलेगा। ऐसा एक ध्येय बनायें और रोज-रोज ज्ञान द्वारा वस्तुस्वरूपका दृढ़ अभ्यास बनायें। सारी जिंदगी काम करना है तत्त्वज्ञानका तो वह दृढ़ होगी भावना और हम संसारके संकटोंके जो कर्मबन्धन हैं उनसे छूट जायेंगे, केवल स्वतंत्र हम ही आत्मा रह जायेंगे। इसीको ही तो सिद्धभगवान कहते हैं। वह है हमारी आखिरी मंजिल, जहाँ पहुंचकर हम कृतकृत्य हो जायेंगे, फिर हमको करनेके लिए कुछ शेष न रहेगा। ऐसे श्रुतज्ञानको मनका विषय बनाइये।

जीवकी द्विविधताका प्रसंग—जीवका परिचय हो जानेपर, संसारी, मुक्त सभी जीवों का परिचय हो जाने पर एक अलौकिक प्रकाश मिलता है। मैं कौन हूं, ये कौन हैं, मेरेको क्या करना था, क्या करता आया, क्या करना चाहिए ? ये सब बातें जीवोंके नाना प्रकारके परिचय करने पर स्वयं बन जाते हैं। जीवके परिचयकी ही बात कह रहे हैं कि जीव किसे कहते हैं ? जो ज्ञानानन्दस्वरूप पदार्थ है उसका नाम जीव है। जिसमें चेतना है उसे जीव कहते हैं। कोई अगर यह कहे कि जीव वीव कुछ नहीं हैं, सब गलत बात है तो ऐसी समझ जिसे बन रही वही तो जीव है। जो जीवको मना कर रहा है कि जीव कहीं नहीं है तो उससे कहो कि क्या कह रहे हो भाई, क्या समझ हो गई तुम्हारी, तो वह कहेगा कि मेरी समझमें यह आता है कि जीव कुछ नहीं है।

तो समझा दो उसे कि देखो जिसकी समझमें आता है ऐसा कि जीव कुछ नहीं है वही जीव है। जिसमें चेतना है, जो जाननहार है उसको जीव कहते हैं। ऐसे जीव दो प्रकार के हैं— एक तो वह जिस जीवके साथ दूसरी चीज लगी हुई है, एक वह जिसके साथ कोई दूसरी चीज नहीं लगी। केवल जीव ही जीव है। जब कोई चीज होती है तो उसके दो रूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होते हैं, एक तो संग वाला रूप और एक संगरहित रूप। तो जिस जीवके साथ और कुछ नहीं लगा उनका तो नाम है मुक्त जीव और जिस जीवके साथ कुछ लगा है उसका नाम है संसारी जीव। देखिये—जीव सब एक समान हैं, पर लगाकर अन्तर आ गया। तो लगाव तो एक बाहरकी चीज है ना। लगाव तो कुछ होने वाली चीज है ना दूर की जा सकती है ना? जो लगाव हमको संसारमें रुलाता है वह लगाव अगर न करें तो संसारके संकटोंसे छूट जायें और यह स्वस्थता बहुत सरल बात है। हम व्यर्थ क्यों परपदार्थोंसे लगाव लगायें और दुःखी हों? लेकिन कैसा इस पर एक मालिन्य छाया है कि बताने बताने पर भी, पढ़ने पढ़ने पर भी, ध्यान किए जानेपर भी यह मान्यता छूटती नहीं है। तो आज ही इसके लिए कोई दृढ़ बन जाय कि मुझको तो मेरे चैतन्यस्वरूपके अतिरिक्त किसी भी अन्य तत्त्वसे लगाव नहीं करना तो यह आज ही सुखी हो जाय, शान्त हो जाय।

मोहमहापराधका दुष्परिणाम—यदि हम चित्तत्त्वके अनुरूप नहीं अमल कर पाते तो कमसे कम समझ तो बना लें। जितना अमल होते बने हो, पर समझमें अगर भूल की, सम्यग्ज्ञानमें यदि प्रमाद किया तो यह महान अपराध कहलायगा। चारित्रमें हम न बढ़ सकें यह महान अपराध नहीं है। है तो अपराध, मगर हम सही ज्ञान न करें, यथार्थ बात न जानें तो इसको कहते हैं महाअपराध याने मिथ्यात्व महाअपराध है, असंयम अपराध है। तो ज्ञान द्वारा जानना है और उसका बहुत सीधा मार्ग है, फिर भी हम वस्तुके स्वरूपको यथार्थरूपमें जानना न चाहें तो हमें क्षमा नहीं हो सकती। क्या वजह है कि यह जीव पेड़ पौधोंमें पैदा होता, कीड़ा मकोड़ाकी पर्यायोंमें पैदा होता। कौनसा अपराध किया इस जीवने कि यह जीव डाली डाली, पत्ते पत्ते सबमें फैला? और ऐसा विड्रूप बना। यह किस अपराधका फल है? यह अज्ञानका, मोहका फल है। कोई कहे कि एक पुरुष किसीसे लड़ता नहीं, किसी को पीटता नहीं, किसी पर कुछ अत्याचार करता नहीं, अपने घरमें बैठा है और अपने शरीरमें बस इतना मान रहा कि यह मैं हूं और दुनियाको कुछ नहीं सता रहा, न किसी पर क्रोध करता, न विकल्प करता, न किसीके साथ छल करता, न कोई बातका लोभ करता। बस शरीरको मान लिया कि यह मैं हूं और अपने इस शरीरके सुखमें अपना ग्रस्त है तो यह कोई बड़ा अपराध है क्या कि जिसके फलमें पेड़ पौधोंमें पैदा होना पड़े? निगोद जैसी दुर्गतियोंमें उत्पन्न होना पड़े।

तो सोचो जरा यह कितना बड़ा अपराध है? एक तो अनंत शक्तिमान निज आत्मा भगवानपर इसने अत्याचार किया। जब भगवान स्वरूप मेरा मेरी दृष्टिमें नहीं रहता तो इतना बड़ा जो अन्याय किया, इस भगवानका घात किया तो इसका फल कितना बड़ा होना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिए, और इतना ही नहीं, जगतके अनंत जीवोंको भी कुछ न समझा। उनका भी तिरस्कार किया तो यह अनंत भगवंतोंपर इस मिथ्यात्वी जीवने अन्याय किया तो इसके फलमें अगर नरक निगोदमें जन्म-मरण करना पड़ा तो यह कोई कठोर दंड नहीं है। यह तो न्याय की बात है। सर्वाधिक लाभकी बात इस जीवको सम्यक्त्वलाभ है। प्रारम्भ तो सम्यक्त्वसे होता है। धर्म तो चारित्र है, पर धर्मकी जड़ सम्यक्त्व है। जैसे जड़के बिना पेड़ नहीं बन सकता, ऐसे ही सम्यक्त्वके बिना चारित्रमें वृद्धि नहीं हो सकती। तो हमें सही-सही ज्ञान करना चाहिए।

संसारी जीवकी पहिली दशाओंका परिचय—जीव दो प्रकारके कहे गए—एक उपाधिसहित और एक उपाधिरहित। उपाधिरहित तो हैं सिद्धभगवान और उपाधिसहित हैं संसारी जीव। अब संसारी जीवोंका विस्तार देखो और साथ ही यह सोचते जाइये कि यह जीव जब अपने स्वरूपमें नहीं ठहरता और मोह रागद्वेषके चक्रमें पड़ा रहता तो उसको ऐसे-ऐसे भव धारण करने पड़ते। यह जीव अनादिसे तो निगोदमें रहा जहाँ एक श्वासमें १८ बार जन्म-मरण करना पड़ा। वह श्वास भी कौनसी कि हाथकी नाड़ीके एक बार उचकनेमें जितना समय लगे उतने समयमें १८ बार जन्म-मरण किया। मुश्किलसे वहाँसे निकले, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येकवनस्पति हुए। बड़ी दुर्लभतासे यह जीव त्रस पर्याय पाता है और त्रसमें भी मनुष्य बनना यह बहुत दुर्लभ बात है। इतना बननेके बाद भी अगर हम इस भगवान आत्मापर अन्याय करें, गायने आत्माकी महिमा न जानें, आत्माका आदर न करें, आत्माकी सुध न लें और बाहरी असार विषयोंको महत्त्व दें तो यह निज भगवान आत्मापर बहुत बड़ा अन्याय कहलायगा, और उसका फल यह होगा कि फिरसे यह निगोद बन जायगा। तो कुछ सावधानी बर्तनी चाहिए, कुछ अपने आपपर दया करनी चाहिए। यह जीव अनंतकाल एकेन्द्रियमें भ्रमण करता आया। उस एकेन्द्रियकी चर्चा हो रही है। इन्द्रिय—जो संसारी आत्माकी पहिचान है उसे इंद्रिय कहते हैं। वे इन्द्रियाँ ५ हैं। स्पर्शन—जो सारे शरीरमें फैला है एक वह इन्द्रिय जिससे कि ठंड गर्मीका ज्ञान चलता है। रसना इन्द्रिय (जिभ्या) जो थोड़ीसी जगह है। घ्राणेन्द्रिय जो उससे भी कम जगहमें है और चक्षु उससे भी कम जगहमें है। तो यहाँ एकेन्द्रिय जीवकी चर्चा चल रही है कि एकेन्द्रिय किसे कहते हैं? तत्त्वार्थसूत्रमें अभी यह प्रकरण आया था कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, ये स्थावर कहलाते हैं।

सूत्र कहते हैं—'पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।' देखिये थोड़ा आचार्योंकी सूत्र-रचना पर ध्यान दो, यह भी एक कामकी बात है। हम अपने ऋषि संतजनोंके आगमसे परि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्रमसे अपरिचित रहें और विषयोंके परिचयमें तो बहुत आगे बढ़े रहें तो यह कोई अच्छी बात नहीं है। हम आप लोग ऐसा सोच समझ बैठते हैं कि कठिन बात हमारी समझमें नहीं आती, तो आप यह बतलाओ कि कठिन बात क्या पत्थरोंकी समझमें आयगी ? हम आप जीव हैं जिसकी समझमें आये। जैसे वे वैसे हम आप। ज्ञान तो सब प्रकारका है और भला बतलावो कि जो बड़ा व्यापार करनेमें, धन कमानेमें, बड़े-बड़े हिसाब लगानेमें, बड़ी-बड़ी फैक्ट-रियोंके संचालनमें जिसका दिमाग बहुत चल रहा है। क्या वह दिमाग, वह बुद्धि एक सहज ज्ञानस्वरूप आत्माको जाननेमें कुछ कठिनाई मानेगा ? अरे कठिनाई तो इसमें है कि ये बाहरी चीजें खूब जोड़ लिया, खूब लौकिक व्यवस्था कर लिया। क्योंकि वे बाहरी चीजें हैं। उनपर हमारे आपके अधिकारकी बात नहीं है, और जो निज आत्माकी बात है वह अत्यंत सुगम चीज है। जरा अपनी दृष्टि लगायी तब ही अपने आपके स्वरूपको निहार लो, यह भगवान आत्मा नित्य अंतःप्रकाशमान सदा शाश्वत निरंतर अपने आपके अंदर विराजमान है। बस यह उपयोग दृष्ट नहीं होता, इसलिए यह सारी परेशानी है, पर अंतःस्वरूप तो सदा विराज-मान है। एक अपने आपके मार्गको मोड़ने भरकी देर है, फिर अपना कल्याण अवश्य है।

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥

एकेन्द्रिय जीवोंके विभाग—पहले सूत्रमें यह बात आयी थी कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति ये स्थावर हैं। इसके बाद फिर आया कि द्वीन्द्रिय आदिक त्रस हैं। अब देखो क्या क्रम बना ? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस। तो वनस्पति है अन्तमें जिसके तो यहाँ अंत शब्दका अर्थ समीप अगर ले लिया जाय तो इसका अर्थ है कि वायु और त्रस ये स्थावर हैं, इसलिए इसका अन्त शब्द लेना चाहिए कि प्रथम पृथ्वीसे लेकर वनस्पति पर्यन्त जितने जीव हैं उन सबके एक इन्द्रिय है। कौनसी इन्द्रिय ? स्पर्शनइन्द्रिय। देखो संसारमें सबसे अधिक संख्या किसकी है ? ५ हैं कि जीव है—एकइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। तो सबसे अधिक जीव कौन हो सकते हैं ? एकेन्द्रिय। उन एकेन्द्रियमें भी वनस्पतिके दो भेद करके निगोद और प्रत्येकवनस्पति, उनमें भी निगोद सर्वाधिक हैं। निगोद तो असंख्यात हैं, निगोद तो अनंत हैं, कितने जीवोंकी संख्या है। और हम आप भी कभी निगोद जीव थे। पूर्व समयमें भी हम मनुष्य हों, और ऐसा घर बसा हो, स्त्री पुत्र भी मिले हुए हों, यह बात नहीं है, यह नियम नहीं है। न जाने क्या थे ? कहो एकेन्द्रियसे निकलकर मनुष्य हुए हों। बात यह सोचनी चाहिए बड़ी गम्भीरतासे कि हम यदि अपने आत्माके मिलनका काम न कर सके, मेरा ज्ञान मेरे ही सहज ज्ञानस्वरूपको ज्ञान में ले, जहाँ ऐसी सामान्य स्थिति होती है कि कोई विकल्प नहीं और ज्ञानमें ज्ञानका ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुभव है, जिस अनुभवमें विशुद्ध सहज आनंद प्रकट होता है, जो भी एक सारभूत बात है वह अगर हम न कर सके तो हमारा जीवन एक व्यर्थसा है और देखो उसके जीवनकी व्यर्थता समझता हो तो गुजरे समयपर दृष्टि दें। गुजरा हुआ जो समय है इस भवका, किस किससे प्रेम बसाया, किस किससे मोह किया, मगर वे सब साथ निभा सकें क्या ? जो गुजर गए, किसीकी माँ गुजर गई, किसीके पिता गुजर गए, किसीकी स्त्री गुजर गई, किसीका पुत्र गुजर गया, तो उससे पहले संयोगके समयमें जो प्रवृत्ति करते थे बताओ वह स्वप्न जैसा लगता या नहीं ? एक व्यर्थ जीवन गंवाया। और आज सोचते होंगे कि न मोह करते वहाँ उन लोगोंमें तो हम अपने आत्माकी रक्षा तो बनाये रहते। तो जो गया सो गया। वैसी ही बात अब वर्तमानकी समझिये। अब यदि हम वर्तमानमें भी न चेते और भविष्यमें भी न चेते तो हमारा अब भला होनेका नहीं है।

अन्तस्तत्त्वके प्रसादसे समनस्क अवस्था पानेपर अन्तस्तत्त्वपर अत्याचार करनेका परिणाम पुनः अति निम्न दशामें पतन—यदि हम समनस्क होकर भी अन्तस्तत्त्वपर अन्याय करते रहे तो स्थिति ही ऐसी बनेगी जैसे एक छोटा कथानक है कि एक साधुके पास कोई चूहा रहा करता था, तो उस चूहेपर एक बार एक बिलाव झपटा तो चूहा डरके मारे एक बिलमें घुस गया। साधुने उस चूहेकी ऐसी दशा देखकर चूहेको आशीष दिया—विडालो भव याने तू भी बिलाव बन जा। लो वह चूहा भी बिलाव बन गया। फिर एक बार उस बिलाव पर झपटा कुत्ता तो फिर साधुने आशीष दिया—स्वानो भव याने तू भी कुत्ता बन जा। वह बिलाव कुत्ता बन गया। एक बार उस कुत्तेपर झपटा व्याघ्र तो साधुने आशीष दिया—व्याघ्रो भव याने तू भी व्याघ्र बन जा। तो वह व्याघ्र बन गया। अब उसे व्याघ्रका भी डर न रहा। एक बार उस व्याघ्रपर झपटा सिंह तो फिर साधुने आशीष दिया—सिंहो भव याने तू भी सिंह बन जा, लो वह सिंह बन गया। अब उसे डर किस बातका ? जब उसे कड़ाके की भूख लगी तो सोचा कि अब भूख कैसे मिटाई जाय ? समझमें आया कि यह साधु महाराज बैठे हैं, इन्हींको खाकर क्यों न भूख मिटा लें ? जो वह सिंह झपटा उस साधुपर। साधु ने उस सिंहके मनकी बात समझ लिया और पुनः आशीष दिया—पुनर्मूषको भव याने तू फिरसे चूहा बन जा। लो वह सिंह फिर चूहा बन गया। तो जैसे जिस साधुकी कृपासे चूहा सिंह बना उसीके भक्षण करनेके भावसे पुनः चूहा बना, ऐसे ही यह संसारी प्राणी इस भगवान् आत्माके प्रसादसे नरक निगोदकी दुर्गतियोंसे निकल-निकलकर आज उत्तम मानवदेहमें आया, यहाँ यदि इस जीवने आत्मा भगवानपर विषयकषायोंका हमला किया तो इसका फल यह होगा कि इसे फिर वही आशीष मिलेगा—पुनर्निगोदो भव, याने तू फिरसे निगोद बन

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज़ा ।

आत्माके अनुप्रयोगकी दिशा— देखिये—सुनने पढ़ने आदिकी बातें तो बहुत हैं, मगर करें कुछ नहीं तो उससे लाभ क्या ? करनेकी एक धुन तो बनायें, प्रोग्राम तो बनायें। जितना बन सके उतना करें। उस करनेका फल अवश्य मिलेगा। आज हम आप बड़ी अच्छी स्थितिमें हैं। यह चाहिए कि हम अन्तर्दृष्टि बनायें, और भीतरके आत्माको पहिचानें और यहाँके इन मायामयी समागमोंमें अपना मन न दें, अपना दिल न बहलायें, इसके लिए अपना जीवन न समझें। जीवन है मेरा मेरे उपकारके लिए, और मेरा उपकार है धर्ममें, और धर्म यह ही है कि अपने स्वरूपको जानूं और वैसा ही अपनेको मानता रहूँ कि मैं यह हूँ, बताओ ऐसा धर्मपालन कुछ कठिन है क्या ? कोई कहे कि मेरे पास धन नहीं है तो कैसे धर्म करें ? तो यह धर्म क्या धनसे होता है ? कोई कहे कि मेरे घरमें कोई अच्छा परिवार नहीं है, स्त्री पुत्रादिक नहीं हैं तो हम कैसे धर्म कर सकेंगे ? अरे धर्म इन बाहरी चीजोंमें नहीं है। अपने आत्माका सच्चा बोध करनेमें डट जावो कि मैं तो यह हूँ और कुछ नहीं हूँ, एक इसी बातपर दृढ़ हो जावो तो सब बात मिल जायेगी और जो इससे विचलित रहेगा उसको कुछ लाभ नहीं मिलनेका। एक अपनी भावना बनाओ कि मैं सहज ज्ञानज्योति हूँ। मैं अग्रवाल, जायसवाल, खण्डेलवाल आदि ये कुछ नहीं हूँ। मैं पुरुष भी नहीं, स्त्री भी नहीं। पुरुष और स्त्री होना क्या ये आत्माके चिन्ह हैं ? ये तो शरीरके चिन्ह हैं, भले ही उसमें कारण इस जीवके भाव बनें, जैसा भाव किया वैसा कर्मबन्ध हुआ, जैसा उदय आया वैसा यहाँ परिणमन बना, सो ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग तो है, पर आत्माके ये चिन्ह नहीं हैं। तब ही तो देखो पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद—इन तीनों वेदोंका विनाश ९वें गुणस्थानमें हो जाता है। एक पुरुषवेद जो अरहंत भगवानके बना रहा वह तो द्रव्यवेद है। चूंकि द्रव्यवेदसे कोई असर नहीं पड़ता, इसलिए वह अकिञ्चित्कर है, मेरा विघात करनेमें समर्थ नहीं, तो पुरुष भी मैं नहीं हूँ, स्त्री भी मैं नहीं हूं, ये देहधारी भी मैं नहीं हूँ, मैं तो एक ज्ञानज्योति पुञ्ज हूँ। देखो जैसे हड्डीका फोटो लिया जाता ना एक्सरा यंत्रसे तो वह यंत्र न तो रोमका फोटो लेता, न चमड़ेका, न खून, मांस मज्जा आदिका, वह तो सीधा हड्डीका ही फोटो ले लेता है, है ना एक गजब जैसी बात कि रोम, चाम, लहू, मांस आदिक इन सबके भीतर है हड्डी, मगर वह एक्सरा यंत्र बाकी सबको छोड़कर केवल हड्डीका फोटो ले लेता है। जब इन अचेतन यंत्रोंमें भी यह तारीफ है तो हम आप तो चेतन यंत्र हैं, हम आप सबको छोड़ दें मायने जिस समय हम अपने अंत:भगवान आत्माको सहज परमात्मतत्त्वको जानने चलें तो इसके ऊपर आवरण बहुत पड़ा है, शरीर है, कर्म है, विकार हैं, कषायें हैं, विचार हैं, ऐसे बहुत आवरण पड़े हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर तारीफ है उसकी कि इन आवरणोंको ग्रहण ही न करें, और इन सबके बीच बसे हुए उस ज्ञानपुञ्जको दृष्टिमें लें और यह निर्णय रखें कि मैं तो यह हूं।

तत्त्वज्ञका पौरुषोद्यम—देखिये तत्त्वज्ञने कितनी काट-छांट कर लिया। कर्म तो उसके कटते हैं। कोई बाहरमें देखकर कि मैं ऐसी यात्रा करूँ, ऐसा पूजनका विधान बनाऊँ, ऐसा उपवास करूँ, अमुक अमुक व्रत कर लूं तो मेरे कर्म कट जायेंगे, तो इससे कर्म नहीं कटते। कर्म केवल आत्माके इस रत्नत्रय भावसे कटते हैं। आप सोचेंगे कि फिर ये क्यों किये जायें जब इनसे कर्म कटते ही नहीं ? तो किये यों जाने चाहिएँ कि यदि ये न करेंगे तो फिर क्या परिस्थिति गुजरेगी ? अगर शुभोपयोग न करें, सत्कार्य न करें तो फिर क्या परिस्थिति गुजरेगी ? पाप करेंगे, व्यसनोंमें रहेंगे। तो उसमें तो हम आत्माकी सुधके पात्र ही न रह पायेंगे, इसलिए परिस्थिति हमसे शुभोपयोगी करायेगी अगर उन्नतिपथमें जाना है तो, और ये किए जाते हैं, और इन स्थितियोंमें एक आत्माकी सुध आनेके बहुत सुगम अवसर आते हैं, इसलिए ये कार्य करने योग्य बताये हैं, पर कोई ऐसा अज्ञान बसाये कि इस तरह फल उठावो, यों थालीमें धरो, ऐसी-ऐसी क्रियायें करो, इससे कर्म कटते हैं, तो यह अज्ञान है। तो अपना समय अच्छा गुजारनेके लिए, भक्तिमें हमारा कुछ समय लगे इसके लिए आलम्बन मात्र है। इससे कर्मबन्धन नहीं मिटता। अपने आत्माके सत्यस्वरूपकी सुध आये और उसके लिए ये सब कर्म किए जाते हैं। ये कार्य व्यर्थ नहीं हैं, किये जाने योग्य हैं, मगर सच्चा ज्ञान बनावें कि यह तो आत्माकी सुध आ जाय, ऐसी योग्यता बनाये रखनेके लिए यह काम है। ऐसा एक सही लक्ष्य रख करके काम करे तो उसे एक लाभ मिलेगा और जो लक्ष्य ही न बनायेगा उसे कुछ लाभ नहीं मिलनेका। जैसे कोई मनुष्य किसी नदीमें बिना लक्ष्य बनाये नाव खेता रहे तो कभी किसी दिशामें, कभी किसी दिशामें नाव बहती रहेगी, वह किसी ठिकाने न लग सकेगी, मजधारमें ही पड़ी रहेगी, क्योंकि उसने अपना कोई लक्ष्य ही नहीं बनाया कि कहाँ जाना है ? वह तो पागल ही कहलायगा। तो लक्ष्य बिना जैसे वह उन्मत्त चेष्टा है ऐसे ही लक्ष्य बिना हम आपके अशुभोपयोग और शुभोपयोग वाली चेष्टा ये उन्मत्त चेष्टा हैं। लक्ष्य बनाया जाय तो यह शुभोपयोग चार चाँद लगा देगा, और लक्ष्य सही न बने तो शुभोपयोग अज्ञानका ही बढ़ावा दे रहा है। इससे मुक्ति नहीं मिलती। तो मुख्य चीज यह है कि हम वस्तुका यथार्थ परिचय करें।

एकेन्द्रिय जीवमें भी अन्तःस्वरूपके दर्शनका प्रताप—यहाँ एक सूत्रकी व्याख्यामें कह रहे हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति पर्यन्त जीवके एकइन्द्रिय होती है। यहाँ अंतका अर्थ पर्यंत लेना चाहिए। सो इनके एक इन्द्रिय होती है यह तो कह दिया। लेकिन हम कहेंगे

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि आँख होती है। कोई कहेगा कि नाक होती है। वह एक कौन इन्द्रिय होती है ? तो भाई एक शब्दके कई अर्थ होते हैं। एक शब्दका १ संख्या भी अर्थ है। एकइंद्रिय होती है, दो-तीन नहीं होतीं, और एकका प्रथम अर्थ भी होता है। वह तो एक ही है मायने प्रथम है। तो यहाँ एकका अर्थ प्रथम लेना। एक इन्द्रिय है मायने प्रथम इन्द्रिय है स्पर्शनइन्द्रिय। देखिये—जीवपरिचयमें एकेन्द्रियकी चर्चा चल रही है। उसके सहारे समस्त जीवोंका परिचय साथ-साथ चल रहा है, क्योंकि किसी जीवको उसका जो सहजस्वरूप है उस दृष्टिसे देखा तो सारे जीवोंको उसने जान लिया। तो हम अपने आपमें ऐसा अनुभव बनायें कि मैं सहज ज्ञानज्योति मात्र हूं, अन्य कुछ नहीं हूं, अगर कहीं लाखका नुक्सान है तो उससे मेरा कुछ नुक्सान नहीं, वह तो एक पुद्गलकी चीज है, अगर लाखका फायदा है तो उससे मेरा कोई फायदा नहीं। वह तो पुण्य-पापके उदयकी बात है। हो रहा है ऐसा, पर मेरा उससे कोई फायदा नहीं है। और कोई कहे कि यह तीनों लोककी विभूति यह सब मैंने आपको दे दी तो बताओ तीनों लोककी विभूति पा जानेपर भी होगा क्या इस जीवका ? इस जीवके काम सम्पदा नहीं आने की, मित्रजन इसके काम नहीं आनेके, ये प्राप्त समागम इसके काम नहीं आनेके। इस जीव का काम तो इसकी ही स्वरूपदृष्टि देगी, क्योंकि इसका इतना अतुल प्रताप है कि इसके फल में यह त्रिलोकपति हो जावेगा। मैं यह ज्ञानज्योति पुञ्ज हूं, यह दृष्टि बने ईमानदारीसे याने किसी परपदार्थमें मेरी दृष्टि न अटके, केवल एक सहज ज्ञानस्वरूप निज आत्मतत्त्वको ही अपनाकर रह जायें तो मेरे भव-भवके कर्म कहेंगे, एक सुखसाताका वातावरण बनेगा। इस-लिए इन मायावी समागमोंसे लाभ-हानिका ब्यौरा मत बनावें। अज्ञान है तो मेरी हानि है और सम्यग्ज्ञान चल रहा है तो मेरा लाभ है। इस तरह अपनी अध्यात्महानि और अध्यात्म-लाभको सोचें ऐसा पौरुष बनायें कि जिससे मेरे आत्माका बोध दृढ़तम बन जाय और मैं यह ही निरन्तर अनुभव करता रहूं कि मैं सबसे निराला ज्ञानमात्र तत्त्व हूं। इस समाधिभावके प्रसादसे सर्व प्रकारका आनंद मिलता है।

एकेन्द्रियके स्वरूपके परिचयसे शिक्षा—मोक्षशास्त्रके द्वितीय अध्यायका २२ वाँ सूत्र था, जिसमें यह बताया गया कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, इनके सिर्फ एक स्पर्शनइन्द्रिय होती है। ये सब जीव हमारी ही जातिके हैं। कभी ऐसे हम आप भी थे और करनी ठीक न करें तो ऐसे हम हो सकते हैं। तो इन एकेन्द्रिय जीवोंकी दशा देखो—मन नहीं, रसनाइन्द्रिय आदिक नहीं। केवल एक स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा वे ज्ञान कर पाते हैं, उनका एक लेप्याहार है, अर्थात् मिट्टी, पानी पड़ा है, लिप गया और वे जड़ोंमें उसके अणु आते हैं और इस तरह उनका जीवन रहता है। जिनका विस्तार देखो कैसा बेढंगा है ? पेड़ोंका कैसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विस्तार ? पृथ्वी, पत्थर आदिकका कैसा विस्तार ? ऐसे विचित्र भेषमें इस जीवको अज्ञानके कारण रहना पड़ता है। अभी तक एकेन्द्रिय जीवोंका तो वर्णन किया, अब संसारमें जो अन्य और जीव हैं त्रस, उनके विषयमें कहते हैं।

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

त्रस जीवोंकी विशेषता और सब जीवोंमें स्वयंका स्रष्टापन—कृमि, लट, पिपीलिका (चींटी) भ्रमर (भंवरा) और मनुष्यादिककी एक—एक इन्द्रिय बढ़-बढ़कर याने स्पर्शन पर एक बढ़ाया तो स्पर्शन रसना, ये लट आदिक जीवोंमें पायी जाती हैं। उससे एक इन्द्रिय और बढ़ी तो तीन इन्द्रिय जीव चींटा चींटी आदिक हुआ, एक इन्द्रिय और बढ़ी तो भंवरा, ततैया आदिक चारइन्द्रिय जीव हुआ, फिर एक इन्द्रिय और बढ़ी तो पञ्चेन्द्रिय जीव, पशु, पक्षी, मनुष्य, देव आदिक हुआ। जगतके जीवोंका परिचय पानेके लिए मार्गणा बहुत सहायक हैं। जब हम जीव पदार्थको भली प्रकार पहिचानेंगे तो हम उनकी दया कर सकते हैं और हममें एक विरक्ति उत्पन्न हो सकती है। अहो—जीवकी ऐसी ऐसी घटनायें होती हैं अज्ञानभावके कारण। जगतमें, लोकमें ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जिस जगह यह जीव अनन्त बार न उत्पन्न हुआ हो, लेकिन फिर भी यह जीव जिस जगह जन्म लेता है उस क्षेत्रको अपना लेता है। यह मेरा गाँव है, यह मेरा मौहल्ला है, यह मेरा घर है। अरे तेरा घर तो तेरा सारा लोक बना फिरा और कहीं तू टिक न सका, आज एक इस छोटेसे घरमें तू ममता बुद्धि कर रहा कि यह मेरा है। यहाँ कौन किसका हो सका ? बड़े-बड़े महापुरुष जिनका उनके समय में बड़ा यश छाया था आज वे यहाँ नहीं रहे तो फिर हम आपकी तो बात ही क्या ? किसी का एक पलका भी भरोसा नहीं। तो जिस चीजका कुछ विश्वास नहीं उसके प्रति विश्वास बनाये हुए हैं ये मोही जन कि ये मुझे कभी धोखा नहीं दे सकते। और जो अपने आपमें ही नित्य अन्त.प्रकाशमान अपना सहज स्वरूप है उसकी ओर दृष्टि भी नहीं देते, तो इसका फल यह होगा कि संसारमें जन्ममरण करना होगा। जैसे लोग कहते हैं कि घट-घटमें बसा है भगवान। तो वह कोई अलगसे भगवान घट घटमें नहीं बसा, किन्तु घट-घटमें प्रत्येक जीव स्वयं भगवान स्वरूप हैं, लोग कहते हैं कि यह सब प्रभुकी लीला है, ईश्वरने बनाया है, अरे हम आपसे अलग कोई एक ईश्वर हम आपको बनाने वाला नहीं, किन्तु हम आप ही स्वयं ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, ईश्वर हैं, प्रभु हैं स्वभावसे, पर विकल्प हालतमें इस उपाधि दशामें हम आपकी ये सब सृष्टियाँ हो रही हैं। स्वयंके लिए स्वयं महान हैं, स्वयंका स्वयं रक्षक है, स्वयंका स्वयं ही मंगलस्वरूप है। मुझको तारने कोई दूसरा न आयगा, किन्तु जो तिर चुके हैं ऐसे प्रभुकी भक्ति हमारे हृदयको स्वच्छ करती है और हमें अपने आपमें बसे हुए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमात्मतत्त्वको दिखा देती है। इस कारण ज्ञानी जन प्रभुभक्ति करते हैं, पर प्रभु भी हम को तार दें, ऐसा नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा होने लगे तो प्रभुको या तो पक्षपाती कहो या असमर्थ कहो। सबको क्यों नहीं तार देते। जो लोग ऐसा मानते हैं कि ईश्वर ही सुख दुःख देना उनसे यह पूछो कि ईश्वरको तो दयालु मानते हो, वह सबको सुख क्यों नहीं देता, दुःख क्यों देता ? तो लोग उत्तर देते हैं कि जिसकी जैसी करनी है, जिसका जैसा कर्म है उसके अनुसार वह सुख दुःख देता, तो फिर ईश्वर पराधीन हो गया याने करनी करेगा बुरी तो उसे ईश्वर सुख नहीं दे सकता। तो फिर अलगसे ईश्वरको ही क्यों सुख दुःखके बीच भिड़ाते हो ? उसे तो वीतराग रहने दो, उसे तो सर्वज्ञ मानो। परमात्मा है, सर्वज्ञ है, वीतराग है, त्रिलोकपति है इस ढंगसे समझो और यहाँ निमित्तनैमित्तिक भावसे यह सब व्यवस्था चल रही है।

निमित्तनैमित्तिक योगमें विषम सृष्टि—जैसा कर्मका उदय होता है वैसी ही जीवकी स्थितियाँ बनती हैं। जिसके दोइन्द्रिय जाति नामकर्मका उदय है जिसके स्पर्शनावरण, रसनावरणका क्षयोपशम है, वीर्यान्तरायका क्षयोपशम है, ऐसे जीव दोइन्द्रिय बनते हैं। यह सब अपने आप व्यवस्था है। तो इसमें कभी बाधा नहीं आती। कोई एकके जिम्मे बात होती संसारकी व्यवस्थाकी, तो की ही नहीं जा सकती थी। हाँ तो त्रस पर्याय। देखो यह जीव चिरकाल एकेन्द्रिय पर्यायमें रहता है। एकेन्द्रिय पर्यायमें रहते-रहते कभी-कभी यह त्रस बन पाता है, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय बनता है, तो त्रस पर्यायका काल कुछ अधिक दो हजार सागर है। इतनेमें यदि यह जीव मुक्त हो गया तो संसारके संकट छूट गए और न मुक्त हो सका तो इसे स्थावर ही बनना पड़ेगा। तो स्थावर बननेसे फिर संसार में रुलेगा। हम संसारमें न रुल सकें—इसका उपाय क्या खोजा ? हमारे जन्म मरणके कष्ट न रहें, इसके उपायमें क्या सोचा ? अरे जन्म न हो तो कभी मरण न होगा और मरण न हो तो कभी जन्म न होगा। अगर मरण न चाहिए तो जन्म न होवे, भव न मिले। शरीर न मिले, ऐसी स्थिति चाहिए।

अपने भविष्यको शान्त रखनेके पौरुषमें बुद्धिमानी—देखो जो कुछ यहाँ मिला है लोकायतिककी तरह, यह न समझें कि भोग भोगें मरनेके बाद फिर कुछ रहेगा नहीं। जीव कहाँ रहता है ? इसलिए जो सुख समागम पाया उनको खूब भोगो। ऐसी बात लोग यों समझते हैं कि वे यह जानते हैं कि मरनेके बाद तो यह जीव रहनेका ही नहीं, लेकिन इस जीवके पूर्वभव थे और आगे भी भव होंगे। पूर्वभव थे, इसकी क्या निशानी है ? देखो बच्चा उत्पन्न होता है। उत्पन्न होते ही जब उसका मुख माताके दूधमें लगा दिया जाता तो वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कैसे पी जाता, कैसे गुटक जाता ? अरे उसके आहार करनेका संस्कार था, पूर्वभवमें भी आहार करता रहा, इसलिए उस संज्ञा संस्कारकी वजहसे उसे कुछ सिखाना नहीं पड़ता कि तुम ऐसे दूध पियो और ऐसे गुटक जावो। कोई बिल्कुल नई बात हो जो पहले थी ही नहीं, उसके लिए तो कुछ सिखाया जाना पड़ेगा, मगर जो तुरन्तका बच्चा भी दूध गुटकने लगता है तो यह पहला संस्कार है आहारसंज्ञाका कि जिससे उसे बाधा नहीं पड़ती। दूसरी बात—जाति स्मरणके अनेक उदाहरण सुने गए हैं और किन्हीं-किन्हीं लोगोंने देखा भी होगा। छोटे-छोटे बालक अपने पूर्व भवके घरको बता देते हैं। मेरा वह घर है, मेरा वह पिता है और वहाँ धन गड़ा है आदिक बातें कहते हैं। और बात सब निकल बैठती है तो इससे समझना कि पूर्वभव था हमारा, और जब पूर्वभव था तो उत्तरभव भी रहेगा। हम बिल्कुल विनाशको प्राप्त न होंगे, पर्याय ही हमने बदल लिया तो हम नष्ट न होंगे कभी, और पर्यायें हमारी बदलती रहेंगी। तो हम कैसी पर्याय पायें कि हमें सुख-शान्ति रहे ? तो संसारमें पर्याय तो कोई ऐसी है नहीं जो वास्तविक शांति दे, पर आत्मस्वभावका दर्शन और अपने आपमें ऐसा मानकर रह जाता कि मैं एक स्वच्छ ज्ञानानंद स्वरूप हूं, अन्य कुछ नहीं हूं, ज्ञान ही ज्ञान हूं, जिसमें विकारका प्रवेश नहीं, नाम नहीं। विकार होते तो हैं, पर वे परद्रव्यका सन्निधान पाकर होते हैं, मेरे स्वरूपकी चीज नहीं। मैं स्वरूपसे एक स्वच्छ ज्ञानपुञ्ज हूं, अन्य कुछ नहीं हूं, ऐसी दृढ़ श्रद्धा हो और फिर कभी दुःख हो जाय, यह कभी हो नहीं सकता।

जैनत्वका लाभ होनेपर क्लेशका अभाव—निजको निज व परको पर स्वरूपकी श्रद्धा वाले को ही जैन कहते हैं। जिनेन्द्रदेवने जो तत्त्व बताया, जो आत्मस्वरूप बताया उसकी श्रद्धा जिसे है उसका नाम है जैन। कभी दुःखी न हो सकेगा यह जिसने कि आत्माके स्वरूपका अनुभव किया। क्यों न होगा दुःख ? अच्छा दुःखके कारण क्या माने जाते हैं लोक में ? किसीका पिता गुजर गया, पुत्र गुजर गया, स्त्री गुजर गई, तो लोग दुःख मानते हैं और यह ज्ञानी जीव ज्ञाता रहता है। वह दूसरा जीव था, उसकी इतनी ही आयु थी, उसका परिणमन उसमें है, मेरेसे अत्यन्त भिन्न है, स्वरूप निराला, स्वभाव निराला, परिणति न्यारी। मेरा क्या सम्बन्ध है ? हो गया ऐसा। जैसा जगतमें अन्य अनन्त जीवोंके हुआ करता है वैसा हो गया, इसका वह ज्ञाता रहता है, कष्ट नहीं पाता। मानो लाखोंका टोटा पड़ गया तो वह जानता है कि सोना, चाँदी, रुपया पैसा यह तो सब पौद्गलिक ठाठ है, यहाँ न रहा, और किसी जगह चला गया, सत्ता तो हमारी नहीं मिटी। यहाँ रहता तो उससे आत्मामें कौन सुधार और यहाँ न रहा धन तो उससे आत्मामें कौनसा बिगाड़ ? वह ज्ञाता रहता है। ज्ञानीमें यह कला है कि वह सत्यस्वरूप जाननेके कारण मात्र जाननहार रहता है। जो केवल

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाननहार रहे उसको कष्ट नहीं होता और जो उसमें कुछ दखल देना चाहे तो उसे कष्ट होगा। जैसे यात्री लोग अजायबघर देखने जाते हैं तो वहाँ यह आदेश होता है कि देख लो सब चीजें, किसी चीजको छुवो नहीं। अगर किसी चीजको छुवा तो वहाँका निरीक्षक निकाल बाहर करेगा या उचित दंड देगा।

तो ऐसे ही यह सारा संसार अजायबघर है, लोग तो अजायब घरमें एकसे एक विचित्र पशु-पक्षी वगैरा देखकर बड़े खुश होते हैं—अहा कैसा यह मगर है, कैसा यह विचित्र हिरण है, कैसा है सूकर है····पर सोचो तो सही कि वे सब जीव कहांसे आये ? आखिर वे सब संसारी जीव ही तो हैं, पकड़-पकड़कर वे एक जगह इकट्ठे कर दिए गए हैं। यहाँ जो लोग नाटक, थियेटर, सिनेमा वगैरा देखने जाते हैं वह भी कोई नई चीज है क्या ? अरे उसके अंदर दिखाई जाने वाली चीजें सब संसारकी ही तो हैं। इस तरह बोला, ऐसे-ऐसे सम्बंध हुआ, इस तरहसे विरोध हुआ, इस-इस तरहसे बने, इस-इस तरहसे बिगड़े। अरे वहाँ नाटक क्या देखते ? यह संसार ही स्वयं एक नाटक है। जो बात वहाँके पात्र करते हैं, सिनेमामें दिखाते हैं वही बात यहाँ साक्षात् जीव कर रहे हैं। वे बातें तो बनावटी हैं। यहाँ सहज नाटक हो रहा है। यहाँका नाटक देखो ना। कैसे-कैसे लोग, कैसा व्यवहार, कैसा धोखा दिया, कैसी प्रीति किया, कैसा साथ निभाया, ये सारी बातें यहाँ देखनेमें आ सकती हैं।

तो यह संसार एक महान् नाटक है। यहाँ देख लो नाटक देखना है तो और नाटक का अर्थ क्या है ? न अटक, जिसमें न अटकना चाहिए उसे नाटक कहते हैं। जैसे लोग नाम धरते हैं ना हिन्दू होटल, जैन होटल, तो इसका अर्थ है कि हिन्दू हो तो टल जावो, जैन हो तो टल जावो, यहाँ न आवो, ऐसे ही नाटक याने अटको नहीं, हट जावो। आवो, स्वरूपको देखो, यह सारा जगत नाटक है, क्या रखा है बाह्य पदार्थोंसे प्रीति करनेमें ? कोई प्रीति करेगा बाह्य पदार्थोंसे तो उसका ही यह फल है कि ऐसे दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियमें उत्पन्न होना पड़ता।

जीवोंके सही परिचयसे हित-प्राप्ति व अहित-परिहारकी प्रेरणा—संसारके समस्त जीव ५ प्रकारके मिलते हैं और इन्द्रिय मार्गणा द्वारा जो यह ५ तरहका परिचय कराया जाता है यह उपयोगी अधिक क्यों है ? एक तो यह सुगम है, आँखों दिख जाता है। दूसरे इस आधारपर इस जीवके ज्ञानका अनुमान हो जाता है। जीवका लक्षण ज्ञान ही तो है। और उस ज्ञानका अनुमान होता है इस इन्द्रियको देखकर। अरे यह दो इन्द्रिय है। जिह्वा है तो यह रसका भी ज्ञान कर लेता है। इसके नेत्र हैं तो यह चारइन्द्रिय जीव है, यह रूपका भी ज्ञान कर लेता है। इसका इतना विकास हो गया। धर्म क्या ? आत्माके योग्य विकास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का नाम धर्म है। आत्मविकास—आत्मविकास जहाँ पूरा हो गया वह है भगवान। पूर्ण आत्मविकासका जो प्रयत्न करते हैं वे हैं गुरु और आत्मविकास करनेका जो मार्ग जान गया है वह कहलाता है सम्यग्दृष्टि, और जिसमें आत्मविकासकी योग्यता ही नहीं हो रही, मन ही नहीं है, उस कालमें वह कहलाता है असंज्ञी जीव। ऐसे जीव ये हैं दोइन्द्रिय आदिक। क्या करें? आज कुछ सुविधा पायी, पुण्यका ठाट पाया, उसे भोग रहे हैं। ये विषयसाधन बड़े सुगम लग रहे हैं, पर यह पता नहीं कि जो सुलभ लग रहे हैं ये विषय प्रसंग, ये कितने महंगे पड़ेंगे? इसका इस मोही जीवको पता नहीं रहता। कितने महंगे पड़ेंगे ये संसारके सुख? इन दोइन्द्रिय आदिक जीवोंको देख लो आज इस मनुष्यभवको पाकर अपनी शानमें मरे जा रहे, किसी की दो बात सहन नहीं कर पाते और उसमें अपनी तारीफ समझते हैं। साहब हममें यह ऐब है कि हमको दूसरेकी बात बरदाश्त नहीं है।

तो देखो वह अपना ऐब नहीं कह रहा मुखसे, वह अपने गुण कह रहा है, वह अपनी तारीफ बता रहा, लेकिन वह ऐसे शब्दोंमें कहता है कि लोग उसका अर्थ जल्दी-जल्दी समझ नहीं पाते। यहाँ तो आज शानके लिए मरे जा रहे पर मरकर यदि दो इन्द्रिय जीव हो गए कीड़ा मकौड़ा हो गए तो फिर क्या शान रहेगी? यहाँ तो लोग जरा जरा सी बातोंमें शान और हठ किया करते हैं, मगर मरकर दुर्गतियोंमें पहुंच गए तो फिर कहाँ रहेगी वह शान? ये मोही और अज्ञानी बस ये ही संसारके नेता हैं। जो संसारको बढ़ावा दें, जो संसारकी रक्षा करें वे कौन हैं? मोही और अज्ञानी। जो जन्ममरणकी परम्परा बढ़ायें ऐसे जीवोंके नेता ये ही हैं मोहेन्द्र और अज्ञानी।

किसीके बहकावेमें न आने वालेकी विवेकशीलता—जैसे जुवाकी जगह खेलने वाला पुरुष ऐसा फंस जाता है कि वह वहाँसे हटना चाहे तो उसको हटना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि जब वह सोचता कि अरे मैं तो हारता ही जा रहा हूं, अब तो मैं जो कुछ बचा उसे लेकर चला जाऊँ तो वहाँ बैठे खिलाड़ी लोग उसे चिढ़ाते हैं—बस इतना ही दम था, फिर वहीं वह खेलने लग जाता है तो ऐसे ही यह संसार सारा जुवाका फड़ है, यहाँसे हटना बड़ा कठिन लग रहा। किसीके अगर थोड़ासा वैराग्य जगे तो वह काम नहीं कर पाता, क्योंकि बाहरी प्रसंगोंकी ओरसे ऐसे-ऐसे उत्तर आते हैं कि वह फिर उनमें फंस जाता है। इसके लिए बड़ा प्रबल ज्ञान चाहिए। इस तरह किसीके बहकावेमें हम न आयें और अपना जो कर्तव्य है सदाचार, सत्यश्रद्धा, आत्मपरिचय, आत्मामें मग्न होनेकी धुन, इन सब बातोंमें दृढ़ रहें, दुनिया कुछ कहे कहने दो, ये कहने वाले लोग भी न रहेंगे और जिसको कहा जा रहा वह भी न रहेगा। मैं तो एक सबसे निराला ज्ञानज्योतिर्मय तत्त्व हूं। उसकी सम्हाल करें।

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वयं धर्म न कर धर्मोपदेशप्रचारमें ही लगनेमें अप्रभावनाका रूप—निज ज्ञान-ज्योतिर्मयकी संभाल भी कितनी सरल है, बस ऐसा अपने आपको अनुभव करना कि मैं यह ज्ञानमात्र पदार्थ हूं, यह ही अपने आपकी संभाल है। लोग धर्मात्मा बनते हैं, क्या करते कि इनको उपदेश दें, इनको सिखायें, इनको मार्गमें लगायें, इनको प्रेरणा दें, बस दूसरोंको धर्ममें लगावें, धर्मकी प्रेरणा दें, इस बातको समझते हैं कि हम धर्मात्मा हैं। अरे इस तरह धर्मात्मापन नहीं होता। स्वयं धर्ममें आवें, स्वयं आचारमें आयें, स्वयं अपने आपकी सत्य श्रद्धा करें तो धर्मात्मा बनेंगे और यदि ऐसा ही करते रहे तो मानो जैसे १०० आदमी हैं और सभीके सभी धर्मके लिए बड़ी कमर कसे हैं और ऐसा प्रचार करते हैं कि जिससे खूब प्रभावना हो। तो बताओ उनमें से एक भी धर्मात्मा है क्या ? नहीं है, क्योंकि स्वयंके कल्याणकी कोई भावना नहीं है और उन १०० में से अगर एक दो पुरुष भी ऐसा करें कि स्वयंकी श्रद्धा, स्वयंका ज्ञान और स्वयंका दर्शन, स्वयंमें तृप्त होना, यह सब अपने प्रयोगमें करें तो जिसने किया वह तो हो गया धर्मात्मा और फिर उसके पास जो सत्संगमें रहेगा उस पर सत्य छाप पड़ेगी। कोई यह सोचे कि अजी धर्म तो हमारे त्यागी जी करते ही हैं। अगर हम लोग न चलें उस आचार विचारपर तो इस धर्मकी क्या हानि होती ? ये तो संभाले हुए हैं। ऐसा ही अगर सब लोग सोच लें तो फिर उत्थानका मार्ग कहाँ रहेगा ?

एक राजाके मंत्रियोंने उसकी प्रजाकी बड़ी प्रशंसा की। राजाने जब प्रजाकी प्रशंसा सुनी तो राजा पूछने लगा कि क्या हमारी प्रजाके सभी लोग ईमानदार हैं या कोई ईमानदारी से रहित भी है ? तो एक वृद्ध मंत्री बोला—महाराज आपकी प्रजाके सभी लोग ईमानदार हैं और सभी ईमानदारीसे रहित भी हैं।...कैसे ?...अच्छा महाराज आपको दिखा देंगे। मंत्रीने अपने राज्यमें यह घोषणा करा दी कि राजाको आज बहुत अधिक दूधकी जरूरत है, कई टन दूध चाहिए इसलिए एक हौज राजदरबारके आगे बनाया गया है। सब लोग रात्रि को ११ बजेसे लेकर दो बजे तक अपने अपने घरसे १-१ सेर दूध लेकर हौजमें डाल जायें। अब सभी लोगोंने अपने-अपने घरमें ऐसा सोच लिया कि सभी लोग तो दूध ले ही जायेंगे, एक हम दूध न ले गए, पानी ही डाल आये तो क्या फर्क पड़ेगा ? किसीको पता ही न पड़ेगा। यह बात सभीने सोच ली। जब रात्रिको सभी लोग अपने-अपने घरसे एक एक सेर पानी ले गए तो सारा हौज पानीसे भर गया। सवेरा होनेपर जब देखा गया तो सारा हौज पानीसे भरा हुआ था, उसमें दूधका नाम न था। वहाँ राजाने समझ लिया कि वास्तवमें हमारा मंत्री ठीक ही कहता था कि राज्यके सभी लोग ईमानदार भी हैं और ईमानदारीसे रहित भी। तो धर्मकी जिम्मेदारी खुदपर भी समझनी चाहिए। ऐसा न सोचना चाहिए कि करने वाले तो और लोग हैं, यदि हमने न किया तो इसमें क्या फर्क पड़ता है ? यदि ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाद किया जायगा तो जैन नाम धराकर समझ लो कि हम जैन धर्मकी अप्रभावना कर रहे हैं।

यथाशक्ति संयमरूप प्रवर्तनसे कल्याणलाभ करनेका संदेश—भैया ! यह तो बड़ा सुयोग है कि हमें जैन वातावरण मिला, जैन नाम पाया। अगर जैन नाम धराया है तो उसका पालन करो अब। देखो ये छोटी छोटी बातें भी आचार-विचारको नहीं निभा पाते जैसे कि रात्रिभोजनका त्याग। यह कोई कठिन बात नहीं है, मगर देखिये एक इस नियमको भी नहीं निभा पाते। कैसी एक निशाचरी (राक्षसी) वृत्ति है ? उसमें आसक्तिका बड़ा भारी दोष है। कामकाजके ठिकाने न रहनेका दोष, धर्म पालन न कर सकनेका दोष, स्वास्थ्यके लिए दोष। सभी वैद्य बतलाते हैं कि खाना खानेके बाद कमसे कम दो-तीन घंटे बाद सोवो। जब तक कोई काम करो, श्रम करो। खाना खाकर कोई तुरन्त सो जाय तो वह स्वास्थ्यके लिए भी नुक्सानदायक है। फिर रात्रिमें अनेक प्रकारके जीव जन्तु उड़ते रहते हैं।

सुना है कि किसी बरातमें रातको खाना बन रहा था, उसमें कोई छिपकली गिरकर पक गई। उस भोजनके करनेसे अनेक लोग मर गए। तो रात्रि-भोजन करनेसे सब हानि ही हानि है। ऐसे छोटे-छोटे नियमोंसे भी अगर डरें तो ठीक है, आज जैसा चाहे कर लें, पर कुछ ही समय बाद जब यहांसे मरण करके दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय आदिककी खोटी गतियों में जन्म ले लेंगे तो फिर क्या हाल होगा ? क्या आप लोगोंको वह दशा मंजूर है ? आज तो यहाँ आराममें जरा भी दखल आये तो वह बात मंजूर नहीं होती, पर उन कीट पतिंगा वगैराकी खोटी पर्यायोंमें पहुंच गए तो फिर क्या हाल होगा ? इससे कुछ तो सोचना चाहिए। बहुतसे लोग तो कह देते हैं कि भाई क्या करें सरकारी नौकरी है, रातको खाना पड़ता है तो उनका यह कहना बेकार है। अरे एक बार तो घरसे खाकर ही काम करने जाते। वैसे तो स्वास्थ्यके लिए एक बार ही भोजन कर लेना पर्याप्त है, पर यदि दुबारा भोजन करना ही है तो अपने साथ टिपेनबाक्स वगैरहमें कुछ खानेके ले लिए गए और दिनमें ही खा लिया। वहाँ यह कहना ठीक नहीं कि रातको खाये बिना नहीं चलता। तो भाई अपनी सामर्थ्य न छुपाकर यथाशक्ति संयम करो, प्रभुभक्ति करो, आत्मज्ञान करो, तत्त्वज्ञान बनाओ, जिससे आत्माकी सुध रहे। यही एक उपाय है कि हमें फिर इन एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदिक की खोटी योनियोंमें जन्म मरण न करना पड़ेगा।

संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥

पञ्चेन्द्रियोंमें मूलभेद—इसका अर्थ है कि जो मनसहित जीव हैं वे संज्ञी जीव कहलाते हैं। संसारमें कितने जीव हैं ? अनन्तानन्त जीव हैं। जिनमेंसे अनंत मोक्ष चले गए, फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी कितने हैं ? अनन्तानन्त । अनंत काल तक और भी मोक्ष जायेंगे फिर भी कितने बचेंगे ? अनन्तानंत । जैसे गणित अनन्तमें से अनन्त निकले तो कितना बचेगा ? अनंत । जैसे किसी घंटेमें से कितने ही शब्द निकलें, फिर भी कितने शब्द और निकल सकेंगे ? जैसे आकाश प्रदेशपर चलते चले जावो तो आखिर बहुत दूर चले जानेपर भी, मानो अनन्त योजन जानेपर भी आकाश कितना और बचेगा ? अनन्त । अनन्तका अर्थ ही यह है कि जिसका कभी अंत न हो । लोग संख्यावोंका ज्यादा परिचय होनेके कारण ऐसी आशंका कर लेते हैं कि आखिर संसारसे जीव मुक्त होते हैं तो कभी संसार खाली हो जायगा तो यह शंका यों व्यर्थ है कि पहला तो प्रमाण आजकी स्थितिमें है । अबसे पहिले कितना काल व्यतीत हो गया ? अनन्त-काल । क्या कभी ऐसा भी दिन था कि जिस दिनसे काल (समय) का प्रारम्भ हुआ हो ? ऐसा कोई समय न था । अनन्तकाल गुजर गया । अनन्तकालसे मोक्ष जा रहे हैं, अनन्त मोक्ष गए, फिर भी संसार वैसाका वैसा ही दिख रहा ।

तो इस संसारमें हम आप जीवोंने अनन्तकाल एकेन्द्रिय आदिक पर्यायोंमें व्यतीत किया । एकेन्द्रियसे दोइन्द्रिय होना कठिन है, क्योंकि दोइन्द्रियमें कुछ आत्मविकास है ना ? कोई खास विकास नहीं, पर कुछ विकास हुआ तो सही । उससे तीनइन्द्रिय जीव होना कठिन है, फिर उससे चारइन्द्रिय जीव होना कठिन है, फिर उससे पञ्चेन्द्रिय जीव बनना बहुत कठिन है और फिर उनमें भी संज्ञी जीव बनना बहुत कठिन । देखिये आत्मोद्धारका प्रारम्भ अगर हो सकता है तो मन वाले भवसे ही हो सकता है, क्योंकि मनका अर्थ है—जो हितकी बात प्राप्त कराने और अहितका परिहार करानेमें समर्थ हो । तो पञ्चेन्द्रिय जीव तक वर्णन आया था, फिर एक यह शंका हुई कि पञ्चेन्द्रियमें भी कोई एक तरहके पञ्चेन्द्रिय होते या कई तरहके ? तो पहला भेद यह बताया कि कोई जीव संज्ञी होते हैं कोई असंज्ञी । पञ्चेन्द्रिय में असंज्ञी जीव बहुत कम मिलेंगे । जैसे पानीमें रहने वाले साँप, ऐसे कोई बिरले ही जीव हैं जो पञ्चेन्द्रिय होकर भी असंज्ञी होते हैं । अधिकतर पञ्चेन्द्रिय जीव संज्ञी हुआ करते हैं ।

समनस्क शब्दका प्रकाश—यह मोक्षशास्त्र ग्रन्थ है । देखो आचार्य संतोंने कैसे-कैसे विद्वत्तापूर्ण सूत्रोंकी, गाथाओंकी रचना की, जिन्होंने बड़ा तपश्चरण करके, बड़ा आत्मानुभव करके जीवोंके उपकारके लिए शास्त्ररचना की । हमें बड़ी भक्तिसे बहुत अनुरागसे उनको पढ़ना चाहिए और उनके कला कौशलको समझना चाहिए । यह सूत्र यों कहा गया है—संज्ञिनः समनस्काः॥

देखो कोई लोग यह शंका कर सकते हैं कि संज्ञिनः का वही अर्थ होता है जो समनस्काः का है याने विशेष मन वाले हैं, फिर समनस्काः अलगसे शब्द क्यों लिखा ? इतना शब्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हटा दें, 'संज्ञिनः' इतनी बात कह दें तो सूत्रमें भी लाघव हो गया और अर्थ निकल आया, लेकिन आचार्योंके शब्दोंमें बड़ा रहस्य होता है, उनमें हीनाधिकता नहीं होती। यहाँ शंकाकारने यद्यपि ऐसी बात कही कि संज्ञाका भी यही अर्थ है कि जो हितकी बात प्राप्त करा दे और अहितकी बात छुटा दे सो ही तो संज्ञा है। तो संज्ञिनः में ही वह अर्थ आ गया तो फिर समनस्काः शब्द क्यों दिया ? और संज्ञा शब्दमें 'इन्' प्रत्यय लग जानेपर संज्ञी बन जाता है। जैसे धनसे धनी। पहले संज्ञी कहा फिर समनस्काः शब्द क्यों दिया ? तो उत्तर यह है कि यदि समनस्काः शब्द न देते तो यह अर्थ कैसे निकलता कि पञ्चेन्द्रियमें कुछ संज्ञी हैं, कुछ असंज्ञी। दूसरी बात—संज्ञा शब्द एक सामान्य है। जो ज्ञान हो वह संज्ञा। संज्ञा वाले सब जीव हैं। तो यों सभी संज्ञी हो गये, फिर भेद क्या रहा ? तो यह जानना कि जो मनसहित हैं वे संज्ञी हैं, चाहे अंडेमें जीव हो चिड़िया वगैरा फिर भी वे मनसहित हैं, चाहे गर्भमें जीव हो, कोई चल-फिर नहीं सकता, फिर भी मनसहित है। जो हिताहितका विवेक करा दे वह मन है, मनसहित पर्याय पाना एक बहुत दुर्लभ वस्तु है।

स्वरसता और नीरसता—देखो चित्त जब एक अपने आपके वास्तविक आत्मत्वकी ओर दें तो ये बाहरी बातें सब नीरस लगने लगती हैं। क्या करना इस संगका ? क्या करना इस समागमका, क्या पूरा पड़ेगा इस ठाट-बाटसे ? और यह समझें कि यह तो मेरे लिए कलंक है। यह कोई रमनेके लिए नहीं है। इस शरीरको देखकर खुश होना यह कर्तव्य नहीं है, यह तो कलंक है। अगर यह शरीर न लगा होता और केवल मैं ही मैं होता एक ज्ञानपुञ्ज ज्योतिर्मय एक आत्मतत्त्व वह ही मात्र होता तो वह तो अनुपम अनन्त आनन्दमय, अनन्त ज्ञानमय और सर्वसंकटोंसे अतीत कृतकृत्य होता। उसे करनेको फिर क्या पड़ा ? इस जीवको एक दुःख यह ही लगा है कि यह सोचता है कि मेरे करनेको यह काम पड़ा है। वह अपने स्वरूपसे चिग गया। आत्मा तो अमूर्त ज्ञानमात्र है। यह तो हर स्थितिमें ज्ञानका ही काम कर पाता है। यह दूसरे पदार्थका काम नहीं करता।

देखो जगतमें जितने पदार्थ हैं वे अब तक हैं, उनमें गड़बड़ी क्यों नहीं हुई, क्यों मिटे नहीं, कोई कम क्यों नहीं हो गया ? कारण यह है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, कोई किसी का कर्ता नहीं, नाश करने वाला नहीं। सर्व पदार्थ अपने ही सत्त्वसे अपने आपमें रहते हैं, उत्पाद व्यय करते रहते हैं, एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें कोई परिणमन नहीं पहुंचता, इस कारण पदार्थ सब ज्योंके त्यों बने हुए हैं और सदा रहेंगे। तो वस्तुस्वरूप ही यह बतला रहा है कि परमें मुझे कुछ नहीं मिल सकता। देखिये– सत्यतापर आना पड़ेगा तब शान्ति मिलने का समय होगा। परपदार्थसे मुझे कुछ नहीं मिल सकता, यह बात ध्रुव सत्य है, परपदार्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अचेतन हैं और चेतन हैं, मैं भी चेतन हूं, पर मेरे सिवाय और जितने जीव हैं वे चेतन हैं किन्तु पर हैं। वे मेरे स्वरूपसे न्यारे हैं, तभी तो किसी चेतनसे मेरेको क्या मिलेगा ? न अन्य अचेतनसे मेरेको कुछ मिलेगा, क्योंकि वस्तुका स्वरूप ही है ऐसा कि परसे किसीको कुछ नहीं मिलता।

अकर्तृत्वश्रद्धानामृतपातसे संसार रोगका विलय—समस्त परकी अत्यन्त भिन्नता जानकर परसे कर्तृत्वबुद्धिका त्याग कर दें और अपने कषायानुकूल अगर कोई काम नहीं बनता तो उसमें रूसो नहीं, झल्लावो नहीं। वह स्वरूप ही ऐसा है कि दूसरा कोई मेरा कुछ नहीं कर सकता, मैं भी दूसरेका कुछ नहीं कर सकता। जगतमें जो यह बात देखी जा रही है कि राजाने किसीको जेलमें, बन्द कर दिया, किसीको फांसी दे दी, किसीको कुछ कर दी तो वहाँ भी राजाने किसीको कुछ नहीं किया। राजाका जो आत्मा है, उसने अपने आपमें विकल्प किया और उस विकल्पके अनुसार मन, वचन, कायकी चेष्टा की। चेष्टा भी नहीं की। वह भी चेष्टा मन, वचन, कायके परिणमनसे हुई। पर विकल्प उस अनुकूल बना। यहाँ तक उसका काम था, इसके बाद दूसरेका पुण्य पाप और उस परिणतिमें दूसरा निमित्त बनता है। एक दूसरेका कुछ नहीं करता। एक ऐसी कथा है कि एक बार एक धुनिया (रुई धुनने वाला) कहीं बाहर विदेशसे अपने देश वापिस लौट रहा था। समुद्री जहाजसे आना था। तो रास्तेमें जिस जहाजसे वह आ रहा था उसमें क्या देखा कि हजारों मन रुई लदी हुई थी। आदमी तो कोई दो चार ही थे। तो उतनी अधिक रुईको देखकर उसका मन दंग हो गया, सोचा ओह ! यह सब रुई हमें धुननी पड़ेगी। उसे इसका इतना गम हुआ कि उसके सिर दर्द होने लगा, धीरे-धीरे बुखार भी चढ़ आया। बीमार हो गया। बड़ी मुश्किलमें वह अपने घर पहुंचा। वहाँ उसकी इस बीमारीको दूर करनेके लिए बहुतसे डाक्टर वैद्य हकीम आये पर कोई उसे ठीक न कर सका। एक बार कोई बड़ा चतुर पुरुष आया। उसने कहा कि इसका इलाज क्या मैं कर सकता हूं ?····हाँ हाँ महाराज कर दीजिए इलाज, आपकी बहुत बड़ी कृपा होगी।····अच्छा तुम सभी लोग यहाँसे बाहर चले जावो, इस कमरेमें सिर्फ हम रहेंगे और यह रोगी। सब लोग कमरेसे बाहर हो गए। वहाँ वह चतुर पुरुष पूछता है कहो भाई तुम कैसे बीमार हुए ? कहीं बाहर गये थे या घरमें ही थे ? वह बीमार पुरुष बोला—भैया ! मैं घरमें बीमार नहीं हुआ, मैं तो विदेशसे आ रहा था, सो रास्तेमें बीमार हुआ। किस चीजसे आ रहे थे ? समुद्री जहाजसे। उस जहाजमें कितने लोग बैठे थे ? अरे आदमी तो उसमें दो तीन ही थे, पर उसमें हजारों लाखों टन रुई लदी हुई थी। उस बीमार पुरुषकी ऐसी गम भरी आवाज सुनकर वह चतुर पुरुष सब बात समझ गया कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वास्तवमें इसकी बीमारीका कारण क्या है ? सो वह चतुर पुरुष बोला—अरे तुम उस जहाजसे आये। वह तो अगले बन्दरगाहपर पहुंचते ही आग लग जानेसे जलकर राख हो गया। न जहाज बचा, न रुई और न कोई मनुष्य। लो वह बीमार पुरुष चंगा हो गया। तो उसके चित्तमें जो यह बात समा गई थी कि मुझे इतनी रुई धुननेका काम करना पड़ेगा, उससे उसके चित्तकी बीमारी बन गयी थी, पर जब उसके जल जानेकी बात सुनी तो उसके चित्तमें यह बात समा गई कि अरे मुझे करनेको अब वह काम नहीं रहा, लो ठीक हो गया। तो यही अन्तर ज्ञानी और अज्ञानी जनोंमें है। अज्ञानी तो सोचता है कि मुझे अभी यह काम करनेको पड़ा है, अभी यह। सो यह सोच सोचकर दुःखी रहा करता है और ज्ञानी पुरुष सोचता है कि मैं यहाँ कुछ नहीं करता। बाहरमें मेरे करनेको कुछ पड़ा ही नहीं, इसलिए उसे कहीं दुःख नहीं। वह पुरुष जानता है कि सबका भाग्य सबके साथ है, मैं किसीका कुछ नहीं करता, मेरे करनेको यहाँ कुछ पड़ा हीं नहीं, इस कारण ज्ञानी पुरुष धीर वीर और संतुष्ट रहता है और अज्ञानी पुरुषको यह सब विवेक न होनेसे वह परका कर्ता बनता है। मैं अमुकको यों करता हूं, अभी मुझे यह करने को पड़ा है, आदिक बातोंसे वह सदा दुःखी रहा करता है। तो ज्ञानी और अज्ञानीमें यह अन्तर है। देखो ऐसा ज्ञानी बननेमें यह मन काम करता है। यह मन हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करानेमें समर्थ है। तो ऐसा मन वाला भव मिलना बहुत कठिन बात है।

इन्द्रिय अनिन्द्रियको विषयोंसे हटाकर शीघ्र ज्ञानस्वरूपमें प्रवेश पानेके उद्यममें विवेक—आज हम आपको जो यह श्रेष्ठ मन मिला है तो यह समझकर स्वच्छन्द न हो जावो कि यह तो मिलना ही था। जो मन चाहे वैसा कर डालनेके लिए कमर न कसे रहो। देखो इस मनको संयमसे नियंत्रित कर दो। मनका नियंत्रण होनेपर कुछ ज्ञान पर्याय बनायें, कुछ ध्यान बनायें तो इस मनकी चंचलता खतम हो जायगी। अरे पर्याय एक समयमें एक होती है। आत्माका स्वरूप देखो आत्मामें परिणमन एक समयमें एक होगा। अभी इच्छापरिणमन था, अब ज्ञानपरिणमन आया। इच्छापरिणमन बिल्कुल न रहा और ज्ञानपरिणमनमें ज्ञानानुभव करके अलौकिक आनन्द लूटा, और उसका जो प्रसाद मिलता है उस प्रसादके बल से ऐसे आवरणका क्षय हो जाता कि आगे आवरण पैदा न हो, ऐसी स्थिति बन जाती है। हम आपको सदा पापोंसे, पातकोंसे, विकारोंसे दूर होनेका यत्न करना चाहिए। जैसे कोई धनी पुरुष यह सोचता है कि मैं इतना धन कमा लूं, फिर ठीक हो जायगा, फिर मुझे कुछ न करना पड़ेगा, सुख सातासे रहेंगे, मगर जैसे ही इतना धन मिल जाता है वैसे ही आगेकी इच्छा (तृष्णा) बढ़ जाती है। देखिये मुक्ति पानेके लिए कोई यह नियम नहीं है कि धनिकों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को ही प्राप्त हो, गरीबोंको नहीं। धन वैभवका होना न होना यह तो एक बाहरी बात है। किसीके पुण्यका उदय है तो धन बहुत इकट्ठा हो गया और किसीके नहीं है पुण्यका उदय तो धन नहीं होता उसके पास। कर्तव्य तो सर्वस्थितियोंमें यही है कि हम अपने इन्द्रिय और मनको वश करें। यह बाट न हरें, प्रतीक्षा न करें कि पहले तो हम खूब मनके अनुकूल सब भोगोपभोग कर लें, बादमें फिर उनसे विरक्त हो जायेंगे, ऐसी स्वच्छन्दताका प्रवर्तन न करें। देखिये—अनादिकाल बीत गया भोग भोगते-भोगते पर अभी तक विरक्त न हुए। फिर आगे विरक्त होनेकी क्या आशा? आज इस दुर्लभ मानव-जीवनमें हम यह स्वप्न न देखें कि पहले खूब भोग भोग लें पीछे सद्बुद्धि जग जायेगी। यह बात चित्तसे निकाल दें। हम आपको जो मन मिला है यह हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करानेमें समर्थ होता है। जब चेतें तभी भला।

अपनी वेदनामें निमित्तको कर्ता माननेका अविवेक—हाँ तो ज्ञानीकी और अज्ञानीकी बात कह रहे हैं। दूसरी बात और देखिये—ज्ञान और अज्ञानका अन्तर। एक दृष्टांत द्वारा देखिये—दो जीव हैं—सिंह और कुत्ता। अच्छा बताओ—इन दोनोंमें आपके लिए अच्छा कौन है? जो आपके काम आये वही तो आपके लिए अच्छा है। इस दृष्टिसे तो आप कुत्तेको ही अच्छा कहेंगे। कुत्ता आपके घरकी बड़ी पहरेदारी करे, ईमानदारीसे काम करे और दो टुकड़ोंपर, और जो दो टुकड़े आप देंगे उन्हें वह बड़े प्रेमसे खायगा, बड़ा विनय दिखायेगा, और हर जगह आपको बल प्रदान करेगा। अगर कुत्ता आपके साथ है तो आप बहुत निर्भय रहते हैं। और सिंहको अगर देख भी लो तो न जाने क्या हालत हो जाय? तो सिंह और कुत्तेमें परोपकारी जानवर है कुत्ता, मगर किसी बड़ी सभामें यदि किसीको कह दिया जाय कि अमुक साहबका क्या कहना है, वह तो बड़े परोपकारी हैं, सबका बड़ा ध्यान रखते हैं, बड़े नम्र हैं, विनयशील हैं, वे तो कुत्तेके समान हैं, कुत्ता तो अच्छा जानवर है ना, तो हमने परोपकारी की ही तो उपमा दी, तो यह बात सुनना किसीको भी पसंद न आयगा। की तो गई प्रशंसा पर वह उसमें अपना अपमान महसूस करेगा। और यदि कहा जाय कि इन साहबका क्या कहना है? यह तो सिंहके समान हैं। तो अर्थ तो यह हुआ कि बड़े खूंख्वार हैं, दिख जाय तो देखने वालेकी दशा बिगड़ जाय, यही तो अर्थ होता है उसका, मगर उस सिंह शब्दको सुनकर वह बड़ा खुश हो जाता है। तो इन दोनोंमें फर्क क्या है? फर्क एक चीजका है जिससे हर बातमें कुत्ता बड़ा होनेपर भी कुत्तेकी उपमा किसीको नहीं सुहाती और सिंहमें एक गुण ऐसा है कि जिस गुणके कारण उसकी उपमा सुहा जाती है। क्या है वह गुण सिंहमें? तो वह गुण यह है कि कुत्तेको अगर कोई लाठी मारे तो कुत्ता किसे चबायेगा? लाठीको। वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मारने वालेपर हमला न करेगा, क्योंकि उसको यह सही ज्ञान नहीं है कि हमको मारने वाला पुरुष है, वह जानता है कि हमें लाठीने मारा, और सिंहको अगर कोई लाठी तलवार मारे तो वह लाठीपर, तलवारपर आक्रमण नहीं करता, किन्तु सीधे मारने वालेपर आक्रमण करता है। सिंहको ऐसा सही ज्ञान है कि हमको मारने वाला यह पुरुष है, लाठी नहीं। तो फर्क है इस ज्ञानका और अज्ञानका। बस यही अन्तर है ज्ञानीमें और अज्ञानीमें। ज्ञानी जीवको सही ज्ञान है कि मेरे बाधक हैं रागद्वेष मोहादिक और अज्ञानीको यह ज्ञान नहीं है कि मेरा बाधक मेरा ही विकल्प, मेरा ही अज्ञान, मेरे ही रागद्वेषादिक भाव हैं। अज्ञानी जीव इन बाह्य वस्तुओंको बाधक मानता है। इसने ऐसा किया, इसलिए मेरा काम खराब हो गया, इसने यह बाधा डाली, इसलिए मेरा काम बिगड़ गया। अज्ञानी जीवको न तो अपने अज्ञानका पता है, न अपने बाधकका। तो अज्ञान ही अज्ञान जहाँ बसा है वही तो संसार है।

अज्ञान अंधेरीकी विडम्बना—जहाँ अज्ञान ही अज्ञान बसा उस संसारकी क्या हालत होती? जैसे कहते हैं कि 'अंधेरनगरी बेबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खा जा।' इस कहावतका कथानक इस प्रकार है कि एक बार कोई गुरु और चेला घूमते-घूमते किसी नगरी में पहुंचे। वहाँ वे ठहर गए। वह थी अंधेरनगरी। वहाँ गुरुने शिष्यसे कहा—जावो बेटा बाजारसे आटा, दाल, चावल, नमक, साग-सब्जी वगैरा भोजन सामग्री ले आवो। पहुंचा वह बाजार तो क्या देखा कि वहाँ हर चीज टका सेर बिक रही थी। जब वह मिठाइयोंकी दूकानपर पहुंचा तो वे भी टका सेर थीं। वह शिष्य सोचने लगा कि जब टका सेर सभी चीजें मिलती हैं तो फिर भोजन बनानेका भी क्यों कष्ट करें? टका सेर रसगुल्ले, पेड़े बरफी आदि मिठाइयां ही क्यों न लेकर खा लिया करें? सो वह शिष्य एक टके में सेर भर मिठाई खरीद लाया, गुरु शिष्य दोनोंने खूब खाया। शिष्यने गुरुजीसे बताया कि महाराज यहाँ तो सभी चीजें टका सेर बिकती हैं, यह तो बड़ी अच्छी नगरी मालूम होती है। आपसे प्रार्थना है कि कुछ दिन यहाँ ठहर जाइये। तो गुरु बोला—बेटा यह अंधेरनगरी है, यहाँ ठहरना योग्य नहीं। जब शिष्यने बड़ा आग्रह किया तो गुरुको उस नगरीमें ठहरना पड़ा। वहाँ वह शिष्य टके सेर मिठाइयाँ खूब खा-खाकर बड़ा हृष्ट पुष्ट हो गया। कुछ ही दिनों बाद वहाँ एक घटना घटी, क्या कि कोई बाबूजी किसी सड़कसे जा रहे थे। रास्तेमें देखा कि एक मकानका एक ईंटा भींतसे खिसक गया था, बाबू जी ने सोचा कि इस मकान मालिककी यह गल्ती है जो भींतमें से ईंटा खिसक गया है। इसने ऐसी कच्ची भींत क्यों बनवायी? मैं इधर से जा रहा था, कदाचित् यह ईंटा गिर जाता और मेरा सिर फट जाता तो क्या होता? यह सोचकर बाबू जी ने उस मकान मालिकके नाम रिपोर्ट राजाके पास भेज दी। राजाने पेशी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पड़ने पर सभीको बुलवाया। राजाने उस मकान मालिकसे कहा—अबे तूने ऐसी कच्ची भींत क्यों चिनवायी जिसमेंसे ईंटा खिसक गया ? कदाचित् वह ईंटा बाबूजी के सिरपर गिर जाता तब तो बाबू जी का सिर फट जाता। तुझे सजा दी जायगी। वह मकान मालिक घबड़ाया और बोला–महाराज इसमें मेरा क्या कसूर ? मैंने तो पूरा पेमेण्ट किया था, इस मकान के बनवानेमें गल्ती तो उस कारीगरकी है जिसने गलत भींतकी चिनाई की। ठीक है। कारीगर बुलाया गया। राजा बोला—अबे कारीगर तूने ऐसी भींत क्यों चिना जिसमें से ईंटा खिसका, बोल, तुझे सजा दी जायगी। कारीगर बोला—महाराज आप इसे अच्छी तरहसे नाप तोलकर देख लें, चिनाई करनेमें मेरा कोई कसूर नहीं। कसूर है उस गारा बनाने वाले मजदूरका जिसने गारेमें पानी ज्यादा डाल दिया और गारा गीला हो गया, जिससे भींतमें से ईंटा खिसका। ठीक है। गारा बनाने वाला बुलाया गया। राजा बोले—अबे तू ने इतना पतला गारा क्यों बनाया जिससे भींतमें से ईंट खिसकी ? तो वह गारा वाला बोला—महाराज इसमें मेरा क्या दोष ? दोष तो है मसक बनाने वालेका। उसने मसक बड़ी बना दी, पानी उसमें ज्यादा भर गया, जिससे गारा गीला हुआ। ठीक है। मसक बनाने वाला बुलाया गया। राजा बोला—अबे तूने इतनी बड़ी मसक क्यों बना दी जिससे पानी ज्यादा भर गया, गारा गीला हो गया और बाबूजी का सिर फटने तककी नौबत आयी ? तो वह मसक बनाने वाला बोला—महाराज इसमें मेरा क्या दोष ? दोष है बड़ा जानवर बेचने वालेका। उसने बड़ा जानवर बेचा, उसके मरनेपर बड़ी मसक बनी। उसमें मेरा क्या दोष ? अब बड़ा जानवर बेचने वाला बुलाया गया तो उसके पास कोई उत्तर नहीं था। राजाको उसपर क्रोध आया और बोला—बस अपराधी तू है, तुझे फाँसी दी जायगी। जल्लादोंको राजाने आदेश दिया कि इस बड़ा जानवर बेचने वाले किसानको फाँसीके तख्तपर चढ़ाकर फाँसी दे दो। जब जल्लाद लोगोंने उसे फाँसीके तख्तपर चढ़ाया, फाँसीका फंदा उसके गलेमें डाला तो उसका गला इतना दुबला-पतला था कि फाँसीका फंदा ठीक-ठीक बैठे ही नहीं। तो जल्लाद लोग बोले—महाराज, इसका गला तो इतना दुबला पतला है कि फाँसीके फन्देमें ही नहीं आता और फाँसी देनेका मुहूर्त निकला जा रहा है। तो राजा बोला—अबे तो किसी मोटे गले वालेको लाकर फाँसी दे दो। वे जल्लाद निकले मोटे गले वालेकी तलाशमें तो वही शिष्य मिला जो टके सेर रसगुल्ले खा खाकर खूब मोटा हो रहा था। शिष्य बोला—अरे क्या कर रहे ? तो जल्लाद बोले—चुप रहो। हम तुम्हें राजाके आदेशानुसार पकड़कर फाँसी देनेके लिए ले जायेंगे। वह शिष्य घबड़ाया और गुरुजी से बोला—गुरु जी बचाओ। तो गुरुजी ने कहा—देखो बेटा, हम कहते थे कि यह अंधेरनगरी है, यहाँ ठहरना योग्य नहीं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर तुम नहीं माने। खैर गुरुने सब बात समझा दी। जब शिष्य फाँसीके तख्तपर चढ़ने लगा तो नीचेसे गुरु बोला—ऐ शिष्य तुम नीचे उतरो, फाँसीके तख्तपर हम चढ़ेंगे। यही बात शिष्य कहे। दोनोंको झगड़ते देखकर राजा बोला— तुम लोग फाँसी लेनेके लिए क्यों झगड़ते ? तो गुरु बोला— तुम चुप रहो राजन्! इस समय इतना शुभ मुहूर्त है कि फाँसीके तख्तपर चढ़ कर जो फाँसी लेगा वह सीधे बैकुण्ठ जायगा। तो राजा बोला—अच्छा तुम दोनों न झगड़ो इस फाँसीके तख्तपर चढ़कर हमें ही फाँसी ले लेने दो। तो देखिये यह संसार ऐसी ही तो अंधेरनगरी है ? यहाँ कोई सोचे कि हम पहले तो खूब भोग भोग लें, पीछे विरक्त होकर आत्मकल्याण कर लेंगे, सो बात ठीक नहीं।

अहितके कार्यसे शीघ्र हटनेमें समनस्कताका सदुपयोग—भैया! इन भोगोंमें रहते हुए तो अनन्त काल बीत गया, पर इनसे विरक्त कहाँ हो सके ? यह आत्मज्ञान ही हम आपके कष्टोंको मेट सकेगा। इस जीवनमें अधिकाधिक समय अपना आत्मचिन्तनमें, तत्त्वज्ञानके अर्जन में बितायें, अपने विचार विशुद्ध रखें, सत्संगमें विशेष रहें, इसीके फलसे भव-भवके कर्म कटेंगे। कर्मोंकी निर्जरा हो, अपनेको मुक्ति नजर आये तो यह कहलाता है मनका काम। सूत्र क्या बताया गया है ? संगिनः समनस्काः। संज्ञी जीव मनसहित होते हैं। तो संज्ञीका अर्थ क्या ? जो मन सहित हो सो संज्ञी। यहाँ एक शंका और बनती है। संज्ञा मायने हैं आहार, भय, मैथुन, परिग्रहकी इच्छा, संस्कार, ये संज्ञायें जिनमें हैं उन्हें संज्ञी कहते हैं। यह अर्थ लगाओ। उत्तर यह है कि ऐसा अर्थ लगानेसे यह आपत्ति है कि संज्ञा वाले तो ये संसारके सभी जीव हैं प्रायः फिर संज्ञी असंज्ञीमें भेद क्या रहा ? सब संज्ञी हो गए। यह अर्थ लगेगा। और फिर दूसरी बात—जब मनसहितको संज्ञी कहते हैं तो मनसहित जीव हौवा हो तब भी संज्ञी है। अंडेमें हो तब भी संज्ञी हैं और इस जीवका फिर जागृत-अवस्थामें एक विकास होता है। इस मनके द्वारा हम हितकी बात खोजें और अहितकी बात दूर करें, अहितके काममें यह श्रद्धा न बनायें कि यह अहितका काम तो अभी कर लें, पीछे निपट लेंगे। अरे श्रद्धा प्रति समय अहितसे दूर होनेकी रखें और कर्मका वेग है, अहितमें लगना पड़े तो बड़े खेदके साथ उसमें गुजरियेगा तो एक अपनेको हितका मार्ग मिलेगा। ऐसा हितकी प्राप्ति करानेमें समर्थ मन है और मन जिनके होता उन्हें संज्ञी कहते हैं। जीवके दो भेद किए थे—संसारी और मुक्त। संसारीके ५ भेद किए एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदिक। उनमेंसे एकेन्द्रियसे लेकर चार-इन्द्रिय तकके सभी प्राणी असंज्ञी हैं। पञ्चेन्द्रिय जीव ही संज्ञी हो पाते हैं। यह बताना इस सूत्रका प्रयोजन है।

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूर्व शरीर छोड़नेके बाद नवीन शरीर धारण करनेके लिये होने वाली गतिमें कारण—चर्चा चल रही है संसारी जीवोंकी। उपयोग लक्षण वाला यह जीव संसारमें घूम रहा है और संसारमें इसकी क्या-क्या परिस्थितियाँ हो रही हैं, इन सबका वर्णन आया। तो संसारी जीवोंके भेद बताते-बताते अब तक यह बता चुके कि संसारी जीव ५ प्रकारके हैं—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। और पञ्चेन्द्रियमें दो प्रकार हैं—संज्ञी और असंज्ञी। यहाँ तक जो वर्णन हुआ वह सब उपयोगसे सम्बंधित रहा, इन्द्रिय का भी वर्णन हुआ तो केवल द्रव्येन्द्रियको इन्द्रिय नहीं कहा, किन्तु द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय दोनों प्रकारकी इन्द्रियाँ जिनके हैं उनका वर्णन रहा। तो उपयोग सम्बंधित सब वर्णन था। अब एकाएक मनमें यह जिज्ञासा हुई कि यह जीव एक भवको छोड़ता है और दूसरे भवमें जाता है, तो नये शरीरके प्रति जिसका जाना है और पहला शरीर उसका छूट गया और शरीर छूट गया तो इन्द्रियाँ भी छूट गईं और मन भी छूट गया। द्रव्येन्द्रियाँ न रहीं और द्रव्य मन भी न रहा तो यह जीव फिर जाता किस तरह है? उसका समाधान इस सूत्रमें किया गया है। यहाँ तो जितनी क्रिया करता है यह जीव, जीव—क्या करता है, निमित्त-नैमित्तिक योगमें जो निरखा जाता है उसे ही कह लीजिए इस समय, चलता है, खाता है, दौड़ता है, शरीरकी चेष्टायें करता है, वचन बोलता है तो ये सारी क्रियायें यह शरीर है, इसलिए हो रही हैं। तो शरीर तो यह छूट गया तो कौनसा बल है ऐसा कि जिस बलपर यह जीव नये शरीरके स्थान तक चला जाता है? उसका उत्तर दिया गया है कि विग्रहगति में जीवके कार्माणकाययोग होता है। यह शरीर न रहा, अगला शरीर मिलेगा, दोनों शरीरों से यह इस समय अलग है, लेकिन इसके साथ सूक्ष्म शरीर लगा हुआ है। तैजस और कार्माण शरीर जो अनादिकालसे जीवके साथ चले आ रहे हैं, परम्परया उनमेंसे कार्माणकायका योग होता है याने कार्माणशरीरके परिस्पंदका निमित्त पाकर इस जीवके प्रदेशोंकी क्रियारूपसे परिस्पंद चलता है और यह दूसरे भवके स्थानपर पहुंच जाता है।

विग्रहगतिमें हेतुरूप कार्माणकाययोगका संक्षिप्त परिचय—अब जरा उस कर्मका स्वरूप समझिये क्या है जिसके कि ऐसा योग चलता है। कर्म एक जगतमें भरे हुए सूक्ष्म कार्माण जातिके परमाणु पुञ्ज हैं, वे जीवके साथ विस्रसोपचयके रूपमें भी लगे हुए हैं, याने जो कर्म तो नहीं बने, मगर कर्म बननेकी जातिमें हैं वे, ऐसे परमाणु पुञ्ज इस जीवके साथ स्वभावसे लगे हुए हैं। जब जीव मोह रागद्वेषरूप परिणमन करता है तो वे कार्माणवर्गणा स्वयं कर्मरूपसे परिणत हो जाती हैं। द्रव्य अलग-अलग हैं, जीवने कर्मका परिणमन नहीं किया, कर्मने जीवका परिणमन नहीं किया। कर रहे सब अपना ही परिणमन, मगर जो विषम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणमन हो रहा वह औपाधिक है, नैमित्तिक है। किसी निमित्त सन्निधानमें हो रहा है। कहीं ऐसा नहीं है कि जीव उपाधिनिरपेक्ष होकर याने उपाधिरहित होकर स्वयं ही अपने स्वभावसे विभावरूप परिणम जाता है। परिणमता है यह जीव ही अपने विभावरूप, परिणमता कर्म ही अपने विभावरूप, लेकिन विभावरूप परिणमनमें किसी परद्रव्यका सन्निधान निमित्त होता है तो इस जीवके कषायभावोंका निमित्त पाकर जो कार्माणवर्गणामें कर्मरूपता आयी है उनका जो पुञ्ज है वह कार्माण शरीर है। इस शरीरका योग विग्रहगतिमें कारण होता है।

अविकारस्वभाव भगवान आत्मापर कर्ममायाके योगकी लीला—देखना जीवको क्या जरूरी है संसारके संकटोंसे छूटनेके लिए? स्वभावदृष्टिकी आवश्यकता है। यह जीव अपनेको स्वभाव रूपमें अनुभव करता कि मैं यह हूं। मैं एक सहज ज्ञानानन्दस्वरूप हूं ऐसा अपने आपको सहजस्वरूपमें अनुभव करें तो यह है वह औषधि कि जिसके प्रतापसे वे सारे विकार रोग, कर्मरोग समाप्त हो जाते हैं। आत्माको सहज ज्ञानानन्द स्वभावरूपमें अनुभव करना यह है वह अग्निकणिका कि जिससे कर्मईंधन सब भस्म हो जाता है। तो ऐसा यह एक सहज परमात्मतत्त्व आखिर क्यों ऐसा विकृत बन गया, क्यों यह नाना दुःखोंका पात्र बन गया? उसका कारण है कि अपने ही कषायपरिणामोंसे जो कुछ बंधन बन गया, कार्माणवर्गणायें कर्मरूप बन गईं, उनमें उस ही प्रकारका अनुभाग बन गया। उस अनुभागका जब उदय होता है, अनुभाग जब खिलता है तो उस अनुभागका फल कर्ममें ही हुआ वास्तवमें। मगर कर्म अजीव हैं, वे उसका क्या अनुभव करें? कर्मपर बीती वह सब बात।

जैसे क्रोधप्रकृतिका उदय आया तो कर्ममें उस ही क्रोधका प्रभाव पड़ा वस्तुतः, मगर ऐसे अनुभाग वाले कर्मका उदय हुआ तो निमित्तनैमित्तिक योगमें इस उपयोग लक्षण जीवपर एक अंधकार छाया, प्रतिफलन हुआ। बस जैसे दर्पणके सामने हाथ आ जाय तो दर्पणमें छाया पड़ जाती है, वह छाया किसकी? दर्पणकी। मगर वह छाया हाथका सन्निधान पाकर हुई है, हाथने नहीं किया, मगर ऐसा योग है कि हाथ सामने हो तो दर्पणमें ऐसा छायारूप परिणमन होता है। ऐसे ही कर्मका उदय जब आया इस जीवपर तो इस जीवमें उसके अनुभागकी छाया हुई। अब उस प्रतिफलनमें इस जीवने अपना उपयोग जोड़ा और उस समय यह महसूस करने लगा कि मैं तो यह हूं। उपयोगका जो विशुद्ध स्वरूप है उसका तो हो गया तिरस्कार और वहाँ आ गया क्रोधादिक बातोंका प्रतिफलन, अब यह जीव उसको अपनाने लगा और यह जीव मोही अज्ञानी बनकर संसारमें जन्म-मरण करता ही है। जब यह जीव एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरके लिए गमन करता है तो वह कार्माणशरीरका योग इस जीवको ले जाने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का निमित्त बनता है। विग्रहगतिमें कार्माणकाययोग होता है।

पूर्व शरीर छोड़कर नया शरीर ग्रहण करनेके समाचारप्रसंगोंमें अनेक लोकवादोंका समाधान—अभी आगे बताया जायगा कि यह जीव कितने समयोंमें दूसरे शरीरमें पहुंच जाता है ? इसमें बड़ा समाधान मिलेगा। लोगोंने स्वार्थवश कितनी प्रकारकी मान्यतायें गढ़ डालीं ? यह जीव मरता है तो १०-१२ दिन तक भटकता रहता है। अब चाहे ब्राह्मण जनोंको कह लो, चाहे अपनी बिरादरीके लोगोंको कह लो। अरे १२-१३ दिनमें भली प्रकारसे सबको भोजन कराओ, सबको खुश करो तो उस जीवका भटकना दूर होगा और तब वह ठीक जगह पहुंच जायगा। यों कितनी ही बातें लोगोंने गढ़ लीं। अरे वह तो अपने जन्मस्थानमें मरणके बाद ज्यादासे ज्यादा ३ समयमें पहुंच जाता है। इसी प्रकार कहाँ जाता है, कहाँ भटकता है ? तो अनेक लोग ऐसा कहने लगे हैं कि चूल्हेमें जरासी राख शामको छोड़ दिया और बड़े सवेरे उठकर देखा तो उसमें चूहा या बिल्ली वगैराके पञ्जे जैसे कुछ चिह्न तो बन ही जाते हैं। उन्हें देखकर कहते कि देखो वह तो अमुक जीव बन गया। ऐसी बहुतसी मनगढ़ंत बातें चलती हैं, पर उन सबका समाधान इस प्रसंगमें भली प्रकारसे होता है। विग्रहगतिमें जीवके कार्माण काय योग होता है। विग्रहगतिका अर्थ क्या है ? विग्रह मायने शरीर। नया शरीर पानेके लिए जो गति होती है उसका नाम है विग्रहगति। विग्रहका नाम शरीर कैसे पड़ गया ? विग्रह शब्दमें दो शब्द हैं—वि और ग्रह। वि का अर्थ है नाना प्रकारके (विविध) और ग्रह का अर्थ है ग्रहण करना। नाना प्रकारके परमाणु पुञ्जको ग्रहण करना, नाना प्रकारके जो परमाणु पिण्ड ग्रहण किया है उसका नाम विग्रह है। वह क्या है ? शरीर। उस शरीरके लिए जो गमन है उसको विग्रहगति कहते हैं। कोई शब्दशास्त्रका जाननहार यह शंका कर सकता है कि अगर इसका यह अर्थ हो कि विग्रह पानेके लिए गति तो यहाँ चतुर्थी विभक्ति लगेगी—विग्रहायगतौ, लेकिन समासमें यह ध्वनित नहीं हो रहा। उत्तर उसका यह है कि समास होनेपर भी 'विग्रहके लिए गति' ऐसा अर्थ बन जाता है। तत्पुरुष समास केवल षष्ठी विभक्तिका ही नहीं है। यह सम्प्रदान वालेका भी समास हो जाता है।

जैसे कहते हैं अश्वघास, मायने यह घोड़ेके लिए घास आयी है, तो उसे बोलते हैं अश्वघास। उसका चतुर्थीमें भी समास बनता है। अर्थ यह हुआ कि नये शरीरको ग्रहण करनेके लिए जो जीवका गमन होता है उस समय कार्माणकाययोग होता है। यहाँ एक आशंका और रखते हैं लोग कि जब कोई जीव मरा तो पहले यह जीव ऊपर जाता है, फिर जहाँ जाना हुआ उस जगह जाता है, क्योंकि यह जीवका एक स्वभाव है कि यह ऊपरको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय, किन्तु ऐसा चिन्तवन ठीक क्यों नहीं है कि जब जीवके कर्म उपाधि न रहे तब तो जीव का यह स्वभाव सही रहता है कि यह ऊपर ही जायगा, किन्तु जब तक कर्मका लेप लगा है तब तक जैसा उदय है, जैसा इसको जन्म लेना है वहांके लिए जो भी छोटा रास्ता मिलता है उस रास्तेसे चला जाता है, मगर वहाँ इतना नियंत्रण है जैसा कि अगले सूत्रमें कहा जायगा। आकाशकी श्रेणियोंके अनुसार गमन होता है याने ऊपरसे नीचे और पूरबसे पश्चिम, दक्षिणसे उत्तर अगर कोई पापी जीव नरकमें जायगा तो एकदम नीचे चला जायगा। पहले ऊपर आये फिर नीचे ऐसी वहाँ आवश्यकता नहीं है।

कर्मकी देहबीजरूपता और कर्मच्छायासे उपयोगको विविक्त कर लेनेकी मोक्षमार्गरूपता—नया विग्रह पानेके लिये जो गति है वह विग्रह गति है। विग्रह गतिके लिए जो गति होती है उसमें कार्माण काययोग होता है। ये कर्म समस्त शरीरोंको उभाड़नेके लिए समर्थ हैं। यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरको पानेके लिए बीज जैसा काम करता है। तो वह शरीर रहता ही है सूक्ष्म शरीर और उसमें भी कार्माण शरीर, उसके योगसे यह जीव अन्य भवके लिए गमन करता है। योग क्या चीज है? आत्मप्रदेशमें हलन-चलन होना सो योग है। जैसे अभी हम हाथ हिलायें तो हाथ हिलनेका निमित्त पाकर जीवके प्रदेशोंमें भी योग होता है। तो जीवके प्रदेशमें जो परिस्पंद हुआ वह योग है और वह हमारे इस शरीरके परिस्पंदका निमित्त पाकर होता है। तो ऐसे ही इस विग्रह गतिमें जीवके कार्माण शरीर है। उस कार्माण शरीर की हलन-चलनका निमित्त पाकर इस जीवमें वे क्रियायें हुई हैं, और इस तरह यह जीव पूर्वभवके धामको त्यागकर उत्तर भवके धाममें पहुंच जाता है।

देखिये शरीर क्या है? निमित्तनैमित्तिक योगका जो फल है वह संसार है और मोक्ष क्या है? निमित्तनैमित्तिक योगका रगड़ा झगड़ा मिट जानेका नाम है मोक्ष। तब वह मोक्ष मिलता कैसे है? स्वभावदृष्टि करें तो मुक्तिका मार्ग मिलेगा। स्वभावमें विकार नहीं तो निमित्तनैमित्तिक योगकी चर्चा भी नहीं। और अगर हैरान कर रही हैं ये कषायें तो वहां निमित्तनैमित्तिक योगसे शिक्षा लें कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं क्यों इसमें लगूं? यह तो कर्मविपाकका प्रतिफलन है, नैमित्तिक भाव है, औपाधिक भाव है, यह मेरा स्वरूप नहीं, ऐसा एक यथार्थ तत्त्व जानकर उन औपाधिक भावोंसे उपेक्षा कर लें। जो पुरुष अपने ज्ञानको सत्य समझता है, ज्ञानस्वरूपमें तृप्त होता है, ज्ञानस्वरूपका ही अनुभव करता है उसको अपने आप ही सहज अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

देखिये कल्याणका मार्ग जरा भी कठिन नहीं है, बल्कि रुपया पैसोंकी कमाई यह कठिन चीज है। यह क्यों कठिन है कि यह परवस्तु है, उसपर आत्माका अधिकार नहीं। पुण्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पापके योगमें स्वयमेव प्राप्त हो रहा है। उसमें आत्माका परिणाम कुछ नहीं कर पाता है और आत्मकल्याणकी बात, स्वभावदृष्टिकी बात क्यों सरल है कि स्वभावमें होना है। और मुझमें ही स्वभावकी दृष्टि करनी है। तो यह तो इतना सरल है कि जैसे कोई बिछे बिछाये पलंग पर बैठा हुआ हो और जरा भी नींद सताये तो उसे लुढ़कने और नींद लेनेमें कुछ कठिनाई नहीं होती। यह एक मोटी बात कही है दृष्टान्तमें, एक देश ही लेना, ऐसे ही जब खुदमें अपना स्वभाव है और खुद ही उस स्वभावको पसंद कर रहे हैं, और उस ही स्वभावमें रत होना चाहें तो इसमें कौनसी कठिनाई है जिससे यह कठिन काम बन सके ? कठिन क्या असम्भव है परपदार्थका काम करना और असम्भव नहीं, कठिन भी नहीं किन्तु सुगम है अपने आपके सहज परमात्मतत्त्वकी दृष्टि करना, क्योंकि वहाँ खुद है, खुदको ही करना है, खुदमें ही रमना है, ऐसा अनुभव कर नहीं पाते लोग तो उपादानकी ओरसे तो यह उत्तर है कि इसके ऐसी कमजोरी है, ऐसी योग्यता है कि जो अपने स्वरूपमें नहीं रम पाता, पर मात्र इतना ही समाधान करनेसे तो बात स्पष्ट होती नहीं। कोई कहे कि ऐसी योग्यता इसके क्यों हुई ? तो कहते कि वाह ऐसा ही स्वभाव है। तो ऐसे खोटे परिणमनका क्या जीवका स्वभाव है ? तो उत्तर देना ही पड़ेगा कि आत्मामें पूर्वबद्ध कर्मका उदय हुआ, हुआ तो वह मनुष्यमें ही और उसके अनुभागका फल पहुंचा कर्ममें ही, मगर चूंकि यह उपयोगमात्र है सो अनिवार्यरूपसे उस कर्मोदयका प्रतिफलन हो गया। अब जीवकी रक्षा कर लेनेका तो यह प्रसंग है कि इस प्रतिफलनमें यह जीव आत्मा रूपसे अनुभव नहीं करता कि मैं यह हूं। ऐसा नहीं मानता और ठीक समझता रहा कि यह तो कर्मानुभागका प्रतिफलन है, यह विकार मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो विशुद्ध सहज ज्ञानस्वरूप हूं। ऐसा निज आत्मतत्त्वका अनुभव जगे तो ये कार्माणवर्गणाके सारे प्रभाव समाप्त हो जायें।

विग्रहगतिके परिचयका एक प्रकाश—यह जीव विग्रहगतिसे जाता है तो बस इस कार्माण शरीरके योगके बलपर जाता है। क्यों ऐसी गति हुई ? तो इसका भी अर्थ विग्रह गति शब्दमें आ गया। तब यह समास आ जाता है— विग्रहेण गतिः याने जो पहले शरीरका निरोध हो गया उस शरीरमें अब नये आहारवर्गणा न आये, वे बंद हो गए तो इस जीवको यहाँसे एकदम चला जाना पड़ा। एक तो विग्रहगतिका यह अर्थ है। दूसरा यह अर्थ है कि नवीन शरीरको पानेके लिए यह जीव चला। एक समस्या प्रायः लोगोंके चित्तमें रहती ही है कि जब कोई कठिन रोग होता है तो उसमें वेदना आयी या समझ लो मरण हो गया तो उस समय हुआ क्या ? कोई लोग तो यह मानते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुका संयोग होनेसे एक उसमें चेतना आ गयी थी, और अब पृथ्वी पृथ्वीमें मिल गई, जल जलमें मिल गया,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आग आगमें मिल गई, वायु वायुमें चली गई। इसलिए जब इन पदार्थोंका वियोग हो गया तो वह चेतना न रही। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि इस देहमें जो रूह है अब वह काम नहीं कर रही, इसलिए वह देह मुर्दा हो गया। उस देहको जमीनमें गड़ा दो, जलाओ मत। गड़ा दोगे तो वह रूह हजार दस हजार वर्ष जितने वर्ष बाद नम्बर आयगा प्रभुकी कचहरी लगने तक। तो उन सब रूहोंको बुलाया जायगा और सबकी बारी-बारीसे पेशी लगेगी, वहाँ खुदा न्याय करेगा। जिसका जैसा कसूर होगा उसे वहाँ भेज दिया जायगा तो फिर शरीर मिल जायगा। तो एक शरीरके बाद दूसरा शरीर मिलनेके बीचमें कुछ हजार वर्षका अन्तर आ जाता है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं, और कुछ लोग तो सिर्फ १२ दिनका ही अन्तर बताते हैं, पर वास्तवमें होता क्या है वहाँ, वह सब बात इस प्रसंगमें आयेगी। तो एक-दो तीन समय कितना कहलाता है कि एक शरीर छोड़नेके बाद झट दूसरा शरीर मिलता है। आँखकी एक पलक गिरनेमें असंख्याते समय हो जाते हैं, उनमें एक दो या तीन समयमें ही यह जीव मरनेके बाद दूसरा शरीर धारण कर लेता है।

क्लेशमय जन्म, मरण और जीवनके परिचयसे हितमार्गका अवलोकन—उक्त चर्चाओं से अपने चित्तमें यह बात आनी चाहिए कि संसार तो जन्ममरणकी परिपाटी बनानेका नाम है। मरण हुआ, जन्म हुआ, बस पैदा होना मरना, फिर पैदा होना मरना, इसी सिलसिलेका नाम ही संसार है, और उस सिलसिलेमें कितना क्लेश होता है जीवको, उसके लिए एक दृष्टांत दिया है—गुणभद्राचार्यने आत्मानुशासनमें कहा है कि जैसे बाँसकी एक पोर जिसके ओर छोर में दोनों ओर आग लग जाय और उसके बीच पड़ा हुआ कीड़ा तड़फता है, ऐसे ही जन्म-मरण के बीच रहने वाले इस जीवकी तड़फन है। यह जिन्दगी क्या है? जिसके ओर छोरमें जन्ममरणकी आग लगी हो उसे कहते हैं जिन्दगी। जिन्दगीके शुरूमें तो जन्मकी आग है और जन्मके अन्तमें मरणकी आग है और दोनों आगोंके बीचमें यह एक जीव सुलग रहा है, तप्त हो रहा है और इस जीवनके बीचमें जितने क्षण हैं उतने क्षणोंमें कितने प्रकारके और क्लेश हैं? इस सहज परमात्मतत्त्वस्वरूप भगवान आत्माकी इस कर्मविभव होनेके कारण कैसी आदत बन गई है कि यह कष्ट सहता है और उस कष्टमें ही राजी रहता है। अगर कष्टमें दुःख में राजी न रहे तो एकदम यह साहस बनेगा कि मुझे इन दुःखोंका कोई काम नहीं करना है। दुःख क्या है? मोह। मोहके कारण दुःख होता है। मोहका परिणाम स्वयं दुःखरूप है। उस मोहमें बड़े कष्ट पाता है फिर भी यह मोहको ही अपनाता है। कुटुम्बके लोग कितना ही तकलीफके कारण बन रहे हों, लेकिन इस कुटुम्बमें रमनेमें ही खुश होते हैं, और और भी जितने संग परिग्रह हैं, इनके सम्बन्धमें सिवाय कष्टके और क्या मिलता है? लेकिन यह राजी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें ही रहता है, जैसे विष्टाका कीड़ा विष्टामें ही राजी रहता है ऐसे ही यह दुःखका कीड़ा दुःखमें ही राजी रहता है।

एक कथानक आया है कि एक बार किसी राजाने एक अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा महाराज हम मरकर क्या बनेंगे ? तो वहाँ उन मुनिराजने जवाब दिया कि आजके ७वें दिन अमुक समयपर मरकर तुम अपनी ही संडासमें विष्टाके कीड़ा बनोगे। मुनिराजकी यह बात सुनकर राजा बड़ा दुःखी हुआ। हाय मैं इतने बड़े ऐश्वर्य वाला, इतनी बड़ी प्रतिष्ठा वाला और मरकर विष्टाका कीड़ा बनूंगा, यह बात मुझे मंजूर नहीं। यह सोचकर राजाने अपने बेटेसे कहा—देखो बेटा मुनिराजने हमें बताया है कि आजके ७वें दिन तुम मरकर अपने ही संडासमें विष्टाके कीड़ा बनोगे, सो तुम ऐसा करना कि यदि ऐसा हो तो मुझे तुरन्त आकर मार डालना। मैं विष्टाका कीड़ा बनकर नहीं रहना चाहता। आखिर हुआ ऐसा ही। वह राजा ७वें दिन ठीक उसी समयपर मर गया और मरकर विष्टाका कीड़ा बना। राजपुत्र पहुंचा। उस संडासमें एक लकड़ी लेकर वहाँ वह विष्टाका कीड़ा दिखा, पर ज्यों ही लकड़ी से मारना चाहा कि वह विष्टामें अपने प्राण बचानेके लिए घुस गया। वह राजपुत्र हैरान होकर उन्हीं मुनिराजके पास गया। बोला—महाराज हमारे पिताजी ने कहा था कि आज के ७वें दिन हम मरकर विष्टाके कीड़ा बनेंगे सो वहाँ आकर हमें मार डालना, पर हम जब मारने लगे तो वह कीड़ा अपने प्राण बचानेके लिए उसी विष्टामें घुस गया। बताओ अब हम क्या करें ? तो मुनिराज बोले—बेटा तुम उसे मत मारो। इन संसारी जीवोंकी ऐसी ही प्रकृति है कि वे जिस पर्यायमें पहुंचते हैं उन्हें उसीमें जिन्दा रहना पसंद आता है। जिन दुःखोंको पाकर घबड़ाते हैं उन्हीं दुःखोंमें राजी रहते हैं। अगर दुःखोंमें राजी न रहते तो दुःखोंको दूर करनेके लिए जो उपाय बताये गए हैं उन्हें क्यों न करते ? जब इनके हाथकी बात है, इनके उपयोगकी बात है तो क्यों नहीं ये तुरन्त कल्याणमें प्रवेश करते ?

कार्माणप्रतिबंध व वस्तुस्वातंत्र्यके परिचयका प्रकाश—भाई यह कर्मयोग, यह कार्माण प्रतिबंध इस जीवपर बहुत बुरा लगा है। स्वरूपदृष्टिसे तो यह देख लो कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कोई परिणमन नहीं करता, इसमें तो रंचमात्र संदेह नहीं, मगर विषयपरिणमन जिनमें होते हैं वे परपदार्थका सन्निधान पार होते हैं। आज देखिये यहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं हो रहा इस समय तो सब जानते हैं कि चूंकि बादल छाये हुए हैं, इस कारण जमीनपर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ रहा। सो यहाँपर भी जो जमीनपर धूपका प्रकाश नहीं हो रहा तो यह परिणति भी इस भूमिकी है। पहले प्रकाशरूप थी, अब अंधकाररूपमें है। जमीन अपनी परिणतिसे प्रकाशरूप हुई और अपनी परिणतिसे अंधकाररूप हुई। मगर यह तथ्य भी मना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं किया जा सकता कि सूर्यका सन्निधान पाकर यह पृथ्वी अपनी परिणतिसे प्रकाशरूप हुई और अब बादलका सन्निधान पाकर याने सूर्यका आवरण पाकर, निमित्त पाकर अब यह पृथ्वी अंधकाररूपसे परिणत हो रही। तो विषम पर्यायें जितनी होती हैं वे निमित्त सन्निधानमें ही होता है, इसी कारण वे विकार कहलाती हैं। और इसके परिचयसे ज्ञानी जीवको यह साहस जगता है कि इन विकारोंमें लगना व्यर्थ है, क्योंकि यह पुद्गलकी छाया माया है। ये जबर-दस्ती विकार नहीं कराते, किन्तु मैं ही इनमें अपना उपयोग लगा देता हूं, इन्हें अपना लेता हू ता मेरम विकार जग जाते हैं, इसलिए मैं इन्हें अपनाऊँगा ही नहीं, मैं तो इनका केवल ज्ञाता द्रष्टा ही रहूंगा। यह सब पुण्यका उदय है। ये मेरे कोई स्वरूप नहीं हैं, मेरा स्वरूप तो सहज ज्ञानमात्र है। ऐसा कोई अपने को अनुभव करे तो इस सहज आत्मस्वरूपके आल-म्बनके बलसे आवरण भी दूर हो जायगा, विकारभाव दूर हो जायेंगे और एक निर्मल स्वच्छ ज्ञानपर्याय प्रकट होगो, सदाके लिए सर्व संकट दूर हो जायेंगे, सर्व उपाधियोंका सम्बन्ध दूर हो जायगा। फिर न जन्म है, न मरण है, न विग्रहगति होगी, न कार्माण योग होगा। सारे झंझट एक साथ समाप्त हो जायेंगे। इसलिए हम आपका यह कर्तव्य है कि उस पवित्र स्थितिको पानेके लिए हम अपने आपके इस सहज आत्मस्वरूपका चिन्तन करें और यह मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसी प्रतीतिको दृढ़ बनायें, इससे बढ़कर और कोई कमाई नहीं हो सकती। सब धोखा दे जायेंगे, सब संकटके कारण बन जायेंगे, मगर जीव आत्मस्वरूपको आत्माके रूपमें अनुभवता रहेगा तो यह इस आत्माको पार कर देगा।

विग्रहगतिकी पद्धति—प्रकरण यह चल रहा है कि जीव जब एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है तो उस क्षेत्रके लिए यह जा कैसे सकता है, क्योंकि पहला शरीर रहा नहीं, दूसरा शरीर पाया नहीं। तो शरीर तो उसके पास है नहीं और मन भी नहीं है तो मन बिना शरीर बिना यह जीव दूसरे भवमें चला कैसे जाता है? इसका उत्तर अभी दिया गया है कि विग्रहगतिमें जीवके कार्माणशरीरका योग होता है याने जीवनें कषायवश जो अपना परिणाम बताया तो उसका निमित्त पाकर सूक्ष्म परमाणु कार्माण जातिके हैं वे कर्मरूप बन गए। देखो जब भी कोई विकट विसम विकारदशा बनती है तो नियमसे कोई दूसरा पदार्थ लगा है संसर्गमें तब बनता है, केवल अकेलेमें परके संग बिना, परकी उपाधिका निमित्त पाये बिना विकार नहीं जगता, तब ही तो यह समझमें आता कि ये विकार हैं, नैमित्तिक हैं, परभाव हैं, तो भी है कार्माण शरीर, जिसका निमित्त पाकर जीवकी नाना स्थितियाँ बन रहीं। तो जब यह जीव दूसरा शरीर ग्रहण करनेके लिए जा रहा तो उसके रास्तेमें कार्माण काय योग है। अच्छा यह बात तो जान ली गई, अब दूसरी बात और समझनेको रह गई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि जब यह जीव जाता है तो आकाशमें ही तो जा रहा है और आकाशमें हैं श्रेणियाँ। आकाश प्रदेशवान है और आकाशमें हैं श्रेणियाँ। आकाश प्रदेशवान है और ऊपरसे नीचे, पूरबसे पश्चिम, दक्षिणसे उत्तर ऐसी श्रेणियाँ नाना हैं आकाश प्रदेशमें और उस आकाशमें सब जीव पुद्गलको माना जा रहा तो यह बात समझनेको रह गई कि शरीर छोड़कर जब जीव जाता है तो इस आकाश प्रदेशमें जब इस जीवकी गति होती है तो क्या उन प्रदेशोंके क्रमसे गति होती है या जैसे हम आप लोग टेढ़े-मेढ़े जा रहे, किसी तरह चला करते हैं तो क्या जीव इस तरहसे गमन कर सकता है ? ये दो विकल्प रखे गए। उसके समाधानमें सूत्र आ रहा है।

अनुश्रेणिगतिः ॥२६॥

शरीर छोड़नेके बाद जीवकी व स्कंधसे हटनेके बाद अणुकी गतिकी विधि—जीव और पुद्गलकी गति आकाश प्रदेशमें बनी हुई श्रेणीके अनुसार है, याने जब शरीरसे छूटा तब जीव जायगा तो श्रेणीके अनुसार जायगा। ऐसे ही पुद्गल परमाणु जब अकेला हो गया तो उसकी भी जो गति होगी वह श्रेणीके अनुसार होगी। वैज्ञानिक लोग इससे पहिचान सकते हैं कि अभी ऐटम बना या नहीं, परमाणु हुआ या नहीं, परमाणुकी गति ठीक सीधी दिशा में होती है, वह तिरछा या गोल गमन नहीं कर सकता, इसी प्रकार यह जीव जब एक शरीर छोड़कर जाता है तो उसकी भी श्रेणीके अनुसार गति हो गई, वह टेढ़ा न जायगा, और लोकमें किसी भी जगहसे कहीं उत्पन्न होवे जीव तो उसको मोड़ लेना पड़ता है, तो तीन मोड़से अधिक लेनेकी गुंजाइश नहीं है। लोक कितना बड़ा है ? कहीं भी मरा, कहीं पैदा हो और जायगा वह सीधी दिशामें तो उसे कभी कुछ मोड़ लेना पड़ेगा, कहीं नहीं भी, सीधा बिना मोड़के भी जायगा तब कहीं उस स्थानपर पहुंच पायगा। तो मोड़ा भले ही हो वहाँ भी उसकी गति सीधी बन गई। तो जीवकी गति श्रेणीके अनुसार होती है, पर हां जो शरीरधारी जीव हैं वे टेढ़े मेढ़े कैसे भी चल लें। हम आप चला ही करते हैं ऐसे ही स्कंध है, अनेक परमाणुवोंका पुञ्ज है। वह भी टेढ़ा-मेढ़ा गोल-मटोल कैसा ही चल ले, पर जो देह छोड़कर जा रहा है वह सही न जाएगा, इसी प्रकार जो एक पुद्गल परमाणु मर गया वह भी सीधा ही जायगा। तो आकाशके प्रदेशकी जो पंक्ति है ऊपरसे नीचे, पूरबसे पश्चिम, दक्षिणसे उत्तर तो इस प्रकार गति उन श्रेणियोंके अनुसार होती है।

प्रकृत सूत्रमें जीव और पुद्गलके ग्रहकी विधि—अब जरा शब्द दृष्टिसे सूत्रपर निगाह दें—अनुश्रेणिगतिः, शब्दमें तो इतना ही अर्थ भरा है ना कि श्रेणीके अनुसार गमन होता है और इसमें जीव आदि शब्द नहीं हैं। तब यह अर्थ कहाँसे निकाल लिया कि जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और पुद्गलकी गति श्रेणिके अनुसार होती है। अगर कोई उत्तर यह दे कि जीवका प्रकरण चल रहा और इससे पहले सूत्रमें जीव शब्द भी आया है तो समझ लो प्रसंगवश कि जीवकी गति श्रेणीके अनुसार होती है, खैर अच्छा यह मान लो पर पुद्गलकी बात तो न आ सकेगी। तो कहते हैं समाधानमें कि जीवकी बात तो प्रकरणसे ले लो अथवा अब अगले सूत्रमें अविग्रहा जीवस्य, ऐसा शब्द दिया है चाहे वहांसे ले लो, लेकिन जीवका जब प्रकरण था तो वहां जीव शब्द देनेकी क्या जरूरत थी? वह शब्द व्यर्थ होकर यह जताता है कि इससे पहलेके सूत्रमें जीव और पुद्गल दोनोंकी गति माननी पड़ती है। दूसरी बात 'गति' शब्द पहले सूत्रमें आया—विग्रहगतौ कर्मयोगः, तो फिर यहां गतिः शब्द देनेकी क्या आवश्यकता है? सिर्फ इतना ही सूत्र बनाते—अनुश्रेणि, अर्थ इतना ही आ जाता। तो इसमें जो गति शब्द दिया है उससे यह सिद्ध होता है कि जीव और पुद्गल दोनोंकी गति लेना है। तो यों सूत्रका अर्थ हुआ कि जीव और पुद्गल परमाणु। जीव कौनसा? जो देहको छोड़कर जा रहा इसकी गति आकाश प्रदेशके श्रेणीके अनुसार होती है और विविक्त परमाणुकी भी गति श्रेणीके अनुसार होती है।

योग और उपयोगका ही जीवमें परिणमन—देखिये जीवमें दो प्रकारकी परिणति होती है—(१) उपयोगकी और (२) योगकी। यह खास ध्यान देकर सुननेकी बात है। समयसारमें भी बताया है कि जीवके योग और उपयोगका निमित्त पाकर यह सब संसार, ये सब कर्मबंधन, सारी बातें चलती हैं। तो निमित्त दृष्टिसे योग और उपयोग करना, पर जीव निमित्त दृष्टिसे भी कर्ता नहीं, जीवद्रव्य तो परका सब विधियोंमें अकर्ता है, अपने आपके अन्दर भी ऐसी ही बात घटावो। योग मायने क्या, उपयोग मायने क्या? उपयोग तो है ज्ञानका परिणाम। उपयोग लगाया, ज्ञानको अभिमुख किया, यह तो कहलाता है उपयोग और योग है प्रदेशका हलन-चलन। हम चलें या वहीं बैठे ही हैं, पर आत्माके प्रदेश जैसे गरम पानीमें बूंदोंका उलट पुलट होता है ऐसे ही इस कर्माधीन दशामें जीवके प्रदेशमें उलट पुलट चल रहे हैं। तो ऐसे योग और उपयोग ये जीवके समझना चाहिए। तो 'उपयोगका वर्णन चल रहा था बहुत सूत्रों तक—उपयोगो लक्षणं और उस उपयोगसे सम्बंधित बहुत विषय चला।

अब यह योगका प्रकरण चल रहा है और यह योग शुरू होता है विग्रह गतिसे, याने योग वाले कथनका प्रारम्भ विग्रहगतिसे होता, क्योंकि योगमें कोई शंका न थी, लेकिन जब यह पूछा गया कि एक देह छोड़ा, दूसरा देह मिला नहीं जीवको तो यह जाय कैसे? वहां से कार्माण योगकी चर्चा चली। योग और उपयोग हैं अपने पास। योग और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योग और उपयोगके करने वाले ही बनते हैं अपन लोग। हम आप लोगोंकी और कुछ करतूत ही नहीं होती, न दूकान चलाते। न धन जोड़ते, न शरीर बनाते, न शरीरको दुबला पतला करते, न मोटा बनाते, अन्य बातें हम कुछ नहीं कर पाते, बस योग बनाते, उपयोग बनाते। इसके अतिरिक्त हमारी कोई करतूत नहीं चलती।

योग और उपयोग मात्रका कर्तृत्व हो सकनेकी बात ध्यानमें न होनेसे आपत्तियोंका प्रसंग—हम योग और उपयोगको ही कर सकते हैं, यह लोगोंके ध्यानमें नहीं है, इसलिए बहुत घमंड उठता है। मैंने इनको पढ़ाया लिखाया और इतना धन कमाकर दिया, अब यह बालक मेरे प्रतिकूल चल रहा है मेरेको यह पूछता ही नहीं है, तो दुःख मान लिया। अरे भैया यह क्यों नहीं समझ पा रहे कि हम पहलेसे ही भूल कर रहे, हमने उस बालकको कुछ नहीं किया, उसका ही पुण्यका उदय हुआ तो उसके पोषणमें हम निमित्त बन गए। उसका उदय अनुकूल है तो हम न बनते तो किसी अन्यको निमित्त बनना पड़ता और अगर उसका उदय प्रतिकूल हो तो चाहे कितना ही हम परिश्रम करें मगर उससे कोई सिद्धि नहीं होती। तो ऐसा भ्रम न करें कि मैं बच्चोंका पालन-पोषण करता हूं। अरे सब जीवोंके अपने-अपने कर्म हैं, उनका उदय उनके साथ है। उनके उदयानुसार ये सब बातें होती हैं। जब यह बात ज्ञानमें आ जाय कि मैं तो केवल योग और उपयोगको करने वाला हूं। इसके अतिरिक्त मेरी कोई करतूत नहीं, तो इस जीवको आनन्दका रास्ता मिल जायगा।

क्लेशका प्रथम कारण अहंकार—जीवको दुःख देने वाले चार प्रकारके परिणाम हैं— (१) अहंकार, (२) ममकार, (३) कर्तृत्वबुद्धि और (४) भोक्तृत्वबुद्धि। जो मैं नहीं उसे मान लिया मैं, बस दुःख उसे नियमसे होगा, क्योंकि मूलमें उसने भूल कर ली। शरीर मैं नहीं हूं, उसे मान लिया यह हूं मैं, तो अब सारे संकट उसपर आ धमकेंगे। जब कोई निन्दा करता है तो निन्दा सुनकर यह क्यों घबड़ाता है? निन्दा करने वालेने तो अपना ही मुख चलाया कि इसमें कुछ उत्पन्न कर दिया? फिर क्यों दुःखी होते? अरे वह यों दुःखी होता कि शरीरको माना कि यह मैं हूं। तो अब इस शरीरको दुनियाकी दृष्टिमें बहुत महत्त्वशाली दिखानेके लिए इसकी चेष्टायें चलती हैं, विकल्प चलते हैं। तो अब यह मान लेता है कि हाय इसने मुझको गाली दी। यहाँ मुझको का अर्थ है शरीर, क्योंकि वही मान रखा इस जीवने, इसलिए दुःखी होता है। और यह जीव जो कि मैं तो एक ज्ञानस्वरूपमय हूं अब भी गुप्त हूं, निराला हूं, शरीर मैं नहीं हूं। शरीर तो एक कलंक है, उसके लिए इसने गाली दी सो यह तो बहुत कम गाली दी गई, इससे कई गुना अधिक देनी चाहिए थी, क्योंकि यह शरीर ऐसा बेढब कलंक हमें मिला कि जिसकी वजहसे ही हम दुःखी हो रहे।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब बतलावो आज जिस घरमें उत्पन्न हुए हैं, जिसमें रह रहे हैं वहाँ जो जीव आता है उनसे इसकी ममता बन जाती है। कोई सम्बन्ध है क्या किसीसे ? सब स्वतंत्र वस्तु हैं। अगर शरीरमें आत्मदृष्टि बन गई तो सम्बंधको भी यह सच्चा मान लेता है, फिर उसके बाद अनेक प्रकारके इसे संकट मिलते हैं। तो शरीर तो समस्त ऐबोंकी जड़ है। उपाय वह बनाना है कि हमको यह शरीर ही न मिले। दूसरी बात—शरीर तो मिला ही है, अब क्या करें ? तो यह करें कि ऐसा भीतर गहरे अनुभवमें जावें कि अपना जो निज स्वरूपास्तित्व है उसकी दृष्टि बनावें कि हमको यह ही भान न हो कि शरीर भी साथ है क्या ? उत्तम ध्यानकी पहिचान ये तीन हैं जो कि बादमें मालूम पड़ेंगी। एक तो यह है कि वह शरीररहित है जैसा अपने को अनुभव कर रहा। उत्तम ध्यानकी पहिचान पहिली यह है। यदि शरीरका थोड़ासा भी ख्याल है तो वहाँ आत्मध्यान न रहा। कैसा भी देहका ध्यान नहीं कि यहाँ बैठा हूं। भले ही पद्मासनसे बैठे हैं, अर्द्धपद्मासनसे बैठे हैं, सुखासनसे बैठे हैं, वीरासनसे बैठे हैं, अनेक प्रकार के आसन ध्यानके कहे गए हैं, लेकिन इतना ख्याल नहीं है कि आसन भी लगा है, शरीर भी मेरे पास है। एक तो शरीरका भान न होना, दूसरे क्षेत्रका भान न रहना। मैं मंदिरमें बैठा हूं, घरमें बैठा हूं, जंगलमें बैठा हूं या कहीं बैठा हूं, यों क्षेत्रका भी ध्यान न रहना, ख्याल ही नहीं है क्षेत्रका, और तीसरी बात है समयका ख्याल नहीं उसको कि मैं शामको बैठा हूं या सुबह। कितने बजे बैठा हूं, यह कोई ध्यान नहीं रहता।

तो शरीर, समय और क्षेत्र—इन तीनोंका उसे ख्याल नहीं होता जो एक आत्मध्यानमें लगा हुआ है। सार बात केवल एक आत्मध्यानकी है। उसके लिए कभी समयको लम्बा बनानेका प्रोग्राम न रखना चाहिए अपनी बुद्धिमें, चाहे काम कभी बने, पर दृष्टि यह होनी चाहिए कि यह आत्मध्यानका काम तो मेरा तुरन्त बने, अभी बने, बने चाहे कभी, ऐसी जिसकी धुन है उसके आत्मध्यानकी बात बनेगी। आत्मध्यान मायने क्या ? जानने वाला कौन है ? ज्ञान। तो जानने वाला यह ज्ञान निज ज्ञानके स्वरूपको जाने याने ज्ञान ज्ञानको जाने तो वहाँ ज्ञानमें जब मात्र ज्ञानस्वरूप ही जाना जा रहा है, अन्य कुछ नहीं जाना जा रहा है, ऐसी स्थिति आत्मानुभवकी होती है।

अब बतलावो जब ज्ञानमें मात्र ज्ञानस्वरूप ही जाना जा रहा है तो यह जानने वाला अपनी ओरसे अस्थिर हो जाय तो हो जाय, होता ही है, मगर जो जाननेमें आया है उस तत्वकी ओरसे धोखा नहीं है। यह जानने वाला उपयोग अस्थिर है, चंचल है, यह जानकर हट भी जाय, मगर जाननेमें जो आ रहा है सहज निज ज्ञानस्वरूप वह तो नहीं हटता, पर ज्ञानमें न रहा उसका नाम हटना कहलाता है। ज्ञानानुभूतिकी स्थिति सर्वोत्कृष्ट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वैभवकी स्थिति है। जिस जीवने अपने आत्मस्वरूपका परिचय नहीं पाया, अनुभव नहीं पाया वह जीव बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि लगाये हैं। अहंकार शरीरको माना कि यह मैं हूं, उसका फल है कि सारी विपदायें आ रही हैं। लोग तो बड़ी शानसे बोलते हैं—अजी मैं कर दूंगा यह, मैंने किया यह, मैं इसे ऐसा कर दूंगा। मेरे सिवाय दूसरा कौन कर सकता है?··· अरे यह मैं मैं जब तक रहता है, अहंकार जब तक रहता है तब तक इसके विकट कर्मबन्ध है, और इसके सतत आकुलता है तो पहली भूल तो है जीवकी अहंकार।

क्लेशका द्वितीय कारण ममकार—दूसरी भूल है ममकार याने ममता करना, यह मेरा है, मेरा है, मेरा बच्चा, मेरी स्त्री, मेरा पति, मेरा शरीर, मेरा मित्र, मेरा देश, मेरा मौहल्ला, मेरा गाँव···कितनेमें मेरा मेरा की बुद्धि बन रही है। जब कि ये मेरे हैं कहीं कुछ नहीं। कभी-कभी किसी-किसी बात पर यों झगड़ा हो जाता है कि कोई चाहता है कि मैं अपनी बात सुनाऊं, वह समझता है कि मेरा यह विचार तो अच्छा है, पर दूसरा कोई उसकी बातकी काट करता है—अजी यों नहीं यों है, तो वह पुरुष बड़ा दुःखी होता है। ····अरे भाई क्यों दुःखी होते? मेरी बातकी इसने काट कर दी।····अरे तुममें अहंकार है, ममकार है अपने विचार परिणाममें। तो यह सोचकर कि मेरे विचारको यह गलत बतलाता मुझको यह गलत कहता। तो कैसे कैसे अन्दरमें दुराशय हैं इस जीवमें जिनके कारण यह जीव जन्म-मरण करता और मरेके बाद दूसरा जन्म पानेके लिए जाता, तो किस तरह जाता तो यहाँ चर्चा चल रही है कि यह जीव आकाश प्रदेशमें श्रेणीके अनुसार जाता है। तो जीवके दोष कह रहे हैं– अहंकार, ममकार, कर्तृत्व बुद्धि, भोक्तृत्व बुद्धि।

क्लेशका तृतीय कारण कर्तृत्वबुद्धि—मैं करता हूं, मैंने किया, मैं कर सकूंगा, मुझे करना चाहिए आदिक रूपमें जो करनेके विकल्प उठते हैं ये दुःखके हेतु हैं। तो विचारना चाहिए कि आत्मा केवल योग और उपयोगका करने वाला है, इसके अतिरिक्त मेरी और कोई गति नहीं है। तो बाह्यपदार्थोंमें मेरा कर्तव्य ही क्या है, फिर भी अज्ञानी बाह्य पदार्थों में कर्तापन की बुद्धि करता है और दुःखी होता है, और उस कर्तापनमें हठ बनाते कि मैं तो ऐसा करके ही रहूंगा। मैं तो ऐसा कराके ही रहूंगा। अरे कुछ थोड़ी सी योग्यता पायी है, मनुष्य हुए हैं, बल मिला है, तो यहाँ कुछ हठ बना लें, मगर इसका परिणाम अच्छा नहीं। जैसे बच्चोंकी हठ पूरी करना बहुत कठिन होता है ऐसे ही अज्ञानी की हठ पूरी होना कठिन होता है। किसी बच्चे ने हाथी देख लिया तो उसके मनमें आया कि मैं तो हाथी लूंगा, तो वह रोने लगा, मचलने लगा और जमीनमें पड़कर हाथ पैर हिलाने लगा। खैर दो चार रुपये महावतको देकर उस बच्चेके पिताने उस हाथीको अपने घरके सामने खड़ा करवा दिया और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा लो बेटा रोओ मत, यह हाथी आ गया। फिर वह बच्चा हट करने लगा कि इसे तो खरीद दो। तो उसके पिताने महावतसे कहकर अपने बाड़ेके अन्दर हाथी खड़ा करवा दिया और फिर कहा लो बेटा खरीद दिया। अब फिर वह यह हठ करने लगा कि इसे तो मेरी जेबमें धर दो। अब भला बतलावो उसकी यह पूर्ति कौन करे? तो ऐसी ही हठ अज्ञानी जन करते हैं। बाह्य पदार्थोंके प्रति यह हठ बनाते हैं कि ये मेरे बनकर रहें, तो भला बताओ उनकी यह हट कैसे निभ सकती है? परपदार्थ पर किसीका अधिकार कुछ है नहीं, पर यह उनके प्रति कर्तृत्वबुद्धि रखता है। यह कर्तृत्वबुद्धि इस जीवको दुःख देती है।

क्लेशका चतुर्थ कारण भोक्तृत्वबुद्धि—भोक्तृत्वबुद्धि मैं भोग रहा हूं, मैं इसका उपयोग कर रहा हूं, मैं भोजनको भोगता हूं, कपड़ोंको भोगता हूं, राज्यको भोगता हूं, बाहरी पदार्थोंको भोगता हूं, जिनको कि यह जीव भोग ही नहीं सकता। स्वरूप ही नहीं ऐसा कि यह जीव किसी परपदार्थको भोग सके। फिर जो भोगनेकी बात चल रही है सो किसको भोगता? परपदार्थोंके ज्ञानको भोगता है, पदार्थको नहीं भोगता यह जीव, किन्तु पदार्थके ज्ञानको भोगता है। सब जगह घटा लो। आपने भोजन किया, आम खाया, मीठा लगता तो बोलो आपने आममें रहने वाले मीठे रसको भोगा क्या? अरे आममें जो मीठा रस है उसका तादात्म्य तो आमके साथ है। पुद्गलकी गुणपर्यायका तादात्म्य उसी पुद्गलमें है। उसमें से हम क्या निकाल सकते रस? मैं पुद्गलको रसरहित कर दूं और उसके गुण निकालकर मैं अपने आत्मामें धर लूं यह कभी नहीं हो सकता। पुद्गलकी बात पुद्गलमें रहेगी, पर हुआ क्या कि पुद्गलके रसका रसना इन्द्रिय द्वारा ज्ञान किया। यह मीठा है और अब संगमें राग लगा है तो उस ज्ञानमें उस मीठे रसका भ्रम कर लिया। मैं रसको भोगता हूं, भोग रहा वह ज्ञान और सोच रहे कि मैं इन पदार्थोंको भोग रहा तो यह भोगनेकी बुद्धिमें भ्रम लगा कि नहीं? बस इन्हीं चार दोषोंके कारण यह संसारी जीव जगतमें भ्रमता है और जब भ्रम रहा तो भ्रमणके मायने हैं जन्म और मरण। मरा अगले भवमें गया, तो अगले भवके लिए जाता तो किस ढंगसे जाता, यह बात इस सूत्रमें बतायी गई है कि आकाश प्रदेशमें जो श्रेणियाँ हैं उन श्रेणियोंके अनुसार इसकी गति होती है।

त्यक्तदेह जीवकी व पुद्गलाणुकी अनुश्रेणि गति—आकाश प्रदेश पंक्ति श्रेणिके अनुसार किसकी गति होती है? जीवकी और पुद्गलकी। कैसे जाना कि पुद्गलकी भी गति श्रेणीके अनुसार होती है? तो भाई अगले सूत्रमें जीवस्य शब्द देंगे तो जब जीवका प्रकरण है तो जीवस्य शब्द क्यों दिया? इससे सिद्ध होता कि सूत्रका अर्थ यह लेना कि जीव और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुद्गलकी गति श्रेणीके अनुसार होती है। अब सूत्रमें तो इतना ही लिखा ना श्रेणीके अनुसार, तो एक शंका यह बनती है कि हम तो यहाँ यह देख रहे हैं कि लड़के लोग चैंया मैंयाका खेल खेलते हैं ना और जब लुवा-छिपीका खेल खेलते हैं तो कोई लड़का कहीं भागता, कोई कहीं। तो उनका कोई श्रेणीके अनुसार तो गमन नहीं होता। तो कहते हैं कि नहीं, यह प्रकरण है देहको छोड़कर जाने वाले जीवका। काल और देशका नियम लेकर बोलना चाहिए। मरण कालकी यह बात चल रही है और उसीके क्षेत्रकी यह बात चल रही है। तो जीव जब पुराने देहको छोड़कर नया देह धारण करता है तो जीवका आकाश प्रदेशमें पंक्तियोंके अनुसार गमन होता है।

अब देखिये—यह गति यह विकृत है, स्वभावकी गति न रही। स्वभावकी गति तो होगी तब जब जीव कर्मरहित होगा। तो दो प्रकारकी गतियाँ हैं—एक तो स्वभाविकी और एक वैभाविकी। तो संसार-अवस्थामें तो यह जीवकी गति औपाधिकी चल रही है। सो शरीर उपाधि साथमें हो तो नाना प्रकारकी गति है और स्थूल शरीर साथ न हो, एक सूक्ष्म शरीर है तो उसकी अनुश्रेणी गति है, और शरीररहित हो जाय तो उसकी भी बिल्कुल एक दिशामें ऊर्ध्वगति हो जाती है। तो देखो जीव क्रियाका कर्ता है, परिस्पंदका कर्ता है, उपयोग को चलाता है तो अपने आपमें यह जीव काम कर रहा है, बाहरमें यह कुछ नहीं करता।

जन्म, जीवन व मरणसे अतीत होनेका लक्ष्य—भैया! जब जीव बाहर कुछ नहीं करता तो आत्मामें जावो, समाधिमें लगो। वह उपाय क्या है? अरे तुम केवल आत्मा आत्माकी ही बात जानो, केवल आत्माको ही निरखो, आत्माकी कला, आत्माकी शक्ति, आत्माका वैभव, आत्माका स्वरूप, आत्माकी लीला एक आत्माके इस गंभीर तत्त्वमें प्रवेश करें तो समाधिभाव बन जायगा। परपदार्थोंमें लगाव रखते हुए चाहें कि हमें धर्म मिले, समाधि मिले, समता जगे, शान्ति हो तो ये सब एक व्यर्थके स्वप्न हैं। यह समझना है कि रागद्वेष मोह परिणाम रहते हुए शान्ति कभी प्राप्त नहीं हो सकती। और निज सहज ज्ञानस्वरूपको दृष्टिमें ले कोई और उसका ही ज्ञान करे, उसमें ही तृप्त रहे, उसमें ही रम जाय तो उसको शान्ति प्राप्त हो सकती है। अब देखो—अपने लिए कौन महान् है? अपने लिए यह आत्मा खुद महान् है, इसके संकट मिटानेके लिए कोई दूसरा न आयगा। खुदका ही ज्ञानबल खुदके संकटोंको टाल सकता है। जब कि खुदका ही रागबल, खुदका ही यह मोह, खुद की ही यह कलुषता इस संसारमें इस जीवको रुलाती रहेगी, जन्म-मरण कराती रहेगी। एक बात और खास समझनेकी है कि जीव जैसे मरा याने एक देह छोड़कर गया, अब दूसरा देह पायगा तो यह बताओ कि वह जिन्दा कब कहलाया? जन्म कब हुआ इसका? तो कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

लोग जन्म तो इसे कहते हैं कि जीव जब पेटसे निकला तब जीवका जन्म हुआ, पर बताओ उस दिन उस जीवका जन्म हुआ है क्या ? और पेटमें बिना जन्मके ही रहा क्या ? तो कुछ लोग तो यह कहेंगे कि जिस दिन वह जीव गर्भमें आया उस दिन उसका जन्म हुआ । अच्छा तो एक यह प्रसंग कि जीवको एक देह छोड़नेके बाद दूसरा देह पानेमें दो-तीन समय तक लगते हैं तो फिर उसका जन्म कब कहलाया ? जन्म वाली जगहपर पहुंच जाय तो उसे माना गया जन्म । मरणका नाम जन्म है । जिस समय मरा उसी समय जन्म हुआ । रास्तेमें जा रहा तो जन्म हो गया उसका । दूसरे भवका नाम पड़ गया उसके और अब जा रहा । जैसे घड़ेको फोड़ दिया तो खपरियाँ बन गईं, तो बताओ खपरियाँ पहले बनीं कि घड़ा पहले फूटा ? तो आप तो यही कहेंगे कि ये दोनों ही काम एक साथ हुए । उसी समयमें घड़ा फूटा और उसी समयमें खपरियाँ बनीं । ऐसे ही मरण जिस समय हुआ वही समय जन्मका है । पूर्व भवका मरण, अगले भवका जन्म दोनोंका एक समय है । अब वह रास्तेमें जा रहा है, दो तीन समय लग रहे तो उसकी जो गति है वह आकाश प्रदेशमें श्रेणीके अनुसार होती है, यह बात इस सूत्रमें कही गई है । हमें यहाँ यह शिक्षा लेनी है कि जन्म, जीवन व मरणसे अतीत होनेमें ही कल्याण है ।

अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

मुक्त जीवकी गतिकी विधि—मुक्त जीवकी मोड़रहित होती है । इससे पहले सूत्रमें यह बताया था कि जीव और पुद्गलकी गति श्रेणीके अनुसार होती है याने जिसने देह छोड़ा, दूसरा देह धारण नहीं किया उन जीवोंकी जो दूसरा देह धारण करनेके लिए गति होती है वह आकाशके प्रदेशोंकी श्रेणीके अनुसार होती है । इसी प्रकार जो एक पुद्गल परमाणु है उसकी भी गति होती है, तो आकाश प्रदेशकी श्रेणीके अनुसार होती है । एक सामान्य कथन था, और संसारी जीवका प्रकरण चल रहा था और संसारी जीवकी बात ही छेड़ी गई थी कि विग्रहगतौ कर्मयोगः, उसकी गतिका सम्बंध रखते हुए यह प्रकरण चल रहा था । तो यहाँ यह जिज्ञासा होनी प्राकृतिक है कि संसारी जीवोंका तो यह हाल है, पर जो मुक्त हो जाय, जो कर्मबन्धनसे छूट जाय उसकी गति किस प्रकारकी होती है ? तो उसका समाधान इस सूत्र में दिया है, और जैसे लोगोंको बहुत शंकायें बनी रहतीं कि जीव मुक्त हो गया तो वह संसार में ही फैल जाता है, सब जगह व्यापक हो जाता है, सो उसका भी समाधान इस सूत्रमें मिल जाता है, फैलता नहीं है वह किन्तु उसकी गति होती है । तो उसकी गति कहाँके लिए होती है ? बस जहाँसे मुक्त हुआ है उसके सीधमें गति होती है । कहाँ तक, जहाँ तक लोकके अन्तमें गतिका साधनभूत धर्मास्तिकाय है । गति वहाँ तक ही चलती है । कहीं धर्मास्तिकायने गति

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं करायी, वह तो उदासीन निमित्त है, मगर जो कुछ एक अपूर्व बात होती है तो उसमें कोई न कोई निमित्त होता है, नहीं तो अनादि अनन्त क्यों नहीं होता ऐसा ? तो धर्मास्तिकाय निमित्त होता है और जीव पुद्गलकी गति होती है। तो धर्मास्तिकायका जहाँ तक सद्भाव है वहाँ तक इस जीवकी गति होती है। अविग्रहा जीवस्य—मुक्त जीवकी गति विग्रह रहित है।

अविग्रहाका अर्थ और सूत्रमें "मुक्त" शब्दकी ध्वनिका हेतु—यहाँ विग्रहका अर्थ है मोड़ा, अविग्रहा, कुटिलतारहित गति है। एक ही समयमें यह मुक्त जीव लोकके अंतमें जाकर विराजमान हो जाता है। यहाँ एक बात समझनी है कि सूत्रमें तो मुक्त शब्द दिया नहीं। सूत्रमें तो इतना ही कहा है—अविग्रहा जीवस्य, जीवकी अविग्रह गति है। अब किस जीवकी ? उसका कोई विशेषण यहाँ नहीं दिया, फिर तुमने मुक्त जीव कैसे अर्थमें ले लिया कि मुक्त जीवकी गति मोडरहित है। समाधान यह है कि आगे जो सूत्र आयगा उसमें संसारी शब्द पड़ा है, इस कारण इसमें मुक्त अर्थ लिया जायगा। अगर संसारी ही अर्थ लिया जाता तो संसारियोंका तो यह प्रकरण ही चल रहा था, फिर अगले सूत्रमें संसारी शब्द देनेकी क्या आवश्यकता थी ? तो वह संसारी शब्द यह सिद्ध करता है कि इससे पहले सूत्रमें जो अविग्रहा गति बतलायी वह मुक्त जीवके है, मुक्त मायने क्या ? छूट गया, किससे छूट गया ? उसके अलावा जो कुछ भी चीज हो सबसे छूट गया याने आत्माके अतिरिक्त अन्य जो-जो कुछ चीजें हैं उन सबसे छूट गया, कर्मोंसे छूट गया, शरीरसे छूट गया, रागादिक विकारोंसे छूट गया, अपरिपूर्ण ज्ञान विकाससे छूट गया और क्या रह गया ? जो था सो रह गया। अब देख लो, जो था सो ही तो रहा, तो जो रहा उससे ही यह समझ लो कि आत्मा ऐसा होता है।

मुक्त जीवके पवित्र स्वरूपका अभिनन्दन—हम आप सब आत्माओंका स्वरूप ज्ञान है, और स्वभाव ऐसा है कि जो कुछ भी विषय है समस्त विश्वको यह एक साथ स्पष्ट जान ले, ऐसा इसमें स्वभाव पड़ा हुआ है, पर उस स्वभावका आवरण हो गया, वह प्रकट नहीं हो पा रहा। आवरण मिट जाय, जो था सो ही हो गया। इस दृष्टिसे देखें तो भगवानकी तारीफ की कोई बात नहीं है। वह तो आत्माका स्वरूप है। तारीफ तो यहाँ संसारी जीवोंकी है। वे कैसी-कैसी विचित्र परिणतियाँ कर रहे हैं ? छिनमें पेड़-पौधे बन गए, छिनमें हाथी, शेर, उल्लू आदिक पशु-पक्षी बन गए, यह है मदारी जैसा काम। तो तारीफ यहाँ संसारी लोगोंकी है, भगवानकी क्या तारीफ ? जो स्वभाव है जो सही बात है वह प्रकट हो गयी। तो इन संसारी जीवोंकी कला भला मुक्त भगवान करके तो दिखा दें। क्यों नहीं दिखा पाते कि वे बिल्कुल सीधे-सादे हैं। उपयोग उनका सीधा, ज्ञान उनका सीधा, गति उनकी सीधी, तब ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो कीड़ारहित गति बनती। ज्ञानका जो स्वरूप है, स्वभाव है वह उनके पूर्ण प्रकट है, वहाँ कोई रुकावट नहीं है। जो था सो हो गया। तो भाई जो अभी तारीफकी बात कही सो तारीफ होती है महत्त्वशाली चीजके लिए। यहाँ तो खोटी लीला है। जो महत्त्वशाली हो, उसकी तारीफ की जाती है, तो चूँकि संसारी जीवोंमें वह पवित्रता नहीं है, वह विकास नहीं है कि सारे लोकालोकको जान लें। और भगवान तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंके स्पष्ट ज्ञाता हैं, इसलिए संसारमें भगवानकी तारीफ है, मगर ऐसा तो आत्माका स्वभाव है, स्वरूप ही है, इसकी दृष्टि जिसे हो गई उसके लिए कोई तारीफकी बात नहीं लगती। वह तो प्रभुका स्वरूप है। आत्माका तो यह स्वरूप है। देखो आत्माके स्वभावका विश्वास हो, 'यह मैं हूं' ऐसी श्रद्धा हो और ऐसा ही ज्ञान करें तो ऐसी परिणतिमें ही एक सच्ची विभूति है।

स्वरूपोपलब्धिकी सुगमता तथा परप्रसंगकी कठिनता—ज्ञानपरिणतिके सिवाय बाहरी कितना ही कुछ वैभव मिल जाय तो वह कोई वैभव नहीं है। उसे पाकर क्या चैन पड़ती? बल्कि जितना अधिक वैभव बढ़ता जाता उतना ही अधिक उसके प्रति चिन्तायें बढ़ती जाती हैं। चोर डाकुवोंका भय बना रहता, सरकारके कानूनोंका भय बना रहता। क्या सरकार ऐसे कानून बना नहीं सकती कि इतने धनसे अधिक कोई नहीं रख सकता, इससे अधिक धन सरकारका हो जायगा। विदेशोंमें ऐसे कानून चलते भी हैं। यहाँ भी जब चाहे तब सरकार ऐसे कानून बना दे और बना भी है। जरूरत पड़ जानेपर सब कुछ सरकार ले सकती है। जिस मकानमें आप रह रहे हैं, जिसकी रजिस्ट्रार आफिसमें रजिस्ट्री भी है, फिर भी सरकार जब चाहे तब ले ले। कह दे कि सरकारको इसकी हमें जरूरत है। ऐसा कानून सरकार बनाना चाहे तो बना नहीं सकती क्या?

तो इस धन वैभवके प्रति लोगोंको अनेक प्रकारकी चिन्तायें बनी रहती हैं। यह धन वैभव शान्तिका कारण नहीं, बल्कि अशान्तिका कारण है। मानो लोकमें कोई इज्जत बढ़ा ली, प्रतिष्ठा बढ़ा ली तो उससे शान्ति है क्या? शान्तिका स्थान तो केवल एक सामान्यप्रतिभास, विकल्परहित ज्ञानका परिणमन है। यह काम कितना सुगम है, अपने हाथका काम है, अपने आधीन काम है। ज्ञान मेरा स्वरूप है, जानने वाला ज्ञान है, फिर कौनसी अड़चन है जो यह ज्ञानस्वरूपको जानकर ज्ञानमें मग्न हो जाय, इसमें बाधा डाले। अगर हम अपने स्वरूपको उसको ही सार समझ पाये तो इस बातको पानेमें देर नहीं लग सकती। अड़चन कुछ नहीं है इसमें। बाहरी पदार्थोंकी संप्राप्तिमें अड़चन हुआ करती है। अपने आपके पानेमें अड़चन खुद ही डालते हैं, दूसरा नहीं डालता।

http://sahjanandvarnishastra.org/

मुक्त जीवोंकी गतिकी अवक्रता और संसीरी जीवोंके वृत्तकी वक्रता—जिन्होंने आत्मा के ऐसे शुद्धस्वरूपको पा लिया और ऐसे सत्यस्वरूपमय हो गये उनकी गति टेढ़ी क्यों हो ? उनकी अवस्था टेढ़ी क्यों होगी, उनकी परिणति टेढ़ी क्यों होगी, उनका ज्ञान टेढ़ा क्यों होगा. और संसारी जीवोंकी सारी बातें टेढ़ी होंगी। ज्ञान करेंगे तो छल सहित, चलेंगे फिरेंगे तो टेढ़ा-टेढ़ा। कोई विचार करेंगे तो बस अनेक तर्क वितर्क लेकर टेढ़ा-मेढ़ा, सारी बातें टेढ़ी बनेंगी। जैसे कोई ऊँटसे कहता है—अरे ऊँट तेरी गर्दन टेढ़ी क्यों ? तो ऊँट बोला—अरे तुम गर्दनकी बात कहते, हमारा कौनसा अंग सीधा है सो तो बताओ ? क्या पेट, क्या पीठ, क्या गर्दन, क्या पैर, सभी अंग टेढ़े हैं। तो ऐसे ही संसारी जीवकी कौनसी बात सीधी है ? विचार इसके टेढ़े हैं। विषयसम्बंधी विचार बनता है, परपदार्थ संबंधी विचार बनाता है। तो जिनकी टेढ़ सारी मिट गई उनकी गति मोड़े रहित होती है। टेढ़ी गति नहीं होती। जो टेढ़ा चलता है वह टोटेमें रहता है और जो सीधा रहता है वह सम्पन्न हो जाता है। यह बात यहाँ देख लो— संसारी जीवोंकी क्या सम्पन्नता ? अरे अपने अनन्तज्ञान, अनन्त आनन्दकी प्रीति तजकर यहाँके पौद्गलिक ढेला पत्थरमें प्रीति करनेमें कोई विवेककी बात है क्या ? अनन्तनिधान तो छोड़ दिया और इन बाहरी टुकड़ोंके लिए ललचाने लगे तो इसमें इस आत्माका कुछ विवेक है क्या ? अरे वह तो मूर्खता है। बाहरी बातें तो पुण्य-पापके आधीन हैं, हमारे भावोंके आधीन नहीं। आज जैसा भाव करें सो परपदार्थमें परिणति बन जाय, ऐसा कुछ नियम तो नहीं है, जिसपर हमारा कुछ वश नहीं, उसके तो पीछे लगे फिर रहे और जिसमें हमारा वश है उसकी सुध भी नहीं लेते तो इसे क्या कहेंगे ? पागलपन, मगर जहाँ सभी पागल हों वहाँ कौन किसे पागल कहेगा ? पागल वही बता सकता जिसको ज्ञान है। ज्ञानी जीव, उनकी दृष्टि में ही पागल है बहिरात्मा, पर बहिरात्माओंकी दृष्टिमें बहिरात्मा कैसे पागल ? पागलकी दृष्टि में कोई पागल भी होता है क्या ? जहाँ सब पागल समुदाय हो वहाँका फिर जलबा देख लो—कोई किसीको पागल तो नहीं कह सकता।

तो संसारी जीव, मिथ्यादृष्टि जीव, अज्ञानी जीव, जिनको बाह्य पदार्थोंमें प्रीति है वे बाह्य पदार्थोंका हिसाब रखते हैं और उन्हें पागलपन नहीं प्रतीत होता। कैसा सही हिसाब रखते हैं। अच्छा तुम्हारे खेतकी रजिस्ट्री हो गई, हां हो गई, तुम्हारा ही है, और किसीका नहीं है। मकानकी रजिस्ट्री हो गई। आपने यह जायदाद खरीदी, इसको रजिस्ट्री हो गई ना ?···अभी तो नहीं हुई, तब तो भाई कच्चा काम है। रजिस्ट्री करा लो तो पक्का काम हो जायगा। तो जो अज्ञानी जन हैं उनकी दुनियामें ये सब बातें ठीक-ठीक समझी जाती हैं। मगर कितनी ही रजिस्ट्री करा लो, दो-चार जगह रजिस्ट्री होती हो एक-एक चीजकी तो रजिस्ट्री करा लो, फिर भी आपकी वह जायदाद रंच भी नहीं है, ऐसा सर्वज्ञदेवने बताया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ तो अज्ञानियोंकी समझमें आ रहा कि यह इसकी चीज है। अगर एक बार केवली भगवानके ज्ञानमें भी आ जाता कि यह मकान इस भाईका है तो यह बहुत बड़ी खुशीकी बात होती। फिर आपका मकान कभी आपसे हट ही न सकता था, न आप ही उस मकानसे हट सकते थे। भगवानमें ज्ञानमें रजिस्ट्री हो जाय तो वह पक्की रजिस्ट्री मानी जाय, और यहाँ की तहसीलमें या और कहीं रजिस्ट्री करा ली तो वह कुछ पक्की नहीं है, वह सब कच्ची है। परपदार्थ हैं, उनपर जबरदस्ती रजिस्ट्री करनेसे क्या वे अपने हो जायेंगे? भगवान नहीं जानते ऐसा कि यह इसका मकान है, क्योंकि है ही नहीं ऐसा। जो नहीं है वह कैसे जाना जायगा? जो पदार्थ है सो झलक रहा, पर यह इसका है यह बात ज्ञानमें नहीं आता। क्योंकि ऐसा है ही नहीं।

कर्मरहित पवित्र आत्माकी गतिकी सरलता—जिन्होंने "निजको निज परको पर जान" ऐसी स्थिति प्राप्त की थी और जिसके अभ्यासके बलसे सूक्ष्म सूक्ष्म भी रागादिक विकार इन सबको जिन्होंने नष्ट कर दिया उनके अब सीधापन प्रकट हो गया। कर्मदशामें इसका सीधापन बिगड़ा था, टेढ़ा था, दबा था, अब कर्मरहित होनेपर अब सीधा हो गया। तो भगवान निर्लेप होनेके कारण एकदम ऊर्ध्वगमन करते हैं। जैसे तूमीमें कीचड़ भरा हो, वह पानीमें डाल दिया जाय तो पानीमें नीचे बैठ जाती है, पर ज्यों-ज्यों वह कीचड़ घुलता जाता है त्यों-त्यों वह तूमी पानीके ऊपर आकर तैरने लगती है, ऐसे ही कर्मोंका कीचड़ जब तक जीवमें बसा है भावकर्मका कीचड़ जब तक जीवमें भरा है तब तक यह संसारसागरमें गोते खा रहा है, नीचे डूब रहा है, और जब सम्यग्ज्ञानके बलसे इसका यह कीचड़ मिट जायगा, ये विकार आदिक हट जायेंगे, शरीररहित, कर्मरहित हो जायगा तो यह जीव इस संसारके ऊपर तैरने लगता है मायने संसारसे पार हो जायगा। लोकके अन्तमें विराजमान होगा।

सिद्धक्षेत्रके ४५ लाख योजन प्रमाण होनेका हेतु—देखो भगवान, सिद्ध आत्मा कितनी जगहमें रहते हैं? ४५ लाख योजनकी जगहमें। ज्यादा जगहमें नहीं हैं वे। क्यों? ४५ लाख योजनकी जगहमें ही क्यों हैं वे लोकके अन्तमें कि मुक्त होने की जो जगह है वह नीचे ४५ लाख योजन है। एक लाख योजनका जम्बूद्वीप और दोनों तरफ दो-दो लाख योजनका लवण समुद्र, ये हो गए ५ लाख योजन और दूसरा द्वीप दोनों तरफ ४-४ लाख योजनका, इस तरह १३ लाख योजन हुए, और कालोद समुद्र दोनों तरफ ८-८ लाख योजनका, यों २६ लाख योजन हुए, उसके बाद तीसरा द्वीप है १६-१६ लाख योजनका दोनों तरफ। तो उस ३२ लाख योजनके आधेमें मनुष्य नहीं हैं। तो इस तरह २६ + १६ = ४५ लाख योजनकी जगह हुई, जिसमें सिद्धभगवान विराजे हैं। इस ढाई द्वी के अन्दर ही मुनिराज होते हैं और मुक्त होते हैं। जहाँसे मुक्त हुए वहींसे सीधा लोकके अन्तमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पहुंच जाते हैं। वहाँ भी इतना ही क्षेत्र है। तो देखो जैसे यह बात सत्य है कि लोकका कोई प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहाँ जीवने अनन्त बार जन्म-मरण नहीं किया। यह सारे लोककी बात कह रहे, ऐसे ही यह भी तथ्य है कि इस ढाई द्वीपके अन्दर ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहाँसे मुनिराज मोक्ष न पधारे हों। जहाँ आप बैठे हैं यह भी सिद्धक्षेत्र है। जहाँ आप पैर धर रहे वह भी सिद्धक्षेत्र है। जहाँ आपका गुशलखाना है वह भी सिद्धक्षेत्र है और जहाँ आपका संडास बना है वह स्थान भी सिद्धक्षेत्र है। कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहाँसे सिद्धभगवान न हुए हों। ढाई द्वीपका प्रत्येक प्रदेश यह धरती पूज्य है। अब बतलावो—पूज्य धरतीपर पैर न धरकर चलनेकी जो आदत रखता है बताओ उससे यह बात निभ सकेगी क्या? अरे ढाई द्वीपके अन्दरका प्रत्येक प्रदेश सिद्धक्षेत्र है। बस मोड़ेरहित गति है, इस कारण जहाँसे जो जीव मुक्त होता है उसके ही सीधमें जाकर लोकके अन्तमें विराजमान होता है।

लवणसमुद्र कालोदसमुद्र मेरुमध्य आदि जैसे विषम स्थानोंसे मुक्त होनेका विधान— अब कोई लोग सोच सकते हैं कि धरतीपरसे तो मोक्ष जाते हैं, मगर लवणसमुद्र, कालोदसमुद्र से कोई मोक्ष कैसे जा सकता है? क्या कोई ऐसा कर सकता है कि किसी नावमें बैठकर वहाँ पहुंचे और फिर वहाँसे तपश्चरण करके मोक्ष जाय? तो एक तो मुनियोंको ऐसा विकल्प ही नहीं होता, और न कोई ऐसा करता है। यह तो एक बेहूदी बात है। फिर कैसे समुद्रकी जगहसे मोक्ष होगा जीवका? तो कोई उपसर्ग करने वाला बैरी, मनुष्य देव कोई भी जिसमें सामर्थ्य है वह ध्यानस्थ मुनिको उठाकर समुद्रमें पटक दे, आखिर बैरी तो न जाने कहाँसे क्या कर दे, और हो जाय वहीं केवलज्ञान तो देखो वहाँसे मुक्त हो गए कि नहीं? अच्छा, एक बात और जाननेकी है कि जो मेरु पर्वत है, जहां पाण्डुशिलायें बनी हैं वे बिल्कुल मेरु पर्वत की चोटी पर नहीं बनी हैं, वे कुछ ऊपर जाकर बनी हैं। एकदम मेरु पर्वतके ऊपरी भागमें नहीं हैं। वहाँसे तो फिर कई योजनकी और शिखा गई है और मेरु पर्वतका जहां अन्त होता है उसके ऊपर केवल एक बालके अन्तर बराबर अन्तर रहता है। वहांसे प्रथम स्वर्गका इन्द्रक विमान शुरू हो जाता है। अब कोई यह पूछे कि जहां एक बालका ही अन्तर है उसपर तो कोई मुनिराज बैठ नहीं सकते और उसके कुछ और नीचे भी कोई मुनिराज ध्यान नहीं कर सकते तो उस जगहसे मोक्ष कैसे गए? तब तो वहाँ उतनी जगह खाली रहनी चाहिए ना सिद्ध लोकमें? सो इसका उत्तर यह है कि ऋद्धिधारी मुनि ऋद्धिके बलसे पर्वतके भीतरसे भी विहार कर जाते हैं। ऋद्धियां होती हैं ऐसी कि उन्हें वज्र भी नहीं छेद सकता। तो कोई ऋद्धिधारी मुनि उस पर्वतके बीचमें से विहार कर रहा और ठीक उस जगहपर पहुंचा जहां वह मेरुको शिखरकी चोटी है, उसके नीचेसे जाता है, जहांसे आप ऐसी संभावना करते है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहां कोई जा नहीं सकता, फिर मुक्ति कैसे हो वहांसे ? उसके नीचे पर्वतके बीचमें ऋद्धि मुनि विहार कर सकते हैं, सो विहार करते हुए ऋद्धिधारी मुनि हैं और वहीं ध्यान बन गया, आत्मा ही तो है। विहार करते-करते ध्यान बन गया, थम गया, रुक गया, मिनट भी तो नहीं लगता। ध्यान योग्य बन जाय और कहो वहींसे मुक्त हो जायें, तो उसके सीधमें ही तो ऊपर जायगा। तो जो सिद्धलोक है वहां खाली जगह नहीं मिलेगी ढाई द्वीपके प्रमाण याने ४५ लाख योजनका जो वह सिद्धक्षेत्र है उस क्षेत्रमें प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त सिद्ध विराजे हैं।

कर्ममुक्त प्रभुकी अविग्रहा गति और समृद्धि—क्यों हुई मुक्त जीवोंकी ऐसी अनुश्रेणी-गति ? एक तो जीवकी श्रेणीके अनुसार गति हुई जब कर्मसहित जीवके भी देह छोड़नेके बाद श्रेणीके अनुसार गति हो जाती है तो जिसके देह न रहा, केवल आत्मा ही आत्मा रह गया, उसकी गति श्रेणीके अनुसार होगी ही और मोड़ारहित होगी। तो जीवके मुक्तिकी गति मोड़ रहित है। इससे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती कि ४५ लाख योजन प्रमाण जो सिद्धक्षेत्र है उसके प्रत्येक प्रदेशपर अनन्तसिद्ध विराजे हैं। कैसे विराजे हैं ? जहाँ एक सिद्ध है वहाँ एक है कि अनेक ? एकमें एक है—यह भी सही है, एकमें अनेक है—यह भी सही बात है। स्वरूप-दृष्टिसे देखो तो एकमें एक है, एक सिद्धमें दूसरेका प्रवेश नहीं, और क्षेत्रकी दृष्टिसे देखें तो एक सिद्धभगवान जहाँ विराजे हैं वहाँ अनन्तसिद्ध विराजे हैं। तो यह सब इस ही आधारपर समझा गया।

जो यहाँ दो सूत्र बताये गए हैं कि जीवकी गति श्रेणीके अनुसार है और चूंकि मुक्त जीवके ऊर्ध्वगमन स्वभाव प्रकट हो गया है, इसलिए वह और श्रेणियोंमें तो जायगा नहीं, किन्तु जहाँसे मुक्त हुए हैं वहाँसे ही जो ऊर्ध्वकी ओर श्रेणी है उस श्रेणीसे उनकी गति बनेगी। और दूसरा सूत्र कहते हैं कि मुक्त जीवके विग्रहरहित गति है, उनके गमनमें मोड़ नहीं आया करता तो यह भी बात साफ हो गई कि मुक्त जीव मुक्त होकर यहाँ वहाँ नहीं भटकते, यहाँ वहाँ नहीं बिखरते, किन्तु ठीक मोड़ेरहित गति द्वारा लोकके अन्त तक पहुंच जाते हैं। और वहाँ अनन्तकाल तकके लिए अपने सीधे स्वभाव विकासमें निरन्तर परिणमन करते रहते हैं। अनन्तज्ञान, समस्त पदार्थोंका ज्ञान, और समस्त पदार्थोंका ज्ञान करने वाले निज आत्माका दर्शन, सो भी अनन्तदर्शन, और ऐसा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन बना ही रहे, उसमें कमी न आये, ऐसी उनके अनन्तशक्ति प्रकट है, और ऐसे अनन्तज्ञान, दर्शनके समय अनन्तआनन्द चल रहा है। ऐसे अनन्त चतुष्टयस्वरूप भगवान मोड़ेरहित गति होनेके कारण सिद्धक्षेत्रमें विराज-मान होते हैं।

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संसारी जीवोंकी विग्रहार्थ गतिकी विशेषता—संसारी जीवोंके ४ समयसे पहले तक विग्रहवती भी गति होती है। विग्रह मायने मोड़ा, याने मोड़ा लेकर भी गति होती है। जैसे कोई जीव जहाँसे मरा, उसके सीधमें जन्मस्थान नहीं है, दूसरी जगह है तो वह इस तरह जायगा कि जिसे मुड़ना पड़ेगा मुड़कर जायगा। तो संसारी जीवोंके मरणके बाद जो नया शरीर धारण करनेके लिए गति होती है वह मोड़े वाली भी हो सकती है, मगर कहीं सीधा उत्पन्न होना है तो मोड़ा लेनेकी जरूरत नहीं होती है। यह सूत्र क्यों कहा गया? इसका प्रसंग क्या था कि इससे पहले यह बताया गया कि मुक्त जीवके गति बिना मोड़ेकी होती है, क्योंकि जो मुनिराज तपश्चरण करते हैं जहाँ भी करते हों ढाई द्वीपके अन्दर तो जहाँ तपश्चरण कर रहे, जहाँ केवलज्ञान होकर ऐसा ध्यान बने कि अब मुक्त हो रहे तो जहाँसे मुक्त हो रहे ठीक उसके सीधमें ही लोकके अन्तमें विराजमान होंगे, इसलिए वहाँ मोड़ेकी जरूरत नहीं पड़ती। तो यह प्रश्न हुआ कि जैसे मुक्त जीवकी गतिमें मोड़ नहीं पड़ते, इसी तरहकी बात क्या संसारी जीवोंमें भी है? याने शरीर उत्पत्तिके बाद जो नया शरीर ग्रहण करनेके लिए जीव जायगा सो क्या वह सीधा ही चला जायगा या कुछ मुड़कर जाना पड़ेगा। ऐसी जिज्ञासा प्राकृतिक है। उसके समाधानमें यह सूत्र कहा गया है कि संसारी जीवकी विग्रह (मोड़ा) वाली भी गति होती है। जैसे कोई जीव इस चौकीके एक कोनेसे मरा और चौकीके इस तीसरे किनारेपर उत्पन्न होता है तो यह पूरब पश्चिम दक्षिण उत्तर तो नहीं बैठता सीधा तो वह जैसे इस किनारेसे सीधा उस दूसरे किनारे आया और उससे फिर इस तीसरे किनारे पर आया, जीव सीधा टेड़में न आ सका, क्योंकि आकाशके प्रदेशकी पंक्ति वैसी नहीं है। आकाश प्रदेशकी पंक्ति ऊपरसे नीचे, पूरबसे ठीक सीधमें पश्चिममें, दक्षिणसे ठीक सीधा उत्तर में यों श्रेणियाँ हैं। तो संसारी जीव कहाँ मरता है, कहाँ उत्पन्न होता है? इस हिसाबसे इसकी गति मोड़े वाली भी होती है और मोड़ारहित भी होती है।

प्रकृत सूत्रमें 'च' शब्दकी सार्थकता—इस सूत्रमें दो शब्दोंपर विचार विशेष करना है। एक तो 'च' शब्द दिया वह क्यों दिया—विग्रहवती च, न "च" लगाते तो और सीधा ही सूत्र बन जाता, 'च' के बिना तो क्या हर्ज था? एक तो शंका यों बनती है। दूसरी शंका यह बनेगी कि यहाँ कह रहे—'प्राक्चतुर्भ्यः' मायने चार समयसे पहले। तो प्राक्की जगह आ (आङ्) भी तो लिख सकते थे। आचतुर्भ्यः कई जगह लगा ना। ज्ञानके प्रकरणमें लगा आचतुर्भ्यः। ४ ज्ञान तक। तो प्राक्की जगह आ भी लगा देते, तीन व्यञ्जन कम हो जाते। क् कम हो जाता, प् र् व्यञ्जन भी कम हो जाता, ऐसा क्यों नहीं किया? इन दो बातोंका इस सूत्रमें विचार करना। तो पहले 'च' शब्दकी बात लीजिए। विग्रहगती च, यहाँ 'च' शब्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देनकी क्या मतलब ? यह कि विग्रहरहित भी गति होती है यह अर्थ आ जायगा। जिसे यों कहते हैं और विग्रह वाली गति होती है। तो उस औरके कहनेसे कुछ अन्यका भी बोध होता ना ? तो विग्रहरहित गति मोड़ारहित गतिका संग्रह करनेके लिए 'च' शब्द दिया है।

मोक्षशास्त्रके अर्थकी ज्ञातव्यता—देखो तत्त्वार्थसूत्रका इतना महान् आदर है कि बहुत से लोग रोज पाठ करते हैं, पाठ किए बिना भोजन नहीं करते। कोई अष्टमी चतुर्दशीको करते, कोई दशलक्षणमें करते। तो जिस तत्त्वार्थसूत्रके प्रति लोगोंका इतना महान् आदर है तो उसमें बात क्या लिखी है यह समझना हम आपका कर्तव्य है या नहीं ? या पाठ तो आदरसे कर रहे हैं, पर यह पता नहीं कि इसमें क्या लिखा ? तो यह तो ऐसा कूदना हुआ जैसे अन्य लोग कथामें कहते हैं कि जब राम रावणका युद्ध हुआ तो श्री रामकी बंदरसेना समुद्र लाँघ गई। ठीक है, मान लो लाँघ गई, पर उन बंदरोंको क्या यह पता पड़ा कि इस समुद्रमें क्या-क्या रत्न भरे हैं ? समुद्र लाँघ लेनेसे कहीं रत्नोंका पता तो नहीं पड़ता। ऐसे ही सूत्रजीका पहले अध्यायसे १०वें अध्याय तक कोई पाठ खूब कर ले, उसे लाँघ ले, पर इस सूत्रमें क्या रत्न भरे हैं, क्या विषय बना है, इसका बोध तो नहीं होता। कल्याणार्थी जीवके लिए आवश्यक जो ज्ञान चाहिए वह सब ज्ञान इस सूत्रजीमें भरा है। जीव कैसा होता है, कैसे मरता है, कैसे जाता है, कैसे जन्म लेता है, कैसे-कैसे हैं, क्यों दुःख भोगते हैं, कैसे दुःख मिटेगा आदि सारी बातोंका तो वर्णन है। तो कितना आवश्यक है इसका समझना, इतनेपर भी उसके समझनेका कोई भ ब न करे या यत्न न करे तो यह उसके लिए एक खेदकी बात होगी।

उपयोगके संक्षिप्त वर्णनमें बाद योगके प्रासंगिक वर्णनकी संगति—इस प्रसंगमें देखो क्या बतला रहे हैं कि जीवका लक्षण उपयोग तो पहले बताया ही था याने जीवकी पहिचान उपयोगसे होती है। जहाँ उपयोग हो उसे कहो कि यह जीव है। तो उपयोगका बहुत वर्णन चला। उपयोग बिना जीवको तो नहीं समझ सकते। अनुभव करके भी देखो—अगर कोई भींतको लाठी मार रहा तो उसे देखकर कोई यह नहीं कहता—अरे रे रे भाई इसे मत मारो, यों कोई दयाके स्वरसे नहीं बोलता और अगर कोई कुत्ता या गधा वगैराको मारे तो कहते—भाई इसे मत मारो। क्यों मारते हो ? तो इतनी जानकारी तो है लोगोंको कि जिसमें उपयोग है सो जीव है और जिसमें उपयोग नहीं सो जीव नहीं। उस उपयोगका बहुत वर्णन हुआ। अब यह योगका वर्णन चल रहा है कि जीवमें योग होता है जिससे जीवकी गति बनती है। एक जगहसे दूसरी जगह जीव पहुंच जाय तो इसमें योग काम दे रहा है। क्रियावती शक्ति भी कहा है। अगर क्रियावती शक्तिका भी प्रयोग करने लगें तो योग बिना तो न करेंगे। केवल एक सिद्धभगवानकी गति योग बिना है, पर संसारी जीवकी गति योग बिना नहीं बन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकती । तो उस योगके वर्णनमें यह बात बतला रहे हैं कि जब यह संसारी जीव मरण करता है, एक देह छोड़ता है तो दूसरा देह धारण करनेके लिए जो जाता है सो किस तरह जाता है ? मोड़े लेकर भी जाता और बिना मोड़ेके भी जाता । तो उसको कितना समय लगेगा ? एक शरीर छोड़नेके बाद दूसरा शरीर ग्रहण करनेके बीच समय कितना लगेगा ? ३ समय तो मोड़े तकके हुए, चौथे समयमें अवश्य शरीर पा लेगा और समय कितना बड़ा होता है ? एक सेकेण्डमें अनगिनते समय होते हैं । आंखकी पलकके एक बार जल्दी-जल्दी उठने गिरनेमें जितना समय लगता है उतने समयमें अनगिनते समय हो जाते हैं । उनमेंसे ३-४ समयकी बात बतला रहे तो यह तो न कुछ जैसी बात है । यों कहो कि तुरन्त उत्पन्न हो जाता है । तथ्य यह है ।

भावानुसार लाभ—भैया, जो-जो जिनवाणीमें बात बतायी है, वैज्ञानिकोंने खोज भी की है तो कुछ अंदाज कर सकते हैं, पर इसके विरुद्ध जो लोगोंने दूसरी-दूसरी बात कह डाली वह अपने-अपने स्वार्थसे । जैसे एक बात यह कही कि यह जीव मरनेके बाद १०-१२ दिन चक्कर लगाता है, तो इसका मतलब क्या है कि तुम इतने-इतने लोगोंको खिला-पिला दो तो [illegible] ठिकाने लग जायगा । यह स्वार्थी लोगोंने ही तो बात कही । कुछ लोग तो ऐसा भी कहते कि देखो सेठजी तो गुजर गए, अब उनके नामपर गायका दान करने दो, पिता जी को दूधका सुख मिल जायगा । जो मरकर दूसरी जगह पैदा हो गया उसके लिए पंडा लोग कहते कि देखो तुम चारपाई, बिस्तर, जूते, कपड़े, बर्तन आदि तमाम चीजोंका हमें दान कर दो, दान की हुई चीजें उनके पास पहुंच जायेंगी और वे आरामसे रहेंगे । ऐसी-ऐसी बातें भी स्वार्थी जनोंने कहीं । अरे सोचो तो सही कि मरनेके बाद उस मरने वालेके नामपर कितना ही कुछ दान कर दिया जाय, पर उससे उस मरने वालेको लाभ क्या ? हां लाभ उसे ही मिल जायगा जो दान करेगा । उसका कुछ पुण्य तो मिल जायगा । मान लो वह सेठ बड़ी कंजूस प्रकृतिका था । वह मरकर चला गया, कुछ दान न कर सका । उसके भाई अगर सोचें कि चलो पिताजीके नामपर कुछ दान कर दें तो पिताजीको पुण्यलाभ मिल जायगा, सो बात नहीं हो सकती । पुण्य तो उसको लग सकता जो दान करे, उस मरे हुए व्यक्तिके लिए उससे क्या लाभ ? सबका अपने-अपने भावोंसे ही बंध होता है । तो जहां यह बात है कि मरनेके बाद उसके प्रति दूसरा कोई भाव करे तो उसका कोई प्रभाव मरने वालेपर नहीं होता । यह जीव अपने भावोंके अनुसार बंध करता है और उस बंधके अनुसार, उदयके अनुसार यह गति पाता है । तो मरणके बाद दूसरा शरीर पानेके लिए गया तो चौथे समयमें तो वह शरीर-वर्गणाओंका आहार प्राप्त ही कर लेता है । चाहे कितना ही बड़ा मोड़ा लेना पड़ा हो ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चौथे समयमें संसारीकी अनाहारकताकी असंभवता— 'प्राक्चतुर्भ्यः' यह शब्द कहनेसे एक नियम बन गया कि चार समयसे पहले-पहले सब मोड़े निकल जाते हैं। चौथे समयमें आहारक बनता है और शरीर ग्रहण कर लेता है। अब कहाँ मरण करे, कहाँ पैदा हो तो तीन मोड़े लेगा ? इसके लिए थोड़ा एक नक्शेपरसे समझा जा सकता है और कागजके नक्शे पर भी बढ़िया नहीं समझा जा सकता या तो काठका नक्शा बना हो या ७ आदमी एकसे कदके पीठके पीछे मुख करके लाइनसे खड़े हो जायें और कमरपर हाथ रख लें और पैर पसार लें तो वह लोकका बहुत बढ़िया नक्शा बन जाता है, क्योंकि लोकके पीछे ७ राजू हैं और सामने नीचे ७ राजू, बीचमें एक राजू, टेहुनीपर ५ और अन्तमें एक राजू, सो वह नक्शा ७ बालकोंके आधारपर बहुत बढ़िया समझाया जा सकता है। वहाँ आप यह जानेंगे कि इस क्षेत्र से मरकर इस क्षेत्रमें पैदा हुआ तो तीन मोड़े लिए बिना जीव वहाँ नहीं पहुंच सकता। उसे बोलते हैं निष्कुट क्षेत्र। तो यह जीव इस तरह मरणके बाद नवीन शरीर धारण करनेके लिए पहुंच जाता है।

प्रभुकी अपनी व्यक्तिगत कुलीला—यह जो चर्चा चल रही है सो थोड़ा यह समझें कि हमने अनन्त मरण किए और अनन्त जन्म पाये तो ऐसी हालत विग्रहगतिमें हुई है, तो यह कोई प्रशंसाकी बात नहीं चल रही है। यह तो एक कलंककी बात बतायी जा रही है। कलंक है सो बताया जा रहा है। जीव आत्मज्ञान बिना, आत्माके रमण बिना इस संसारमें परिभ्रमण करता है, जन्म-मरण लेता है तो मरनेके बाद जन्म लेनेकी उसकी विधि, गति इस प्रकार है। यह जीव तो अमूर्त है, पर कर्मबन्धनके वश होनेसे इसको उपचारसे मूर्तिक कहते हैं और कर्म और तैजस ये तो मूर्तिक हैं ही, मगर ये सब इतने सूक्ष्म हैं कि जब जीव शरीर छोड़कर जाता है तो रास्तेमें पहाड़ आये, वज्र आये, पर उनसे जरा भी अटकना नहीं है, जरा भी कुछ आघात नहीं होता। बिना आघातके एकदम तुरन्त ही दूसरे पार निकल जाता है। अगर कोई ऐसा काँचका मकान बना दिया जाय कि जिसमें हवाका बिल्कुल प्रवेश न हो सके और उसके अन्दर किसी मरणहार जीवको लिटा दिया जाय तो उस काँचके मकानसे जीव मरकर बाहर निकल जायगा, वह काँचसे न भिड़ेगा, न काँच उससे फूटेगा। कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं कि किसीने ऐसा प्रयोग किया तो प्राण निकलते समय कांच चिटक गया, मगर ऐसा हुआ भी हो तो भी यह समझो कि उस जीवके आघातसे कांच नहीं चिटका, कुछ हवा ही ऐसी बन गई हो, लग गई हो कि जिससे कांच चिटक जाय तो वह बात और है। यह जीव मरकर तो नर्म, कठोर किसी भी चीजपर आघात नहीं पहुंचा सकता, क्योंकि वह ऐसा ही सूक्ष्म शरीर है तैजस और कार्माण कि उसके द्वारा किसी भी पदार्थको आघात नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पहुंचता ।

सूत्रमें 'आचतुर्भ्यः' कहकर लाघव न बनाकर 'प्राक्चतुर्भ्यः' कहनेका प्रयोजन—अब एक बात जो पहले कही थी कि 'प्राक्चतुर्भ्यः' इसके बजाय 'आचतुर्भ्यः' कह दिया जाय तो क्या हानि है ? देखिये—सूत्ररचना बहुत कुशल व्यक्ति कर पाते हैं, इसी तरह पद्यरचना भी। एक भी शब्द कम ज्यादा नहीं होता ऐसी सूत्ररचना होती है । एक-एक शब्दके लाघव होनेसे ये सूत्रकार बड़ा उल्लास मानते हैं । जैसे गृहस्थजन घरमें पुत्रोत्पत्तिमें समयमें उल्लास मानते हैं या अन्य किन्हीं समारोहोंमें उल्लास मानते हैं ऐसे ही साहित्यरचना करने वाले लोग ठीक ठीक रचना हो जाय तो बड़ा उल्लास मानते हैं । सूत्ररचनामें तो इसका बहुत ध्यान रखना पड़ता है कि एक भी शब्द कम या ज्यादा न हो । तो शंकाकार तब ही तो कह रहा है कि प्राक्—इसमें कितने अक्षर आये ? प् र् आ क्—ये चार अक्षर आये । स्वर जरूर एक है, मगर आ कहनेमे तो बस एक स्वर ही स्वर आया । व्यंजन सब दूर हो गए तो लाघव ही तो हुआ । तब आचतुर्भ्यः बोलना चाहिए । आचतुर्भ्यः का भी यह ही अर्थ होता है—चार समय से पहले और प्राक्चतुर्भ्यः का भी यही अर्थ होता है कि चार समयसे पहले । समाधान इसका यह है कि आ (आङ्) के दो अर्थ होते हैं— १–पहले २–और तक । ४ से पहले याने मर्यादा और चार तक अभिविधि दोनों ही अर्थ होते हैं । इसलिए समझनेमें गौरव न हो अतः प्राक् शब्द दिया है । इसपर यह कहा जा सकता कि सूत्र तो बड़े-बड़े बुद्धिमानोंको समझानेके लिए हुआ करते हैं । श्रोता कोई हल्के थोड़े ही होते हैं, समझदार होते हैं । वे बड़े-बड़े सिद्धान्तोंके जानकार होते हैं—अर्थ भी लगा लेंगे कि आचतुर्भ्यः का अर्थ यहाँ मर्यादा है याने चारसे पहले-पहले समय तक यह जीव विग्रहगतिमें रहता है । उत्तर इसका यह है कि जब आ (आङ्) के दो अर्थ हैं तो समझनेमें कुछ अधिक समय लगेगा । तो यहाँकी कसर वहाँ निकाले बिना सीधा प्राक् शब्द कह दिया ताकि किसीको संदेह ही न हो । तब अर्थ यह हुआ कि मरनेके बाद दूसरा शरीर धारण करनेके लिये दूसरे भवमें जो गमन करता है तो ऐसे स्थान में पैदा हो कि जहाँ सीधा गमन करके एक मोड़ा लेकर पहुंचे, दो मोड़े लेकर पहुंचे । अधिक से अधिक तीन मोड़े लेकर पहुंचता है, सो एक समय और अधिक लगा, चार समय लगता है शरीर लेनेमें, मगर विग्रहगतिमें तीन समय अनाहारक रहता है ।

अविग्रहा व विग्रहवती गतिका उदाहरणपूर्वक स्पष्टीकरण—देखिये—मोड़ेकी बात दृष्टान्तसे समझिये—बिना मोड़ेकी गति तो ऐसी होती जैसे कि बाणकी गति । बाण सीधा जाता है और लक्ष्यमें जाकर चुभ जाता है । तो जैसे बाण छोड़नेमें कोई मोड़ा नहीं होता, बाण बिल्कुल सीधा जाता है, ऐसे ही विग्रहरहित गति बिल्कुल सीधी है । यहाँ मरा सीधे और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसके नीचे या ऊपर, सीधमें अगल-बगल पैदा होना है तो एक समयमें ही तुरन्त सीधा पहुंच जायगा। और जहाँ एक मोड़ लेकर जाना पड़े तो जैसे पूरबमें मरा और ठीक कुछ बगलमें पैदा होना है, पश्चिममें हो चाहे दक्षिणमें हो तो एक समय सीधमें गया और दूसरे समय मोड़ा लेकर गया तो एक मोड़े वाली गति ऐसी होती है जैसे हाथसे कोई ढेला फेंका जाय तो उस फेंके हुए ढेलेमें कितने मोड़े आयेंगे ? एक मोड़ जहाँ तक वेग है, सो सीधा गया और वेग न रहा तो नीचे गिर गया, इसे बोलते हैं पाणिमुक्त, हाथसे कोई चीज फेंको तो जैसे उस चीज में एक मोड़ा आयगा, फेंका सो सीधा गया, फिर गिरा तो एक मोड़ा लेकर नीचे आ गया, ऐसे ही एक मोड़े वाली गतिका नाम है पाणिमुक्त और जिसमें दो मोड़े लग जायें तब जीव उस जन्मस्थानपर पहुंचे तो ऐसी गतिको कहते हैं लांगलिका। लांगलिका बंदरकी पूँछको बोलते हैं। जैसे लंगूर (काला बंदर) की पूंछ बहुत बड़ी होती है। वे पूँछ उठाकर भागते हैं। उनकी पूंछ इतनी बड़ी होती है कि वह घूमकर पीठपर आ जाती है। तो बताओ उस पूंछमें कितने मोड़े पैदा हो जाते हैं ? दो मोड़े। और तीन मोड़े वाली गतिका नाम है गोमूत्रिका गति। जैसे गाय या बैल जब चलते हुएमें मूत्र करते हैं तो उनके मूत्रकी शक्ल कैसी होती है ? कई मोड़े होते हैं। तो इसी प्रकार तीन मोड़े वाली गति भी होती है। ऐसा यह गतियों से गमन करके जीव जन्मस्थानपर पहुंचते हैं।

मरण करते रहनेका प्रोग्राम स्थगित करनेका अनुरोध—देखो भैया ! मरण विग्रह-गति जन्म यह सब तो नटखट है ना सारा। मोड़े लेकर जन्मस्थानपर पहुंचे और जितनी जिन्दगी है उस जिन्दगीमें जो संयोग हुआ उसमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि की, आकुलतापूर्वक जीवन बिताया, फिर मरणका समय आ गया, मर गया, फिर वही पाटी शुरू हो गई। इस तरह यह जीव जरासी भूलमें बड़ी विपत्तियोंको पा लेता है। भूल कितनीसी कि जो सहजस्वरूप है उसे न मानकर जो शरीर मिला उसे मान लिया कि यह मैं हूं, तो देखो यह आत्मा तो परमेश्वर है ना। तो यह परमेश्वर शरीरको मान ले कि 'यह मैं हूं' तो उसकी बात तो खूब रखनी चाहिए ना सो खूब शरीर मिलते हैं उसे। जो मानता है कि यह शरीर मैं हूं तो उसे मनमाने शरीर मिलते हैं, क्योंकि आखिर परमेश्वर ही तो है। अगर शरीर माँगता है तो उसे खूब डटकर शरीर मिलते रहेंगे, रहेंगे, याने तो शरीरमें आत्मबुद्धि करता है उसे शरीर मिलते हैं याने जन्म होता है, जन्म हुआ तो मरण होता है। तो जन्म-मरणमें बहुत संकट हैं। अगर ये संकट पसंद नहीं है तो ऐसा उपाय बनाओ कि जन्म न होवे, फिर शरीर न मिले। चाहे कितने ही समयमें हम इस प्रोग्राममें सफलता पायें, मगर रचो तो अभीसे प्रोग्राम। वह क्या प्रोग्राम ? बिल्कुल सीधी बात है। जो शरीरको माने कि यह मैं हूं उसको शरीर मिलते

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहेंगे। जो शरीरको मैं न माने और शरीरसे भिन्न सहज ज्ञानानन्दस्वरूप अपने स्वभावको माने कि यह मैं हूं उसको शरीर मिलना बंद हो जायगा। अब अपना नफा नुक्सान सोच लो—शरीर मिलना बन्द हो जाय उसमें नुक्सान है या शरीर मिलते रहें उसमें नुक्सान है ? यह अपनी-अपनी बात सोच लो—हो जायगा वही काम जो आप चाहेंगे। पर यह अपना-अपना नफा नुक्सान सोच लो कि शरीर मिलते रहनेमें इसको ,मुनाफा है या शरीर न मिलने में मुनाफा है ? जरा बड़े विवेक और सच्चाईके साथ सोचा जाय। इस समय चूंकि धर्मकी जगह बैठे हैं सो मुखसे तो यह ही कह बैठेंगे कि शरीर न मिलें, इसमें लाभ है। मगर थोड़ी ही देरमें अगर चूहा ऊपरसे निकल जाय तब फिर उसका उत्तर वह खुद दे देगा कि हम ठीक कह रहे थे कि नहीं ? शरीर मिलेंगे तो सारी दिक्कतें सहनी पड़ेंगी। यह राग मोह विषय कषायके कारण जो इतनी बड़ी विपत्ति आ रही है वह शरीरके आधारपर ही तो है और फिर मरणमें तो लोग बहुत घबड़ाते हैं, बड़े दुःखी होते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे कोई सुनार जंत्री यंत्रसे तार खींच रहा हो। जैसे जंत्री यंत्रसे तारका निकलना कुछ इस ढंगसे लगता है कि तारके निकलनेमें बड़ा कष्ट होता है, ऐसे ही इस शरीरसे जीवको निकलनेमें कष्ट होता है। तो शरीरको अपनाकर मरणका प्रोग्राम मत बनाओ।

जन्म लेते रहनेका प्रोग्राम स्थगित करनेका अनुरोध—जो तकलीफ मरण समयमें होती है उससे कम तकलीफ जन्म समयमें नहीं होती है। जन्म उसे मान लो जिस समय जीव पेटसे बाहर निकलता है। तो उस समय वह कैसा भिचकर निकलता है, कितनी तकलीफ पाता है, उसका दुःख तो वही समझता होगा। देखिये—उत्पन्न होते समय प्रत्येक बच्चा रोता है, और कोई बच्चा अगर न रोये तो लोग बड़े हैरान होते कि बात क्या है, यह रोता क्यों नहीं ? इसमें कुछ कमी है क्या ? पता नहीं यह जिन्दा भी रहेगा कि नहीं ? तो जैसा दुःख मरणके समयमें होता है वैसा ही दुःख जन्मके समयमें भी होता है। जब वह बच्चा रोता है तो उसकी आवाज किस तरहकी आती है ? कहाँ कहाँ...., तो कविजन कहते हैं कि मानो वह बच्चा सोचता है कि अरे मैं यहाँ कहाँ आ गया ? उसे वह नई जगह मालूम होती है, इसलिए कहता है—कहाँ-कहाँ। उसके लिए वर्तमान दिमागमें बिल्कुल नई चीज है। पूर्व जन्मसे जो-जो कुछ उसने संग समागम पाया वह सब पूरा नदारत है, कुछ सम्बंध नहीं है उसका, पर जो संस्कार था, रागद्वेष मोहका जो संस्कार साथ है उस संस्कारके अनुसार उसपर सब बातें बीतेंगी। तो रहना तो यहाँ कुछ नहीं है, पर भाव बिगाड़कर जो संस्कार पहले बना लिया यह परेशान करेगा आगे। न मकान, महल साथ जायेंगे, न स्त्री-पुत्रादिक कुटुम्बी जन, न धन वैभव कोई भी साथ निभाने वाला नहीं है, पर बिना कामका जो एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संस्कार बना डाला रागद्वेष मोह आदिका, किसी तरहका, बस वह संस्कार साथ जायगा, और इस संस्कारके अनुसार उसको साता असाता, सुख दुःख ये सब बातें उसपर बीतेंगी। इसलिए अपनी बड़ी जिम्मेदारी समझें और धर्मके लिए समय दें, ज्ञानके लिए उत्साह बनावें तो आत्महित होगा, अन्यथा जैसे अनन्त जन्म मरण किये, ऐसे ही आगे भी जन्म मरण इसे करना पड़ेगा। अतः जन्म लेते रहनेका प्रोग्राम स्थगित करो, उसका उपाय है अपनेको शरीर से विविक्त मानो।

एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥

मोड़रहित गतिकी एकसमयिकिता—विग्रहरहित गति एक समय वाली होती है, यानें जीव और पुद्गलके गमनमें यदि कोई मोड़ नहीं आता तो ऐसी मोड़रहित गतिसे इष्ट स्थान पर पहुंचनेके लिए केवल एक समय ही लगता है। पुद्गल परमाणु एक समयमें लोकके अन्त तक पहुंच जाता है। चाहे वह मध्य लोकसे चला, चाहे वह अधोलोकसे चला हो अधः स्थान से चला हो तो १४ राजू एक समयमें पार कर देगा और मध्य लोकसे चला तो ७ राजू एक समयमें पार कर देगा। यह तो है पुद्गलकी बात, और जीवकी भी यह ही बात है, क्योंकि विग्रहरहित गति मुक्त जीवके भी होती है, सो वह तो मध्यलोकसे ही चलेगा, और जगहसे नहीं, और ऋजुगतिसे कोई संसारी चले तो कहींसे चले, नीचेसे चले, ऊपर पहुंचना है तो वह एक समयमें पहुँच जायगा। जैसे १० कोस जगह कोई मनुष्य चार घंटेमें पहुंचता है, कोई एक घंटेमें पहुंच ले, नाप तो उतना ही रहा, तो ऐसे ही सारा लोक १४ राजू एक समयमें परमाणु गमन करता और ऋजुगति वाला संसारी गमन कर लेता है, क्यों एक समयमें पहुंचते? तो यह हल्केपनका प्रभाव है, अकेलेपनका प्रभाव है। स्थूल शरीरसे छूटा तो उसमें लघुता आयी। सूक्ष्म शरीर तो लघु होता ही है। तो वहाँ ही एक समयमें कहीं पहुंच जाता है। स्कंध छोटा परमाणु केवल एक परमाणु अकेला उसमें इतनी लघुता है, बल्कि उसमें लघु, गुरु स्पर्श भी माना ही नहीं गया, ऐसा वह पुद्गल परमाणु एक समयमें १४ राजू पार कर देता है।

विग्रहवती गतिमें समय अधिक लगनेका कारण—इस स्थूल शरीरसे छूटे हुए संसारी जीवको यदि मोड़ लेना पड़ता है तो वहाँ एकसमय अधिक लग जाता है। एक जो स्वस्तिक चिह्न (卐) होता है इससे कई तत्त्व जाने जा सकते हैं। जो जैसा तत्त्व ग्रहण करे। दो लाइनोंसे साँथिया बनता है। यद्यपि उसमें मोड़ है, मगर कागज परसे कलम नहीं उठाये और साँथिया बनाये तो एक बारमें एक लाइन बन गयी और दूसरी बारमें दूसरी लाइन बन गई। तो यहाँ साँथियामें मुख्य दो लाइन है। साँथियाकी रचना यह बतलाता है जीव और

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुद्गलके प्रतीक । और जहाँ साँथिया बना वह क्षेत्र है आकाश । अब उस लाइनका जो मोड़ है तो लाइन खिंची, वह है धर्मास्तिकायका प्रतीक । धर्मास्तिकाय है उसका निमित्त पाकर रेखा चली और जहाँ मोड़ आया तो वह मोड है अधर्मास्तिकायका प्रतीक । मोड़ आये तो चलते हुए जीव पुद्गलको रुकना ही पड़े, रुके बिना मुड़ना नहीं बनता । अपने एक हाथको कोई चार अंगुल ही उठाकर फिर दूसरी ओर ले जावो, उसके फेंकनेमें अधिक समय लगेगा और यदि हाथको दो-तीन हाथ दूर तक उठा डालें तो उसमें अधिक समय नहीं लगेगा, क्योंकि उसमें हाथको मोड़ा नहीं । मोड़ा लेनेमें एक क्षणकी अटक आयगी । तो साँथियामें जो मोड़ लगा है वह एक अटक है और वह अधर्मास्तिकायका प्रतीक है । ठहरे बिना मोड़ नहीं हो सकता । और फिर वह जो रेखा बनी वह सब बिन्दुओंका समुदाय है । एक तरहसे देखो वह भले ही जल्दी-जल्दी बनाया, मगर हर क्षण बिन्दु-बिन्दु बनती हुई जो बिन्दुओंकी धारा है सो ही तो रेखा कहलाती है । तो जैसे उस रेखामें सर्वत्र बिन्दु-बिन्दु नजर आते वह हैं कालद्रव्यका प्रतीक । जैसे कहते कि लोकके प्रत्येक प्रदेशपर एक-एक कालाणु है । यह स्वास्तिक चिह्न षट्द्रव्योंका समूह लोक है, इस बातका ज्ञान करा रहा है । वहाँ हम क्या देखें कि जहाँ मोड़ नहीं है वहाँ बहुत कम समय लगता और मोड़ होनेपर एक क्षण ठहर जाता, तो ऐसे व्याघात रहित जीव और पुद्गलकी गति एकसमयमें होती है । जहाँ संसारी जीवोंको एक मोड़ा लेकर पैदा होने जाना पड़ता है वहाँ एकसमय ज्यादा लगता है । जैसे पुद्गल स्कंध को मोड़ा लेकर जाना पड़ता है उसको समय अधिक लगता । इस प्रकार विग्रहरहित गति एकसमय वाली होती है ।

सूत्रोक्त शब्दोंका अर्थ—अब जरा शब्दोंपर ध्यान दो—सूत्रमें क्या बताया ? एकसमया अविग्रहा, उसमें एकसमयाविग्रहा संधि बनी । एकसमया अविग्रहा—ये दो पद दिये हैं उन शब्दोंके अनुसार अर्थ क्या बना ? अविग्रहा एक समयिकी है । अब अविग्रहा विशेषण है, विग्रहरहित, क्या चीज ? तो चूंकि गतिका प्रकरण है । बहुत सूत्रोंसे गतिकी अनुवृत्ति चली आ रही है, तो अर्थ हुआ विग्रहरहित गति । विग्रहरहित गति एकसमय वाली होती है । यहाँ दोनों शब्द स्त्रीलिंग दिए गए है, क्योंकि गतिका प्रकरण है । जिसका व्याघात नहीं है ऐसी जीव पुद्गलकी गति एकसमयको लोकपर्यन्त तक हो जाती है ।

आत्माको एक व सर्वव्यापी बताकर क्रियाका अभाव व गतिका अभाव सिद्ध करने की एक आरेका—अब यहाँ एक आशंका उत्पन्न होती है—कोई दार्शनिक कहते हैं कि आत्मा तो एक है और सर्वव्यापी है । जो सर्वव्यापी है उसमें क्रिया ही सम्भव नहीं, क्योंकि सारे लोकमें फैला । फैला है एक आत्मा । अब वह हिले-डुले कहाँ ? अरे गगरीमें आधा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पानी हो तो वह पानी छलकेगा, अगल-बगल फैलेगा, अब गगरीमें पूरा पानी भरा है तो उसमें हिलने डुलनेकी कहाँ जगह है ? ऐसे ही आत्मा सर्वव्यापी है, एक है, इसलिए उसमें क्रिया नहीं हो सकती। और जब क्रिया ही नहीं है आत्मामें तो यह सारा वर्णन जो बहुत पहलेसे करते आये हैं, यों गति होती है आदि यह सब व्यर्थका प्रताप है। जब आत्मामें क्रिया ही नहीं है, गति नहीं हो सकती, फिर उस गतिकी बात करना यह कहाँ तक युक्त है ?

अनन्त आत्माओंकी सिद्धि करते हुए उक्त आरेकाका समाधान—समाधान उक्त शंकाको यह है कि आत्मा सर्वगत नहीं है। देखो पहले तो यह निर्णय करो कि आत्मा कितने हैं ? आत्मा एक नहीं है, आत्मा अनेक हैं, अनन्त हैं। जो दार्शनिक आत्माको एक मान रहे हैं वे जरा विचार करें कि यदि आत्मा एक होता तो एक वस्तुकी पहिचान यह है कि जो परिणमन हो वह उस एकमें पूरेमें होगा, आधेमें न होगा। किसी हिस्सेमें न होगा। एककी पहिचान है यह। खूब ध्यानसे सुनो तो बात ठीक-ठीक समझमें आ जायगी। एक किसे कहते हैं ? कोई चीज एक है तो एकके मायने क्या कि जो भी परिणमन हुआ, अवस्था बनी, दशा बनी, वह उस समस्त एकमें हो, पूरेमें हो तो वह एक है, मगर उसके किसी भागमें हो अवस्था परिणति तो वह एक नहीं है, वह अनेक है। जैसे चौकी है, अगर एक खूंट जल रही है तो सारी चौकी तो नहीं जल रही, कुछ ही हिस्सा जल रहा, तो जब एक जलनेकी दशामें सारी चौकी नहीं जल रही तो मालूम होता है कि यह चौकी वास्तवमें एक नहीं है, किन्तु यह तो अनन्त परमाणुओंका पिण्ड है, एक पदार्थ नहीं है चौकी। अनन्त पदार्थोंका पिण्ड है चौकी। तब ही तो जो भाग जल रहा सो हो जल रहा, बाकी पदार्थ नहीं जल रहा। तो एक वस्तु वह होती है कि जिसका परिणमन उस एकमें पूरेमें हो, एक साथ। अब इस कुञ्जीसे जरा देखो कि अगर संसारमें आत्मा एक होता तो एक भी जीवको सुख होता तो सारे जीवों को एक साथ सुखी हो जाना चाहिए था, क्योंकि जीव एक माना है। उस जीवके कुछ हिस्से में सुख है, कुछमें दुःख है ऐसा न होना चाहिए, मगर हो रहा है यों। हम किसी वजहसे सुखी हो रहे तो दूसरा दुःखी हो रहा, दूसरा सुखी हो रहा तो हम सुखी हो रहे। और कितने विभिन्न विचार हैं जीवोंके। एक जीवके विचार दूसरेसे नहीं मिलते, तो विचार भिन्न-भिन्न, विकार भिन्न-भिन्न। कितने ढंगमें पाये जाते हैं ? जैसे मनुष्योंकी शक्ल कितनी भिन्न-भिन्न पायी जाती ? चिड़ियोंमें तो पहिचान नहीं कर सकते कि यह चिड़िया दूसरी है, वह दूसरी है, एकसी शक्ल मिलेगी। तो यद्यपि मनुष्योंकी भी शक्ल एकसी ही दिख रही है, सबके नाक है, सबके मुख है, सबके कान हैं, सबके आँख हैं। दोनों आँखोंके बीचमें से ही सबके नाक निकली, मुखके ऊपर एक नाक है, सबके ऐसा ही हो रहा, मगर आप देखो, किसीकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्ल किसी दूसरे मनुष्यसे मिलती है क्या ? मैटर उतना ही है। एक नाकने ही बहुत भेद डाल दिया। मनुष्योंकी पहिचान जल्दी नाकसे होती है और पहिचान नाकसे होती है। इसलिए लोग शानका भी नाम नाक रखने लगे। कहते हैं ना—बस इसने तो अपनी नाक रख ली। कोई इज्जत बचा ली या शान रख ली। तो एक मनुष्यकी शक्ल दूसरेसे नहीं मिलती-जुलती। पशुओंमें तो एक जैसी शक्ल मिल जायगी, यद्यपि भेद वहाँ भी है, पर एक तरहकी चिड़ियाँ हों तो वहां भेद न मिलेगा। वैसे नाम सबका चिड़िया है, पर वहाँ भी फर्क है, इससे भी ज्यादा फर्क आत्माकी परिणतियोंमें नजर आयगा। किसीका किसी ढंगका राग, किसीका किसी डिगीका राग, उनकी जाति अलग, उनके विचार अलग। तो अगर एक आत्मा होता जगतमें तो बस जो होता सो ही होता एक सबमें। यह विभिन्नता क्यों आयी ? यह विभिन्नता यह जाहिर करती है कि आत्मा एक नहीं है, किन्तु अनेक है।

सभी आत्माओंकी सर्वव्यापकता न होनेसे क्रिया व गतिकी संभवता—अच्छा अनेक सही आत्मा, तिसपर भी दार्शनिक यदि यह कहें कि आत्मा चलो अनेक रहने दो, मगर वे सभीके सभी व्यापक हैं, पूरे लोकमें फैले हुए हैं। तो उनको गड़बड़ करनेका, क्रिया करनेका, हलन-चलनका कहाँ अवसर रहा सो इसपर भी जरा विचार करो। आत्मा अनेक हैं, इतना तो अब तक मान लिया जाय, क्योंकि परिणमन सबमें जुदे-जुदे पाये जा रहे हैं, और जुदे-जुदे परिणमन इस बातको सिद्ध करते हैं कि जितने मनुष्य हैं उतने ही ये पदार्थ हैं। तो यों अनेक आत्मा हो गए। अब सभी आत्मा सर्वव्यापक माने जायेंगे, तो यह बात यों नहीं घटित होती कि देखो अपने-अपने अनुभवसे विचार करो। मैं आत्मा कितना हूं ? जितनेमें परिणमन होता उतना ही तो हूं मैं। जितनेमें सुख-दुःख, कषाय, शान्ति आदिका अनुभव होता उतना ही तो हूं मैं। अपने-अपने अनुभवसे अपनी-अपनी बात सोचो—अब आप ही देख लो, जब कभी आपको सुखका अनुभव होता है तो कितने क्षेत्रमें होता है ? देहप्रमाण क्षेत्रमें होता है। जितना यह देह मिला है उतनेमें मेरेको सुखका अनुभव, दुःखका अनुभव, विचारका अनुभव, शान्ति, कषाय, क्रोध, मान, मान, माया, लोभादिकके जो भी परिणमन चलते हैं वे सब परिणमन इस देहप्रमाण आत्मप्रदेशमें चलते हैं। तो इससे यह अनुभव बतलाता है कि मैं देह प्रमाण हूं। और जैसा मैं देहप्रमाण हूं वैसे जगतके ये सब जीव अपने-अपने पाये हुए देहके प्रमाण हैं। और इनमेंसे कोई भगवान बन गया, मुक्त हो गया, सिद्ध हो गया, तो जिस देहसे सिद्ध हुआ उस देहके प्रमाण वह आत्मा है।

मुक्त आत्माओंकी चरमदेहप्रमाणता—कोई शंका कर सकता है कि जब देहसे आत्मा अलग हो गया, मुक्त सिद्धभगवान बन गया तो वह आत्मा तो सारे लोकमें फैल जाना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिए अथवा कोई यह कहता है कि जब देहसे आत्मा निकल गया, मुक्त हो गया हमेशाके लिए तो वह तो एक अणुप्रमाण रह जाना चाहिए। क्यों फैला फैला फिरे ? किन्तु एक बात बतलावो — देखिये जो बात होती है याने कोई नई तरहकी बात बने तो उसमें कोई निमित्त होता है, देह प्रमाणमें आत्मा था जिससे कि वह मुक्त हुआ है तो उस देहप्रमाणके अतिरिक्त अन्य कोई आकार बने आत्माका, सारे लोकमें फैले—चाहे ऐसा समझो, चाहे अणुप्रमाण रह जाय, ऐसा मान लो। अगर किसी भी प्रकारका अन्य आकार बदलता है तो अन्य आकार बननेका कारण क्या है ? वह कारण बतलावो। अगर वह कारण ठीक जम जाय, युक्तिसिद्ध हो जाय तो मान लो कि सारे लोकमें व्याप जावे या अणु प्रमाण हो जावो। परन्तु अन्य आकार होनेका कोई कारण नहीं। अच्छा तो यह शंकाकार यदि पूछे कि फिर संसार-अवस्था में जो अनेक आकार बदलते रहे जीवके, चींटीके शरीरमें गया तो चींटीके शरीर प्रमाण रहा, और हाथीके शरीरमें गया तो हाथीके प्रमाण रहा, तो यह जो आकार बदलता रहा उसका कारण क्या ? उसका कारण तथाविध कर्मोंका उदय है। अब मुक्त होनेपर वे कर्म वहाँ रहे नहीं, तो उस आकारसे न बढ़ सकता है, न घट सकता है। जिस देहसे मुक्त हुआ है सिद्ध भगवानका आकार उस आकारमें ही रहता है।

अनन्त व देहप्रमाण होनेसे जीवमें गति, क्रिया व योगकी शक्यता—बात यहाँ यह कह रहे हैं कि आत्मा अनन्त है और वह सर्वव्यापक नहीं है, किन्तु देहप्रमाण आकारमें रहने वाला है, कभी-कभी कोई स्थिति होती है जिसका नाम है समुद्घात, कि यह आत्मा देहसे भी बड़ा बन जाता है, मगर वह एक परिस्थिति है। जैसे किसी मनुष्यको क्रोध तीव्र हुआ तो अब वह उस तीव्र क्रोधमें ऐसा तिलमिला जाता है कि उसके आत्मप्रदेश शरीरसे भी दो-तीन गुने दूर तक फैल जाते हैं। ज्यादासे ज्यादा शरीरसे तीन गुना दूरी तक वे आत्मप्रदेश फैल सकते हैं। तीव्र क्रोधकी ऐसी स्थिति होती है। तभी तो लोकमें यह कहावत प्रसिद्ध है कि साहब आप तो आपेसे बाहर हो रहे हैं। तीव्र क्रोध जब होता है तो सचमुच ही जीवकी ऐसी दशा थोड़े समयको हो जाती है। ऐसी और भी स्थितियाँ हैं। कभी तीव्र वेदना होवे तो उस समय भी आत्माके प्रदेश कुछ समयको शरीरसे बाहर हो जाते हैं। ऐसे ही लोकसमुद्घात होता है केवलीभगवानका। तो एक समयको सारे लोकमें फैल जाते प्रदेश, फिर देह प्रमाण हो जाते। तो भले ही हम समझते हैं ऐसा कि यह जीव शरीरसे कुछ बाहर भी हो जाता है, लेकिन वे स्थितियाँ थोड़े समयको हैं। तो बात यह कह रहे हैं कि जीव अनन्त है और वे थोड़े-थोड़े क्षेत्रमें होते हैं, लोकव्यापी नहीं हैं, इस कारण जीवकी क्रिया बन जाते है। और जब क्रिया बन गई तो उनकी गति हो गई, गमन हो गया। और जो विग्रहगतिका प्रक-

http://sahjanandvarnishastra.org/

रण कहा जा रहा वह ठीक बैठा ।

आत्माको सर्वव्यापी मान डालनेपर संसार व मोक्ष आदिका लोपप्रसंग—अब जरा वे दार्शनिक यह बात सोचें जो आत्माको सर्वव्यापी मानते है और सर्वव्यापी मानकर जीवको क्रियारहित, गतिरहित मान डालते हैं वे जरा यह बतलायें कि यदि आत्मा सर्वव्यापी है तो सर्वव्यापी आत्मामें कोई क्रिया तो बन नहीं सकती । हलन-चलन नहीं बन सकता । परिणति न बनेगी । तो जब क्रिया न रही, योग न रहा तो कर्मबन्धन भी क्यों होगा ? जब कर्मबन्धन न होगा तो संसार ही क्यों होगा ? जब संसार ही न रहा कुछ तो मोक्षमार्गकी जरूरत क्या और मुक्ति भी क्या ? तो आत्माको सर्वगत मानने वाले याने सारे संसारमें फैला हुआ मानने वालेके सिद्धान्तमें न मोक्ष सिद्ध होगा, न संसार सिद्ध होगा, न धर्म, न पर्याय, ये कुछ भी सिद्ध न होंगे । इस कारण जो बात यथार्थ है उसको मानकर चलना चाहिए । जो बात अनुभव सिद्ध है उसका निराकरण नहीं करना चाहिए । जीव हैं, अनन्तानन्त हैं ।

अपने-अपने भावोंके अनुसार विचित्र कर्मबंधनगत जीवोंकी दशाओंमें अविग्रहा गतिका दिग्दर्शन—उन अनन्तानन्त जीवोंमें से एक मैं जीव हूं । अपनी-अपनी बात विचारें । मैं हूं, कितना हूं ? जितनेमें अनुभव बन रहा उतना हूं । इसमें मैं क्या करता रहता हूं ? परिस्पंद और ज्ञानपरिणमन, क्रिया और ज्ञानविकल्प । हर जगह यह ही बात कर रहा हूं । कभी एक जगहसे उठकर दूसरी जगह चले गए, क्रिया हो गई, चलें या बैठें या कुछ हो, ज्ञानविकल्प होता है यह उपयोग हो गया । तो योग और उपयोग—इन दोका करनहार इस जीवके अपने-अपने बांधे हुए कर्मके उदयानुसार इस जीवका भवोंमें जन्म होता है । कितने प्रकारके भव हैं ? एक वनस्पतिको ही देख लो—एकेन्द्रिय जीव हैं, कितनी तरहकी वनस्पतियां हैं ? कितने प्रकारके पेड़ पत्ती वाले, कितने प्रकारके बीज वाले, कितने प्रकारके रंगों वाले, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक सभीमें भिन्नता है । कीड़ा-मकोड़ा, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि कितनी ही तरहके जीव पाये जाते हैं, और कैसा जिनेन्द्रदेवने स्पष्ट बतलाया कि ये सब बन रहे हैं । अपने-अपने परिणामोंके अनुसार, निमित्तनैमित्तिक योगके अनुसार कर्मबन्धन हुआ, उदय हुआ, अपने आप शरीरका ग्रहण हुआ और यह जीव शरीरमें रुलने लगा । सारी बातोंका करने वाला यदि कोई एक ईश्वर जैसा होता तो प्रथम बात तो यह थी कि ईश्वर भी दुःखी हो गया होता । यहाँ मनुष्योंको कोई एक फैक्टरीका ही काम पड़ा है तो उसके बारेमें परेशान है, फिर जिसको सारी दुनियाकी फैक्टरी सम्हालनी पड़ जाय उसके क्लेशका तो कहना ही क्या है ? अगर कोई कहे कि वह ईश्वर अधिक शक्ति रखता है, इसलिए उसे ज्यादा तकलीफ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं होते, तो भाई संसारमें अनन्त पदार्थ हैं। सब पदार्थोंका परिणमन करना उसका कर्तव्य हो गया, और मानो वह कभी कामकी अधिकतामें किसी पदार्थको भूल गया, तब तो फिर उस पदार्थका परिणमन होना रुक जाना चाहिए, पर ऐसा नहीं होता, इससे यह व्यवस्था नहीं बनती कि सारे जगतका कर्ता ईश्वर है। दूसरी बात—भगवान तो ज्ञानानन्द स्वरूप हैं, जो आनन्दमय है वह तो कृतार्थ होता है। जो कृतार्थ हो वही तो आनन्दमय होता है। जिसको कोई काम करनेको पड़ा वह आनन्दकी स्थिति कैसे प्राप्त कर सकता है ? तो ईश्वर, भगवान, परमात्मा पवित्र आत्मा होता है, आत्माके गुणोंका उत्कृष्ट विकास होता है। वहां आनन्दमय स्थिति होती है। भगवानके वाचक शब्द जितने हैं उन शब्दोंमें जो अर्थ पड़ा है, सो कोई भी शब्द ऐसा नहीं जो इस बातको साबित करता हो कि भगवान लोगोंको सुख, दुःख देते या सृष्टि करते या चीज बनाते। परमात्मा कहनेसे पूर्ण विकसित आत्माका बोध हुआ। परम आत्मा, परमका अर्थ है उत्कृष्ट। 'परा मा ,विद्यते यत्र स परमः परमश्चासौ आत्मा चेति परमात्मा। मा कहते हैं लक्ष्मीको। आत्माका लक्ष्मी ज्ञान है। लक्ष्मीका अर्थ क्या ? लक्ष्मी, लक्ष्म, लक्षण—ये एकार्थवाचक शब्द हैं। लक्ष्मी मायने हैं लक्षण। आत्माका लक्षण क्या ? ज्ञान। वह ज्ञान जहां उत्कृष्ट हो गया उसे कहते हैं परम और परम आत्माका नाम है परमात्मा। यह शब्द बतलाता है कि भगवानका ज्ञान सर्वोत्कृष्ट है। प्रभु, भु के मायने होना है, जो प्रकृष्ट रूपसे हो जाय सो प्रभु। संसारी जीव अधूरे ज्ञान वाले हैं। जो प्रकृष्ट रूपसे ज्ञानानन्दमें आ जाय उसका नाम प्रभु है। भगवान। भगका अर्थ है ज्ञान। उत्कृष्ट ज्ञानवान। ईश्वर—ऐश्वर्य सम्पन्न। ऐश्वर्य कहीं बाहर नहीं होता किसीका। ऐश्वर्य खुदका खुदमें रहता। कौनसा शब्द ऐसा है प्रभुका वाचक जो इतनी भी गुंजाइश बताता हो कि यह कुछ कर्ता है। कृतकृत्य हैं प्रभु, सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं, आनंदमय हैं, उनको रचनेकी क्या बात ? यह ही जीव खुद अपने बांधे हुए कर्मानुसार नाना देहोंको धारण करता है। तो देह धारण करनेके लिए जब यह जीव जाता है और अगर उसे मोड़ा न लेना पड़े ऐसी जगह पैदा होना है तो एक समयमें ही वह उस स्थानपर पहुंच जाता है, और सिद्ध तो एक समयमें पहुंचते ही हैं। परमाणु भी एक समयमें लोकके अन्त तक पहुंच जाता है, यह इस सूत्रका अर्थ है।

एक द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥

प्रकृत सूत्रके कथनका प्रसंग—विग्रहगतिमें यह संसारी जीव एक समयको अथवा दो समयको अथवा ३ समयको अनाहारक रहता है। इस सूत्रके कहनेका प्रसंग क्या हुआ कि इससे पहले यह बताया गया था कि जिन जीवोंके मोड़ारहित गति होती है याने मरणके बाद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शरीर छूटनेके बाद नया शरीर धारण करनेके लिए जो जीव गमन करता है, सो यदि सीधमें ही जन्मस्थान है चाहे दिशामें, चाहे ऊपर नीचे। यदि बिल्कुल सीधी श्रेणीमें स्थान है जन्म लेनेका तो वहाँ मोड़ा नहीं लेना पड़ता। जीव तुरन्त ही सीधे जन्मकी जगह पहुंच जाता है। उसमें लगता है एकसमय। इस बातके सुननेके बाद यह जिज्ञासा होती कि जहाँ मोड़ा नहीं लेना होता वहाँ तो एक समय लगता है और मोड़ा ले तो कितना समय लगेगा ? इसका उत्तर इस सूत्रमें दिया है अथवा जहाँ मोड़ा नहीं लेना पड़ता वहाँ जीव आहारक ही रहता। तो मोड़े वाली गतिमें क्या आहारक रहेगा या अनाहारक ? इसका समाधान इस सूत्रमें दिया है। यह जीव शरीरके परमाणुओंको सदा ग्रहण करता रहता है। इसको कहते हैं आहारक, और जब ग्रहण नहीं करता तो कहते हैं अनाहारक। भोजनके आहारमें तो प्रतिबंध किया जा सकता, उसमें तो रुकावट है, उपवास करे, न भोजन करना, पर शरीरवर्गणाओंको न ग्रहण करना ऐसा उपवास तो कोई नहीं कर सकता। इस वक्त रातके समय जब कि आप लोगोंको भोजनका त्याग है तो भी आपकी शरीरवर्गणाओंका आहार चारों ओरसे हो रहा है, मुखसे नहीं होता, सभी जगहसे होता है तो इसे कहते हैं आहारक। और जब जीव शरीर छोड़कर नया शरीर धारण करनेके लिए जाय और मोड़ा लेकर जाय तो वह कुछ समय अनाहारक रहता है याने शरीर वर्गणाओंका ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार इस सूत्रका अर्थ हुआ कि विग्रहगतिमें यह संसारी जीव एक समय दो समय अथवा तीन समयको अनाहारक रहता है जीवकी सर्व परिस्थितियोंकी दशा जाननेसे बहुत प्रकाश मिलता है शान्तिके मार्ग पर चलनेके लिए आत्मज्ञान बिना जीवकी क्या क्या हालतें होती हैं इसका जब परिचय होता है तो इस जीवको फिर ध्यान होता कि असार बातोंमें न रहकर सारभूत अंतस्तत्त्वकी उपासनामें लगे। यह जीव किस-किस प्रकारसे अपनी विडम्बनायें कर रहा है, यह सब प्रसंग चल रहा है।

आत्माको क्षणिक मानने वालोंके सिद्धान्तमें व्यवहार, मोक्षमार्ग, धर्मपालन आदि सबका विधान—यहाँ कोई एक आशंका रख सकता कि जीव तो एक क्षणके लिए ही उत्पन्न होता, फिर वह जीव नहीं रहता, फिर वहाँ दूसरा जीव उत्पन्न होता है। तो जहाँ चित्त क्षण याने जीवका नाम क्षणिकवादमें रक्खा गया चित्तक्षण। तो जब दूसरे समय जीव रहता ही नहीं तो गति किसकी कही गई है ? ५–६ सूत्रोंसे यह वर्णन चला आ रहा है कि विग्रहगति में जीव इस-इस तरहसे गमन करता है। जीव जब एक समयको ही रहता है तो इसका गमन कैसे बने ? वह तो स्वरूप लाभके लिए एक समयमें है और इसके बाद वह मिट गया। गमन करनेका कहाँ अवसर मिला ? फिर क्यों सूत्रोंको बढ़ाया जा रहा है और व्यर्थ एक बात कही जा रही है। ऐसी एक आशंका होती है। तो समाधान अपने अनुभवसे भी कर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकते, युक्तियोंसे भी कर सकते। बोलो—क्या जीव एक क्षण रहता है और दूसरे क्षण बिल्कुल नष्ट हो जाता है ? यह मरने और जीनेके समयकी बात नहीं कह रहे, किन्तु निरन्तर जीव एक समय रहता है, दूसरे समय नहीं। ऐसी आशंका की गई थी, उसका समाधान कर रहे हैं। एक अनुभव बतलाता है ऐसा कि मैं आत्मा क्षणभर को रहा, अब मिट गया तो नया आत्मा बना, अनुभव ऐसा नहीं कहता, युक्ति भी नहीं कहती। भला बतलावो जो बिल्कुल नहीं है उसका उत्पाद कैसे हो ? कुछ भी बात नहीं, कुछ वजूद ही नहीं, फिर उसकी अवस्था कैसे बने ? जो चीज नहीं वह हो नहीं सकती। जो चीज है वह मिट नहीं सकती। जीव है, अनादिसे है, अनन्तकाल तक रहेगा, उस जीवकी गति बतायी गई है। दूसरी बात—अगर जीवको एक क्षण तक ठहरना मानें, दूसरे क्षण जीव रहता ही नहीं ऐसा मानें तो फिर व्यवहार कैसे चलेगा ? लेनदेन कैसे चलेगा ? कोई रुपया ले गया, ६ माह हो गए, अब खुद तो देने नहीं जाता और मालिक अगर माँगे तो यों कह बैठता कि जिस जीवको दिया वह तो तुरन्त मर गया था, अब तो यह नया जीव है। जिसको दिया था उससे ही माँगो। तो भला बताओ इस तरहसे क्या व्यवहार चलेगा ? न चलेगा। तो फिर जीव क्षण भरको ठहरता है—यह सिद्धान्त सही नहीं है। यदि जीव क्षण भरको रहता ऐसा माना जाय तो फिर धर्म क्यों किया जाय ? फिर मोक्षमार्ग क्यों बनाया जाय और मोक्ष किसको दिलाना ? तो धर्म परोपकार आदिककी सभी पद्धतियाँ उस सिद्धान्तके माननेसे बिगड़ जायेंगी। जीव अनादि अनन्त है और उसका जन्म है, मरण है, गति है, गमन है, पवित्र अपवित्र अवस्थायें होती हैं। यह सब बात सिद्ध हो जाती हैं।

आत्माको एकान्तनित्य माननेके सिद्धान्तमें धर्म कर्म संसार मोक्ष सभीका विघात— अच्छा तो कोई दार्शनिक यह भी कह सकता है कि जीव तो कूटस्थ नित्य है, जो है जैसा है वैसा ही सदा रहता है, उसमें कभी कुछ अदल-बदल नहीं होती। फिर गति कैसे बनेगी ? जब जीवमें परिणमन ही नहीं हो पाता, वह तो नित्य ही है तो फिर गमन कैसे बनेगा ? फिर जब गमन न बना जीवका तो फिर यह प्रकरण कैसे छिड़ा कि विग्रहगति है। इस इस तरह जीव है आदिक। तो उसका भी समाधान यही है कि अगर जीवको नित्य, अपरिणामी माना जाय तो फिर धर्म कर्म, मोक्षमार्ग ये सब नष्ट हो जायेंगे। जब जीवमें कुछ परिणमन ही नहीं होता, कुछ अवस्था हो नहीं होती तो फिर मोक्ष किसका होगा ? तो मोक्षकी विधि सब नष्ट हो जायगी, इसलिए जीवको सर्वथा नित्य मानने वालोंका सिद्धान्त सही नहीं बैठता। तो यों जीव कथञ्चित् नित्य है और कथञ्चित् अनित्य है। सदा रहता है, इस कारण तो नित्य है और अवस्थायें बदलती हैं, इस कारण अनित्य है। तो ऐसी कथञ्चित्

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नित्य, कथञ्चित् अनित्य जीवकी गति सिद्ध होती है। और जहाँ जैसा योग है वहाँ उस प्रकार यह जीव गमन करता है।

सूत्रमें निर्धारित अर्थ—क्या कहा जा रहा सूत्रमें, कितने शब्द दिए ? एक, द्वौ, त्रीन्, वा, अनाहारकः—ये ५ पद हैं इसमें। जिसका सही अर्थ क्या होता ? जितने शब्द दिए हैं उसके अनुसार। एक-दो अथवा तीन अनाहारक है। अब बतलाओ क्या समझे कोई ? कौन अनाहारक है और कहाँ है ? तो सूत्ररचनामें यह कायदा होता कि अगला सूत्र, पिछला सूत्र, इनकी कोई प्रभा आती है, अनुवृत्ति हो जाती है। तो यहाँ तीन शब्द और लाये जायेंगे ऊपर से। जिसका अर्थ बना—एक दो अथवा तीन समयको और एक आयगा संसारी जीव याने अनाहारक है, कौन है ? संसारी जीव। और एक आयगा विग्रहगतिमें। उसीका ही तो यह प्रकरण चल रहा है। तब सूत्रका पूरा अर्थ यह हुआ कि विग्रहगतिमें यह संसारी जीव दो अथवा तीन समयको अनाहारक रहता है। समय शब्द तो पहले वाले सूत्रसे ले लिया। एक समयाऽविग्रहा। उसका समय शब्द खींचकर यहाँ अर्थमें डाल दिया। शब्द विभक्तिका परिवर्तन सम्बंधके अनुसार हो जाता है और विग्रहगतिका यह प्रकरण ही है, इसलिए उसकी अनुवृत्ति है और संसारिणः शब्द दिया है इससे पहले सूत्रमें उससे संसारी जीवकी अनुवृत्ति आती है। तो बात यह बनी कि विग्रहगतिमें संसारी जीव कोई एक समयको अनाहारक है याने जो एक मोड़ा लेकर जायगा वह पहले समयमें अनाहारक है, दूसरे समयमें आहारक हो जायगा, आहारकके मायने क्या कि जीव शरीरवर्गणाओंको ग्रहण करे। इस समयको आप अनेक शरीर वर्गणावोंको शरीरमें चिपटाये जाते हैं और कुछ निकल भी रहे हैं। बचपनमें, जवानीमें निकलते तो कम हैं और चिपटते ज्यादा हैं शरीर परमाणु, तब ही तो वह उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता है। बुढ़ापेमें शरीरके परमाणु निकलते अधिक हैं और ग्रहण कम किया जाता। जिस दिन ग्रहण करना बिल्कुल खत्म हो जायगा उस दिन मृत्यु हो जायगी। तो इसको कहते हैं आहारक कि शरीरवर्गणाओंको ग्रहण करे। तो 'वा' शब्द दिया है सूत्रमें जिसके मायने हैं कि किसीको एक समय अनाहारकत्वमें लगता। जो दो मोड़ा लेकर जन्मस्थानपर जायगा उसको दो समय अनाहारक रहना होगा। तीसरे समयमें आहारक हो जायगा। और जिस किसीको तीन मोड़े लेने पड़ते हैं जन्मस्थानपर जानेके लिए वह तीन समयमें अनाहारक रहता है। चौथे समयमें आहारक हो जाता है। यहाँ जो शब्दशास्त्रके जाननहार हैं वे परखेंगे कि एक, दो, तीन ये तीन पद द्वितीया विभक्तिके हैं, जिसका अर्थ है कि "को" मगर शंका होती है कि द्वितीया विभक्ति नहीं लगनी चाहिए और सप्तमी विभक्ति लगनी चाहिए। जिसका अर्थ हो जायगा—एक समयमें, दो समयमें अथवा तीन समयमें जीव अनाहारक रहता। क्यों नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किया ऐसा ? तो उसका उत्तर यह है कि एक तो थोड़ा समय है और इसमें संयोग विशेष है, सम्बंध ज्यादा है, इस कारण द्वितीया विभक्ति इसमें लगाई है।

आहारकादि दशावोंकी विचित्रताका सकारण दिग्दर्शन—अब आहारककी बात देखिये—इस समय रात्रिमें यहाँ शास्त्रसभामें बैठे आहार कर रहे कि नहीं ? तो आप तो कहेंगे कि कहाँ आहार कर रहे, हम तो मुख बन्द किए शान्तिसे बैठे हैं, पर ऐसी बात नहीं है, आप मुखसे तो आहार नहीं कर रहे, किन्तु सारे शरीरसे, प्रत्येक रोमसे, प्रत्येक जगहसे शरीरमार्गणायें इस शरीरमें आती हैं, इसे कहते हैं आहार करना। औदारिक, वैक्रियक, आहारक—इन तीन शरीरोंके योग्य परमाणु पुञ्ज ग्रहणमें आयें उसका नाम आहार है और तब ही वे पर्याप्तियोंके योग्य हैं। तो देखो—अनाहारक अवस्थामें आहारक शरीरका तो कोई प्रसंग नहीं है। शेष शरीरवर्गणाकी बात चल रही है। कोई जीव मरकर देवगतिमें पैदा होगा तो कुछ वैक्रियक परमाणु ग्रहणमें आयेंगे और कोई मरकर मनुष्य या तिर्यंच बने तो औदारिक परमाणु ग्रहणमें आते। देखो जीवके भावोंकी कैसी विचित्रता है कि एक अविचित्र सम शान्त सहज चैतन्यस्वरूपको जाने बिना ऐसे विभिन्न परिणाम होते हैं कि जिसमें इस तरहके कर्मबन्ध होते हैं कि जीवको नाना प्रकारके देहोंमें जन्म लेना पड़ता है, सदाके लिए संसारके संकटोंसे छूट जाना यह एक मामूली तौरसे बनने वाली बात नहीं है। कुछ पौरुष करना होगा, वह पौरुष (पुरुषार्थ) क्या है कि अपने सहजस्वरूपको जानकर इसमें ही 'यह मैं हूं,' ऐसा अनुभव बने यह है मोक्ष जानेका प्रयोग। ज्ञानमें ज्ञानस्वरूपको समा देना, कितना तो सरल काम है मोक्षमार्गका और जीवोंको कितना कठिन लग रहा है ? बहुतसे मनुष्योंको तो मोक्षमार्गकी बात सुनना भी पसंद नहीं है। चाहे ताश खेलकर, गप्पें मारकर अपना समय फाल्तू गंवा दें उसे तो अपने समयका सदुपयोग समझते और मोक्षमार्गकी बात सुननेके लिए जरा भी मन नहीं करता। कैसी उल्टी परिणति बन जाती है। तो कल्याणका मार्ग तो बहुत सरल है, पर उसकी धुन आये, मनमें बात आये कि मुझको तो मुक्त होना है, सिद्ध होना है, संसारमें नहीं रहना है, क्योंकि यह तो बहुत विकट स्थान है।

आत्माकी सुध बिना सांसारिक विडम्बनाओंका प्रसङ्ग—अहो ! आत्माकी सुध हुए बिना जीवका ऐसी-ऐसी गतियोंमें जन्म होता है। यह सब बात इसमें झलक रही है—अनाहारक और आहारक, ये दो बातें इस प्रसंगमें आ रही हैं। आहारकका अर्थ क्या है कि जिन परमाणुओंसे शरीर बनता है उन शरीरके परमाणुवोंको ग्रहण करना और उसका शरीरका रूप बनना यह तो है आहारक और अनाहारक कहते किसे हैं कि शरीर वर्गणाओंको ग्रहण न करे तो अनाहारक। तो बतलाओ अनाहारक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होना अच्छा कि आहारक। अनाहारक होना अच्छा है, मगर जिसकी चर्चा चल रही ऐसा अनाहारक होना अच्छा नहीं, संसारी जीव देह छोड़कर नया देह पानेके लिए जो रास्तेमें अनाहारक रहता है वह क्या दशा है? इस जीवकी कमजोरी अयोग्यता और मन न रहा, इन्द्रियाँ न रहीं, द्रव्यमन, द्रव्यइन्द्रियाँ ऐसी उसकी एक स्थिति है। ऐसी स्थितिमें वह अनाहारक रहता, तो ऐसा अनाहारक काम क्या करे? यह तो आगे बड़े दुःखमें बड़ी विपत्तिमें डालनेका कारण है। नया शरीर मिलेगा, फिर वही पाटी पढ़नी पड़ेगी जैसी कि पिछले भवों में पढ़ते आये, सो ही करना पड़ेगा। तो ऐसा अनाहारक तो अच्छी बात नहीं। मगर सिद्ध भगवान अनाहारक हैं, १४ वें गुणस्थान वाले अनाहारक हैं। जो सदा अनाहारक है, आगे कभी आहारक न बने, ऐसा अनाहारक है, क्योंकि सब दुःखोंकी जड़ यह शरीर बन रहा है। क्रोध, मान, आदिक विकार जगते हैं तो इस शरीरके माध्यमसे ही तो जग रहे हैं, केवल अकेला आत्मा हो, शरीर न हो तो विकारको गुञ्जाइश है कहाँ? सम्मान अपमानकी जो ज्यादह ठेस पहुंचती है वह इस शरीरके सम्बन्धसे ही तो हुई। कभी परिग्रहके पीछे लड़ाई झगड़े होते हैं, भाई भाई भी लड़ने लगते हैं और उसमें चैन नहीं पड़ती, क्लेश रहता है। तो इसका कारण क्या रहा? यह शरीर। जो शरीर अनेक दुःखोंकी जड़ बना है उस शरीर से मोह रखनेका अर्थ यह हुआ कि मुझको ये दुःख सदा मिलते रहें। हम दुःखमें ही राजी हैं। तो ऐसा जिसका भाव बना वह जीव तो सही न रहा, उन्मत्त रहा वह, तो ऐसे ये जीव अनाहारक होते तो हैं विग्रहगतिमें, मगर बहुत कम समयको हुए और झट आहारक हो जाते हैं।

विडम्बनाओंके कारणोंके प्रश्नोंका एक उत्तर हमने अपनी सम्हाल न की—हम आप यहाँ बैठे हैं तो अपने-अपने व्यक्तिको जरा निहारें कि यह है क्या? जीव है यह तो मालूम होता है, मगर यह शक्ल सूरत क्या बन गई। क्या जीवके नाक, आँख, कान आदि होते हैं? जीव तो अमूर्त होता है। क्या जीव दुबला मोटा होता है? जीव तो अमूर्तिक होता है। दुबला मोटा आदिक अवस्थायें होना यह तो एक पौद्गलिक चीज है, पर उसके बन्धनमें यह क्यों पड़ गया? यों पड़ गया कि हमने अपने स्वभावकी संभाल नहीं की। चारों गतियों में यह क्यों भटक रहा? इसलिए भटक रहा कि इसने अपने स्वरूपकी संभाल नहीं की। आप जितने भी प्रश्न करें कि यह खराब हालत क्यों हुई तो उत्तर सबका एक ही मिलेगा कि इसने अपने स्वरूपकी संभाल नहीं की। वैसे लोकमें तीन चार बातें पूछी जाती हैं जिनका उत्तर एक रहता है। जैसे कहते हैं ना– रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों? तो उत्तर इन सबका एक रहता है कि फेरा नहीं। अब देखिये– रोटी जली क्यों, इसलिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि उसे फेरा नहीं गया, याने घुमाया फिराया नहीं गया, अब घोड़ा क्यों अड़ा कि उसे अच्छी तरहसे फेरा नहीं गया याने सिखाया नहीं गया और पान क्यों सड़ा, इसलिए कि पान को फेरा नहीं गया याने उल्टा पल्टा नहीं गया। तो जैसे लोकमें कई बातोंका एक उत्तर होता है ऐसे ही इस जीवकी सारी खोटी स्थितियोंके लिए पूछ लो कि यह जीव जन्म मरण क्यों कर रहा, रोगी क्यों होता है, सम्मान अपमान क्यों महसूस करता है, सुख दुःख क्यों महसूस करता है, परिग्रहके लालच तृष्णा में क्यों लग गया ? तो इन सभी प्रश्नोंका उत्तर एक है कि इसने अपने स्वरूपकी संभाल नहीं की। तो देखो एक काम करनेसे सारा काम संभल जाता है और एक यही काम न करनेसे सारे काम बिगड़ जाते हैं।

स्वका एकत्व अनुभवनेके साहसी वीरके आत्मसिद्धिकी संभवता—जिसको इतनी हिम्मत है कि मेरा जगतमें मेरे स्वरूपके सिवाय अन्य कुछ नहीं है, पर मुझे अन्य कुछसे मतलब नहीं, चाहे कही जाय, भिद जाय, मरणको प्राप्त हो जाय, कुछ भी हालत हो जाय दूसरेकी, वह मेरे आधीन नहीं, उसमें मेरी करतूत नहीं और न उससे मेरे पर कोई असर होता है। मैं अपनेमें अपने भाव रचता जाता हूं और नाना प्रकारकी ये सब परिणतियाँ बनती जाती हैं। सुख शान्ति इस जीवको क्यों नहीं मिली कि इस जीवको अहंकार, ममकार, कर्तृत्वबुद्धि और भोक्तृत्वबुद्धि लग गई। इन बातोंमें जो अपना उपयोग लगायेगा उसको सुख कैसे मिलेगा ? और जो बाहरी बातोंसे उपयोग हटाकर स्वयंकी बात सोचेगा उसको शान्तिका मार्ग मिलेगा। तो एक इतनी कला बना लें कि बाहरमें कुछ हानि हो रही हो तो उसका असर खुदपर न आये और कोई बाहरमें लाभ हो रहा हो तो उसका भी असर अपने में न आये। मैं तो अपनेमे अपना परिणमन करता जाता हूं, बाहरसे मुझमें कुछ नहीं आता। यह सब ऐसा अलौकिक ज्ञान है कि जिन ज्ञानोंसे ही कर्म रुकेंगे, कर्म कटेंगे, मुक्त होंगे। तो नहीं की इस जीवने अपने स्वरूपकी संभाल, इस कारण यह जन्मके लिए इस-इस तरहकी अड़चनें पाता रहता है, और जन्म खुद एक बहुत अच्छा है, उसकी परम्परा बढ़ती जाती है। अगर इन दंद-फंदोंसे मुक्त होना है तो बस कर्तव्य एक ही है कि अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करें। मैं ज्ञानमात्र हूं, इसका उपाय बनावें। एकान्तमें सामायिकमें बैठें, स्थिर आसन लेकर बैठें और अपनेमें 'मैं हूं क्या' ऐसा भीतर खोजके लिए उपयोग दौड़ाये तो उसे तत्त्व प्राप्त होगा। यह काम करनेका है, इसके बिना सब सूना है और यह काम बनेगा तो बड़ा संतोष मिलेगा हमारा मनुष्य-जीवन सफल हो गया, विपदाओंकी राहसे हमें दूर कर दिया।

वास्तविक स्वस्थतामें क्लेशकी परिसमाप्ति—मैं अपनेमें अपनेको निहारकर अपनेमें सुखी होऊँ। न फिर गति आयगी, न जन्म-मरणकी बाधा होगी, और न किसी प्रकारका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्लेश रहेगा। काम एक ही करना है। घरमें स्त्री-पुत्रादिकको ऐसा समझावें, उनका भी ऐसा भाव बने तो आपको एक बड़ा सहयोग मिलेगा एक ज्ञानकी आराधना करनेके लिए। मैं ज्ञानमात्र हूं। कुछ लोग योगकी क्रियायें सिखाते हैं, जैसे आजकल भी किन्हीं मनचलोंके द्वारा चल रहा है। बस बैठ जावो, खूब तेजीसे श्वास लो और तेज तेज श्वास ले लेकर एकदम श्वास लेना छोड़कर बैठ जावो और भीतरमें बराबर ये शब्द उठावो कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, तो क्या यह योग उत्तर दे देगा ? अरे योग तो एक रोक है ताकि अन्य जगह विकल्प न रहे और शरीरको खूब थका लें ताकि जल्दी-जल्दी श्वास लेकर फिर विश्राम किया तो बाहरी पदार्थोंमें और जगह यह उपयोग न दौड़ेगा और ऐसी स्थितिमें सम्भव है कि ज्ञान का प्रकाश पा लें, और कोई पाते हैं, कोई नहीं पाते। यह मोक्षमार्गकी विधि नहीं है, किन्तु एक तरहके ध्यानकी उपयोगी चीज है। पर मूलमें धन हो तब ही तो यह सहायक बनेगा। मूलमें धन है नहीं तो ये बाहरी योग क्या साधन बन सकते हैं ? वह मूलधन क्या है ? आत्मा के सहज चैतन्यस्वरूपका परिचय, यह है जीवका मूलधन, जिसके बलपर कहीं भी यह जीव जाय तो शान्त रहेगा, किसी भी घटनामें रहे, पर यह शान्त रहेगा। तो एक इस सहज चैतन्यस्वरूपको जाननेसे ये सारी विपदायें दूर होती हैं। यहाँ तक ६ सूत्रोंमें विग्रहगतिकी बात बताई गई है। अब यह प्रकरण समाप्त होगा। अब गतिमें जाकर जहाँ पहुंचा यह जीव वहाँ जन्म होगा ना, तो उस जन्मकी बात चलेगी कि कैसे-कैसे जन्म होते हैं और क्या ढंग होता है ?

सम्मूर्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

जन्मका वृत्त—सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद—ये तीन प्रकारके जन्म होते हैं। इससे पहले प्रकरण यह चला आ रहा था कि जीव एक भव छोड़कर दूसरे भवमें जाता है तो रास्ते में अगर उसे मोड़ा लेना पड़ता है तो एक, दो, तीन समय अनाहारक रहता है और चौथे समय आहारक हो जाता है। यह सब अपने-अपने भावों द्वारा जो शुभ अशुभ फल वाले कर्म बांधे थे उन कर्मोंके उदयमें ही ऐसी क्रिया बनती है, जिस क्रियासे वह श्रेणीके अनुसार जाता, जाकर दूसरे शरीरपर पहुंचता। उसीका नाम यहाँ जन्म रखा है। देखिये—जन्मका भी परिचय लोग तीन स्थानोंमें करते हैं—एक तो यह कि गर्भसे निकले उसे जन्म कहते हैं। प्रायः मनुष्य कहते ही हैं कि आज इसके पुत्रका जन्म हुआ। अरे उसका जन्म तो ९ महीने पहले हो गया था। जब पेटमें आया था शुरू शुरूमें, जन्म तो तब ही था, पर कहा जाता है पेटसे निकलनेके बाद याने गर्भमें आनेके ९ महीने बादको बताते हैं जन्म। और कोई ऐसा भी समझ लेते हैं कि जिस दिन वह गर्भमें आया, जहाँ पैदा होना था उस स्थानमें आया, जन्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो गया, पर वास्तवमें जन्म तो जिस जगहको छोड़कर आया है वह जगह छूटते ही जन्म हो गया। विग्रहगतिमें जन्म कहलाता है।

विग्रहगतिमें आकार पुराना, नाम नया—जैसे मानो कोई घोड़ा मरा और मनुष्य बनना है उसे और मोड़ा लेकर जायगा तो दो-तीन समय बाद लेगा मनुष्य शरीर, पर जिस समय घोड़ेका शरीर छूटा उसी समय मनुष्यगतिका मनुष्यआयुका उदय है, रास्तेमें जो जा रहा है वह जीव तो रास्तेमें वह मनुष्य जीव कहलायेगा। रास्तेमें मनुष्यका जीव है। विग्रहगतिमें याने जिस गतिमें जायगा वह गति विग्रहगतिमें आयगी। और देखो कर्मकी विचित्रता कि आकार है घोड़ेकी तरहका और नाम है मनुष्य। घोड़ेके शरीरको छोड़कर मनुष्यके शरीर में जीव आयगा तो विग्रहगतिमें रास्तेमें नाम तो है मनुष्य और वह जीवका आकार है घोड़े की तरह, सो जब एकका चार्ज खत्म होनेको है और दूसरेका चार्ज आनेको है तो ऐसी स्थिति में कुछ न कुछ रूपमें दोनोंकी महिमा होती है। जैसे किसी अफसरकी बदली की गई और नया अफसर चार्ज लेता। तो पुराना अफसर है चार्ज देने वाला और नया है लेने वाला, तो जिस समय चार्ज सौंपा जा रहा है उस समय किसको प्रधान कहेंगे ? कोई बातमें उस नये अफसर की महिमा है, किसी बातमें उस पुराने अफसरकी महिमा है। तात्कालिक और यहाँ तो इतना तक है कि उस समय अधिकार पुरानेका है ज्यादा याने जो चार्ज दे रहा है उसका अधिकार ज्यादा है व्यवस्था प्रबंधका हुक्म चलानेका, नौकरोंपर, किसीपर आर्डर करनेका अभी उसीका अधिकार है, पर लोगोंकी दृष्टि उस नये अफसरपर ज्यादा है। चार्ज लेने-देनेकी घटनामें जैसे कुछ गड़बड़ी चलती है, एककी ही बात नहीं, ऐसे ही जब एक देह छोड़ा और दूसरा देह पाने को जा रहे तो उस विग्रहगतिमें पुराने शरीरकी तो प्रभुता समझो जो कि उसका आकार है और नये शरीरमें प्रभुता यों रही कि उसका नामकर्मका उदयविपाक है, कुछ नया हो गया। खैर यह पहुंचा जन्मके स्थानपर, इसका जन्म हो गया याने वह पर्याप्ति ग्रहण करने लगा तो उसके जन्मका नाम हो गया है ? पर्याप्त बने तो भी जन्म है, अपर्याप्त रहे तो भी जन्म है। वह जन्म किस ढंगका होता है, कौनसा जीव किस तरहसे पैदा होता है, यह बात इस सूत्रमें बतायी गई है। देखो यह सब जनरल तत्त्वज्ञान है जो सभीको समझना चाहिए। एक व्यावहारिक बातें हैं।

सम्मूर्छन जन्मका आख्यान—जन्म कैसे होता है ? तो जन्मके जो तीन भेद कहे उनसे ही सब विदित हो जायगा—(१) सम्मूर्छन, (२) गर्भ और (३) उपपाद। सम्मूर्छन मायने हैं—यहाँ वहांके परमाणु मिलकर शरीर बन गया, वहाँ जीवने जन्म लिया, यह तो है सम्मूर्छन। सम्मूर्छन शब्दका अर्थ है—सम मूर्छन। सम मायने चारों ओरसे, मूर्छन मायने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुद्गलकी इन वर्गणाओंको, शरीरकी वर्गणाओंको ग्रहण कर लेना सो सम्मूर्छन याने इनके माता पिता नहीं किन्तु यहाँ वहाँके पुद्गल परमाणु मिलकर बन गए थे जैसे बिच्छू, ततैया, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, लट, केंचुवा, जोंक, शंख, चींटी चींटा, भंवरा, मक्खी आदि ये सब सम्मूर्छन हैं। इनके माता पिता नहीं हैं। यहाँ वहाँके पुद्गल परमाणु मिल गए और वहाँ जीव आ गया। देखो जो सम्मूर्छन हैं वे सब नपुंसक होते हैं, पुरुष और स्त्रीका उनमें भेद नहीं है। लोग यहाँ ऐसा कह तो डालते हैं कि यह चींटी है और यह चींटा है, और बल्कि अनेक लोग मक्खियोंमें ऐसा सोच बैठते कि कोई तो स्त्री जातिकी मक्खी है, कोई पुरुष जाति की और कभी बता भी देते हैं कि देखो यह मक्खी एकके ऊपर एक बैठी है, पर उनमें पुरुष स्त्रीका भेद नहीं है, वह तो उनकी एक आदत है। कभी बरसातमें गिजाई एक पर एक दो तीन चढ़ जाती हैं तो क्या उन गिजाइयोंमें यह भेद है कि यह स्त्री जातिकी है और यह पुरुष जातिकी? भले ही कोई मोटी गिजाई होती, कोई छोटी तो ये तो शरीरके भेद हैं। उनमें पुरुष स्त्री नहीं होते। कुछ लोग ऐसी भी आशंका रखते हैं कि चींटा चींटी भी बरसातके दिनोंमें अपने मुखमें सफेद सफेद अंडे लेकर निकलते हैं सो भाई ठीक है। उनके घर भी होता है जिसमें कुछ अंडेके आकार भी पड़े रहते हैं, लेकिन वे अंडेसे उत्पन्न नहीं होते। ततैया भी अंडेसे उत्पन्न नहीं होते, कौनसे अंडेसे? जो कि माता पिताके रज वीर्यसे होता है। अंडे चिड़ियोंके भी होते हैं, साँपोंके भी होते हैं, तो ये चिड़िया आदिके अंडे क्या हैं? वे ऐसे ही पुद्गल पिण्ड हैं, वे कोई पेटसे निकले हुए नहीं हैं। एक ऐसी ही उनमें प्रकृति है। एकइन्द्रियसे लेकर चारइन्द्रिय तकके जीव तो सभी सम्मूर्छन ही होते हैं। पञ्चेन्द्रियमें कुछ तिर्यञ्च सम्मूर्छन होते हैं, शेष गर्भज होते हैं। तो किन्हीं जीवोंका जन्म सम्मूर्छन है।

गर्भजन्मका तथा उपपाद जन्मका आख्यान—किन्हीं जीवोंका जन्म गर्भसे है। गर्भसे उत्पन्न होते हैं। गर्भ नाम है रज और वीर्यके मिश्रणसे जो बात बनती सो गर्भ। जितने अंडेसे उत्पन्न होते हैं वे सम्मूर्छन, जो जेर लेकर उत्पन्न होते हैं वे गर्भज हैं, तो जो माता पिताके रज वीर्यके मिश्रणसे हुए तो गर्भज अथवा माताके द्वारा खाये गये भोजनको आत्मसात् करके जो जन्मे सो गर्भ, और उपपाद जन्म क्या कहलाता? उप पाद, उपके मायने आ करके, पाद मायने पैदा हो जाना, जो यों ही आ करके उत्पन्न हो जाय उसे उपपाद कहते हैं। यह है देव और नारकियोंमें। देवोंमें तो शैया होती है। कोई देव पैदा होना है तो आया, वहीं प्रकट हो गया, वहीं वैक्रियक, आहार वर्गणाओंके परमाणु आये और शरीर बन गया, अचानक ही दिख गया। इसी प्रकार नारकियोंका जन्म है। नारकियोंके स्थान खोटे होते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई घंटेके आकार, कोई किसी आकार। उनमें से नारकी जीव टपककर गिरते हैं। उनके कैसा दुःख होता है यह सब आगे वर्णन आयगा। तो यह उपपाद जन्म कहलाता है। माता पिताका सम्बन्ध यहाँ नहीं है। स्वयं ही परमाणु इकट्ठे हुए, जीवने ग्रहण किया और वह देव बन गया, नारकी बन गया, तो यह कहलाता है उपपाद जन्म। संसारी जीवोंके जन्म (शरीरके ग्रहण) तीन प्रकारसे होते हैं—(१) सम्मूर्छन, (२) गर्भ और (३) उपपाद।

जन्मरहित चैतन्य महाप्रभुकी सांसारिक विडम्बनाकी विचित्रता—अब आप यहाँ देख लो—कैसा तो इस आत्माका स्वरूप, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त वीर्य, ऐसा स्वभाव रखने वाला यह भगवान आत्मा और इसकी दुर्दशा क्या हो रही है? कहाँ कहाँ तो जन्म लेता, कहाँ कहाँ फंस जाता, कहाँ कहाँ बंधता है? सारी काया पलट सी हो जाती है। कहाँ सुख है, कहाँ शान्ति है, विकल्प होते, अनेक क्षोभ आते, यह दशा बन गई, इसका कारण क्या है? इस जीवने अपने आपके स्वरूपकी संभाल नहीं की। अपने आपका जैसा सही सहज रूप है उस प्रकारसे अपना अनुभव नहीं किया। फल यह हुआ कि इस तरह के नाना जन्मोंमें इसको आना पड़ा। और क्या हालत बन रही कि जो देह पा रहा, जिस जगह जा रहा उसे यह मान रहा कि यह ही मैं हूं। ऐसी एक कठिन स्थिति हो रही है। इन बातोंको सुनकर अपने चित्तमें यह बात आनी चाहिए कि सम्मूर्छन, गर्भ और उपपादके झगड़े मिट जायें। कैसी विचित्र एक लीला है जो इसके दुःखका ही कारण है। तो ये जन्म मिटे, इस तरह जन्म न लेने पड़ें, इसका उपाय यह है कि जन्मरहित सहज चैतन्यस्वरूपमें अपना अनुभव करें कि मैं यह हूं।

सम्मूर्छन, गर्भ व उपपादमें ऐसा क्रम कहनेका कारण—हाँ बात चल रही है कि जन्म तीन प्रकारके होते हैं—(१) सम्मूर्छन, (२) गर्भ और उपपाद। इनमें जरा यह बात समझनी है कि इनमें यह क्रम क्यों रखा? पहले सम्मूर्छन बोला, फिर गर्भ बोला और फिर उपपाद बोला। शब्दोंके अर्थमें, शब्दोंकी उपयोगितामें, शब्दोंके अर्थ संख्या आदिकके कारणसे कुछ ऐसी प्रकृति बन जाती है कि बोलचालमें भी वैसा ही क्रम आ जाता है। तो यहां सम्मूर्छन शब्द पहले दिया है, वह इस कारण दिया है कि सम्मूर्छन जन्म वाले अत्यन्त स्थूल हैं। देखो सबसे ज्यादह बड़ा शरीर किसका होता? सम्मूर्छन जन्म वालेका बहुत बड़ा शरीर होता है। हजारों कोशके भी लम्बे चौड़े शरीर वाले सम्मूर्छन जीव होते हैं। यहाँ भी दो-दो तीन-तीन कोशकी लम्बी मछलियां समुद्रोंमें पायी जाती हैं। तो क्यों इतने बड़े शरीरमें पाये जाते सम्मूर्छन? इस कारण पाये जाते कि वे छोटे पैदा हों और फिर धीरे-धीरे बढ़े ऐसा जरूरी नहीं है। पहलेसे ही कोई टीला पड़ा है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पृथ्वी, जल, पत्ते वगैरह पड़े हैं जो उनकी योनिभूत हैं, ऐसी चीजें मिल जायें तो सारा शरीर बन जाय। सबसे बड़ा शरीर बताया गया है मच्छका। स्वयंभूरमण समुद्रमें एक हजार योजनका तो लम्बा, याने चार कोशका एक योजन होता, तो चार हजार कोशका तो लम्बा और दो हजार कोशका चौड़ा और एक हजार कोशका मोटा एक मगरमच्छ होता है। देखो केवलज्ञानीके ज्ञानमें जो-जो कुछ ज्ञानमें आया है वह कितना सूक्ष्म ज्ञान था, कैसा विशाल ज्ञान था कि जो बातें हम आपके ध्यानमें न आ सकें वे सब बातें, परमाणुवोंकी, जीवोंकी, जातिकी, शरीरके अवगाहना की, कर्मोंकी, सब ज्ञात हैं, और देखो अनुमान भी सब सही उतरता है। कोई यह कहे कि हमने तो हाथ दो हाथ, चार हाथ या समझ लो मील, दो मील, तीन मील तकके मच्छकी बात सुनी है तो लो यों बढ़ते जावो तो सीमा बताओगे तो चार हजार कोशके लम्बे मच्छ होते हैं, इससे बडा शरीर किसी प्राणीका नहीं है। आप कहें कि विश्वास नहीं होता। तो भाई इसमें अविश्वासकी कोई बात नहीं है। कुछ प्रकृत्या ही आप ऐसी बात पायेंगे कि बड़े पर्वतोंपर बड़े आकार वाले जीव मिलेंगे। यहीं आपको शिमला वगैरा ऊँचे पर्वतपर रहने वाले और यहाँ नीचेके हिस्सोंमें रहने वाले जीवोंसे मिलान कर लो, आकार प्रकारमें भी अन्तर देखनेको मिल जायगा। तो स्वयंभूरमण समुद्रका कितना बड़ा विस्तार है? जितना समस्त असंख्याते द्वीप समुद्रोंका है उससे भी कुछ बड़ा है एक समुद्र केवल। इतने बड़े समुद्रमें जो मगरमच्छ होता है वह बहुत विशाल होता है। तो सबसे बड़ा स्थूल शरीर सम्मूर्छनके होता है, इसलिए सम्मूर्छनका नाम पहले लिया है। दूसरी बात उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट अगर आयु मिले तो सम्मूर्छन जीवोंकी आयु कुछ हजार वर्ष पर्यन्त ही होती है। तीनों प्रकारके उत्पन्न होने वाले जीवोंमें सबसे कम आयु वाले सम्मूर्छन जीव होते हैं इस कारण सबसे पहले सम्मूर्छनको ग्रहण किया। उससे ज्यादा जिंदा रहते हैं गर्भज जीव। गर्भ जन्म वाले जीव तीन पल्य तक जीवित रह सकते हैं। पल्य बहुत बड़ा होता है जिसमें अनगिनते वर्ष समा जाते हैं। और उससे अधिक आयु होती है उपपाद जीवोंकी। देव और नारकियोंकी आयु ३३ सागर तक होती है। ये तीन तरहके जन्म हैं—सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद।

जन्मोंकी विचित्रताका कारण भावोंकी (अध्यवसायोंकी) विचित्रता—देखा यह जन्म व्यवस्था कैसी प्राकृतिक है, कैसी सुन्दर बताई गई कि जिसमें कोई विरोध आपत्ति नहीं आती है, सब सही कथन मिलता है। तो जन्म यों तीन प्रकारके होते हैं—(१) सम्मूर्छन, (२) गर्भ और (३) उपपाद। अब इन जन्मोंको देखकर कहें तो ये तीन भेद हैं। और उन तीनोंमें भी आवान्तर भेद बहुत हैं। तो इतने प्रकारके विचित्र जन्म जो जीवके हो रहे हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इतनी जो सृष्टियाँ चल रही हैं इन सृष्टियोंका करने वाला कौन है ? जिसकी सृष्टि हो रही उसी जीवने पहले ऐसा अध्यवसाय किया, भाव किया, परिणाम बनाया, जो असंख्यात प्रकार के अनगिनते तरहका भाव बनाया उसका निमित्त पाकर उस ही के अनुकूल अनगिनते प्रकार के कर्मोंका बंध व फिर उदय हुआ। उनका जब फल उदयमें आया तो ऐसी विचित्र स्थितियाँ बन जाती हैं, यह है जीवकी सृष्टिका एक मूल कारण याने जो जैसे भाव करता वह उस प्रकारका जन्म लेता। कुछ कल्पनायें करके भी सोच सकते। एक खटमल नामका कीड़ा होता है जो कि खाटमें बहुत पाया जाता है। वैसे तो खटमल तख्तमें भी होते, कपड़ोंमें भी होते, संदूकमें भी होते, आलमारीमें भी होते, वे तो हर जगह पैदा होते तो संदूकमल, तख्तमल, आलमारीमल कुछ भी कह लो, पर एक रूढ़िसे उनका नाम खटमल रख लिया गया। ये खाटमें विशेषरूपसे पाये जाते, खाट सुलभ चीज है, प्रत्येक घरमें कई-कई खाट होती हैं, उनमें विशेष रूपसे पाये जाते, इसलिए उनका नाम खटमल रखा। खटमल रजाईमें आ गया, काट लिया मनुष्यको, पर जब वह खटमलको ढूंढ़ने लगता है तो खटमलके यद्यपि आँखें नहीं हैं, फिर भी ऐसी उसमें कला होती कि वह बड़ी जल्दी इधरसे उधर, उधरसे इधर छुप जाता है, उसे कोई आँखोंसे देख नही पाता कि कहाँसे कहाँ गया खटमल। सम्भव है कि जो मनुष्य यहाँ लुक-छिपकर बड़ी कलासे चोरी करते हों वे मरकर खटमल बन जाते हों। वहाँ कुछ ऐसे ही कर्मोंका बन्धन होता कि ये ऐसी दशायें होती हैं।

एक ऐसी लोग छोटीसी कथा कहते हैं कि एक रजाईमें जूं नामका कीड़ा रहता था। वहाँ एक खटमल पहुंचा। जूंसे बोला खटमल कि भाई हमें भी यहाँ रह जाने दो, इस रजाई में सोने वाले मनुष्यका खून बड़ा मीठा है। तो जूंने खटमलको मना कर दिया कि यहाँ तुम नहीं रह सकते। जब बड़ा निवेदन किया खटमलने तो जूं ने एक शर्त रखी कि तुमको यदि यह शर्त मंजूर है कि पहले मैं (जूं) उस मनुष्यका खून पी लूं बादमें तुम (खटमल) खावो तो यहाँ रह सकते हो। खटमलने तुरन्त तो जूँ की शर्त मंजूर कर लिया, पर उस बदमाश खटमलने क्या किया कि उस रजाईमें सोने वाले मनुष्यका खून जूँ से पहले ही खाना चाहा। वहाँ उस मनुष्यको खटमलने काट लिया, वह मनुष्य उठा तो खटमलको न पाया, वह कहीं छिप गया और मिल गई जूं साहब तो उसको उस मनुष्यने मार डाला। यहाँ ऐसी शिक्षा दी गई है कि ऐसे चंचल लोगोंको अपने घरमें स्थान नहीं देना चाहिए। तो कैसे-कैसे जीवके परिणाम होते हैं और उन परिणामोंके अनुसार कर्मबन्धन होता है और उसके अनुसार फिर जन्म होता है। तो ये जन्मकी जो विचित्रतायें हैं वे सब भावकी विचित्रतासे होती हैं।

सांसारिक सृष्टियोंमें वस्तुस्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिक योगका ईक्षण—देखो निमित्त-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नैमित्तिक योग भी निरखते जाना और साथ ही साथ वस्तुस्वातंत्र्य भी। जैसे भाव किया वैसा कर्मका बन्धन हुआ, यह तो निमित्तनैमित्तिक योग है। मायने जीवने जो कुछ किया सो जीवमें ही और कर्मने जो कुछ किया सो कर्ममें ही। एक पदार्थ दूसरे पदार्थका परिणमन नहीं कर सकता। ये जितनी भी जन्मकी विचित्रतायें दिख रही हैं वे सब उतने प्रकारके जीवके अध्यवसान हुए, उस सिलसिलेमें निमित्तनैमित्तिक योगवश ये सब विचित्रतायें प्रकट हो गईं।

जात्या जन्मका एकत्व—एक आशंका हो सकती है कि जन्म तो तीन बताये हैं—सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद और इसका समास करके बहुवचन भी दिया है, तो जब विशेषण बहुवचन वाला है तो जन्मको भी बहुवचनमें लेना चाहिए था, क्योंकि जितनी चीजें डालें तो विशेष बहुवचन होगा, क्रिया भी बहुवचनकी होगी, मगर यहाँ जन्म एकवचनमें दिया तो इसका क्या कारण है? तो कारण यह है कि बताना एक जन्मको है और जन्म जातिकी अपेक्षा एक ही बात है। चाहे सम्मूर्छनके ढंगसे उत्पन्न हो, चाहे गर्भ और उपपादके ढंगसे उत्पन्न हो, पर वह तो जन्म ही है। तो जन्मकी एकता जन्म सामान्यसे ली गई है। और यहाँ उसके प्रकार तीन बताये गए हैं, ऐसा कई जगह प्रयोग हुआ। एक सूत्र आया है 'जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षाः तत्त्वं,' तो इसमें मोक्षाः बहुवचन शब्द दिया है क्योंकि ये जीव अजीव आदिक ७ तत्त्व हैं और तत्त्वं एक वचन कहा। जब ७ बातें हैं तो तत्त्वमें भी बहुवचन क्यों नहीं लगाया गया? क्योंकि तत्त्व भाव अपेक्षा एक स्वरूप है। उसके जाननेके प्रकार हैं ये ७ और उनसे समझा जाता है। परमार्थ और व्यवहारपरमार्थ तो एक रूप होता है और परमार्थको समझानेके लिए जो वचन प्रयोग है उसे कहते हैं व्यवहार। व्यवहार नानारूप होता है तो एक शैली है कि जो अविशेषरूपसे विकल्प बनाये बिना केवल एकमें तत्त्वको समझता है जन्म तो उसको समझनेके लिए भेद जब किया जाता तो भेदमें तो बहुत दे रहे, पर जिस तत्त्वको समझना है उसमें एकत्व ही बन जाता है। इस तरह जन्म एकवचनमें रखा गया और सम्मूर्छन, गर्भ, उपपाद ये बहुवचनमें रखे गए। जन्म तीन प्रकारके होते हैं—(१) सम्मूर्छन, (२) गर्भ और (३) उपपाद।

सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद—इन तीन जन्मोंमें आपेक्षिक महत्ताका विचार—अब इसमें यह बात देखो कि हो तो गया जन्म, जन्म अच्छा तो न था, क्योंकि जन्म तो दोष है, कलंक है, जन्मरहित होता तो यह जीव भगवान ही था, याने जो सहज स्वरूप है वही व्यक्त कहलाता। पर फंस तो गये, अनादिसे फंसे चले आ रहे, जन्म तो हो रहे। अब इन जन्मोंमें यह बात देखें कि भला जन्म कौनसा है जिस जन्मको पाकर इस जीवका भला हो जाय?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद—इन जन्मोंमें सम्मूर्छन जन्म तो कोई भला नहीं है। यह तो एकेन्द्रियके भी है, कीड़ा मकोड़ाके भी है और कुछ संज्ञी पञ्चेन्द्रियके भी है। सम्मूर्छन जन्म वालें जो ऊँचे जीव होंगे वे अधिकसे अधिक सम्यक्त्व तककी प्राप्ति कर लें और कोई कोई श्रावकके देशव्रत भी ले सकते हैं अपनी परिस्थितिके अनुसार, पर इससे अधिक विकास सम्मूर्छन जन्म वाले जीवका नहीं है। उपपाद जन्म वाले जीवोंकी बात देखो—लौकिक दृष्टिमें देवता लोग बड़े सुखी माने जाते हैं, उनका वैक्रियक शरीर है, उनको कोई शारीरिक कष्ट नहीं हैं, लेकिन ज्यादासे ज्यादा वे सम्यक्त्व तकका लाभ ले सकते हैं, इससे अधिक विकास उनका नहीं है। भला उनसे अधिक विकास तो सम्मूर्छन जन्म वाले ले सकते हैं। वे भी ५वें गुणस्थान तक हो सकते और गर्भजन्म वाले तो उस भवको त्याग कर मुक्त भी हो सकते हैं। तो इन तीनों जन्मोंमें एक गर्भजन्मको श्रेष्ठ समझ लो। उनमें भी सबका नहीं, जिनका भवितव्य अच्छा है उनकी बात कह रहे। तो मानो [illegible] कारण गर्भ शब्दको बीचमें रख दिया कि यह सर्वश्रेष्ठ है। अगल-बगल न रखेंगे तो थोड़ा घिनघिना जायगा, यह बड़ा महत्त्वशाली जन्म है। इसलिए इसको बीचमें बनाये रहें ताकि इसका महत्त्व और इसकी सुरक्षा बराबर कायम रहे। तो यह जीव कर्मवश इस तरहसे जन्म लेता रहता है। वे जन्म कितनी तरहके हैं, उनके प्रकार इस सूत्रमें बताये गए हैं—

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

योनियोंके वर्णनके प्रसंगका सम्बन्ध—जन्मकी योनियाँ ९ प्रकारकी हैं—सचित्त, शीतसंवृत, अचित, उष्ण, विवृत्त, सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत। इस सूत्रसे पहले जन्मोंका वर्णन था कि संसारी जीवोंके जन्म कितने तरहके होते हैं? तो जन्म बताये गए थे तीन प्रकारके। कोई तो बिना माता-पिताके यहाँ वहाँकी चीजोंके मिल जानेसे जीव उत्पन्न हो जाते हैं, उनका जन्म कहलाता है सम्मूर्छन और माता-पिताके रज-वीर्यके सम्बन्धसे जो जन्म होता है उसे कहते हैं गर्भजन्म और शैया स्थान पर पहुंच जाये जीव या अन्य स्थानों से विक्रिया वर्गणाओंको ग्रहण करके बन गया उसे कहते हैं उपपाद जन्म। यहाँ जन्मके मायने भवग्रहण हैं। तो जन्मकी बात सुनकर एक यह जिज्ञासा बनती है कि ये जन्म होते किस-किस स्थानपर हैं? उसके उत्तरमें यह सूत्र आया है। जन्म होने के स्थानका नाम योनि है। योनि एक साधारण शब्द है, जैसे गोबर मूत्रका संयोग हो गया वह भी योनि है। उसमें बिच्छू, मच्छर वगैरह उत्पन्न हो जाते हैं। तो योनिका अर्थ है जन्मस्थान तो इन जन्मस्थानोंका वर्णन इस सूत्रमें किया जा रहा है।

नव जन्मस्थानोंमें प्रथम तीन जन्मस्थानोंके स्वरूप—पहले जन्मस्थानका नाम है

http://sahjanandvarnishastra.org/

सचित्त। सचित्त कहते हैं चैतन्यके परिणामको याने ऐसी जगह जहाँ बहुत जीव बने हुए हैं, वहाँ किसीका जन्म हो तो कहते हैं कि उसका जन्मस्थान सचित्त है। जैसे निगोदिया जीव वहीं तो पैदा हो जाते हैं जहाँ बहुत सचित्त स्थान हो। तो आगे बतायेंगे कि किनके सचित्त जन्मस्थान है, किनके क्या है, वहाँ और स्पष्ट होगा। पहले तो इन ९ का अर्थ समझ लो। देखो जो लोग कहते ना कि ८४ लाख योनियोंमें जीव भटकता फिरता है सो सुना तो बहुत होगा और लोग भी बहुत कहते हैं पर ८४ लाख योनियाँ क्या कहलाती ? तो इसका उत्तर बहुत ही कम लोग दे पायेंगे। जैनशासनमें उसका उत्तर दिया है कि वे हैं तो मूलमें ९ प्रकारके, पर उसके और भेद बढ़ते हैं तो ८४ लाख योनि होती हैं, तो वे ९ कौन सी हैं ? पहली है सचित्तयोनि, जीव सहित। दूसरा जन्मस्थान है शीत। जैसे मच्छर कहाँ ज्यादह पैदा हो जाते, जहाँ सींड़ हो, शीत हो, तो ऐसे ही जीवोंकी उत्पत्ति ऐसे स्थानमें होती है कि जो ठंडा स्थान हो, शीत हो तो उन[illegible]न्मस्थान कहलाया शीत। और संवृत मायने ऐसा स्थान जो दूसरेको दिख न सके, जिस स्थानको कोई दूसरा जान न सके वह है संवृतयोनि। तो ये तीन हो गए, सचित्त शीत और संवृत। संसारमें जीव जन्म लेता है, मरता है, किस तरह जन्म लेता है, कैसा एक ओटोमेटिक सारा काम चल रहा है ? कर्मका उदय है। परमाणुओंका सम्बंध है तो किस जगहमें क्या-क्या बात होती है ? वह सब बात कही जा रही है। तो जीवके भवग्रहण याने जन्मस्थान ये तीन प्रकारके पहले बताये। ऐसी जगह जहां बहुत जीव हों, ऐसी जगह जो बहुत ठंडा हो, ऐसी जगह जो किसीके देखनेमें हो न आ सके और पैदा हो जायें जैसे देव नारकी हैं, इनका स्थान, इनका जन्मस्थान कोई देखनेमें थोड़े ही आता। पैदा हो गए अथवा एकेन्द्रियका जन्मस्थान कोई समझमें देखनेमें थोड़े ही आता। गेहूं बो दिया, जन्म हो गया जीवका, अंकुर हो गया, हो तो गया और मोटे रूपसे कह देते हैं कि यह है मगर कैसे पैदा हुआ, क्या बना, उस पैदा होनेके समयकी बातको कौन जान लेता है ? तो कुछ धाम ऐसे होते हैं कि जिनको कोई निरख नहीं पाता।

चौथेसे नवें तकके जन्मस्थानोंके स्वरूप—आगे चलिये—३ जन्मस्थान उक्त तीन स्थानोंसे उल्टे हैं। ऐसा जन्म जो अचित्त है, जहाँ जीव नहीं हैं, जिन जीवोंका जन्म होता है उपपाद शय्यापर, वह स्थान बिल्कुल अचित्त है, वहाँ जीव कौनसे होते ? ऐसे ही नारकीके जन्मस्थान अचित्त होते हैं, तो कुछ स्थान अचित्त होते हैं, कुछ गर्भ होते हैं। जैसे अग्निकाय का जीव पैदा होगा कहाँ जहाँ गर्म हो। यह जुदे-जुदे शरीर वाले जीवोंका कैसे-कैसे स्थानोंमें जन्म होता है ? अच्छा विवृत मायने बिल्कुल प्रकट कीड़े-मकोड़ोंका स्थान। कूड़ा हो, कचरा हो, गारा बहुत दिनोंका पड़ा हो तो विकलत्रयोंके वहाँ जन्म हो जाते हैं सबके ज्ञानमें यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात है । देख ही रहे हैं । तो कुछ जन्मधामसे होते हैं जो विवृत हैं । यों ६ प्रकारके योनि-स्थान बन गए । अब तीन हैं मिले हुए—मायने सचित्ताचित्त । कुछ जीवसहित हैं, कुछ जीव रहित हैं, ऐसे मिले हुए स्थान हों तो वह भी किसी जीवका जन्मस्थान बनता है । कुछ होते हैं शीतोष्ण याने जहाँ ठंड भी है, गर्म भी है, ऐसी जगहमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, तो वह शीतोष्ण जन्म हुआ । कुछ होते हैं संवृतविवृत याने कुछ समझमें आते, कुछ नहीं आते, ऐसे जन्मस्थान । तो ये जन्मोंके स्थान ९ प्रकारके होते हैं ।

सूत्रमें निक्षिप्त 'च' शब्दकी सार्थकता—देखो जिसको यह सूत्र याद हो, प्रायः लोग पढ़ते तो रहते हैं सूत्र पाठमें । तो इस तरहसे सूत्र दिया है—"सचित्तशीतसंवृताः" पहले तो ये तीन नाम दिए, फिर कहा "सेतराः" मायने इन तीनोंके उल्टा भी ले लो, फिर कहा मिश्राः याने इन दोनोंका मिला हुआ ले लो और फिर कहा च, तो इस "च" पर शंका हो रही है कि च लिखनेकी क्या जरूरत थी ? जैसे कोई तीन आदमियोंको बुला रहा हो तो फलाने, फलाने, फलाने ये नाम ले लिए, हो गया काम । अब फलाने और फलाने और फलाने, यों और-और कहनेकी क्या जरूरत है ? नाम ले लिया हो गया । तो 'च' का अर्थ होता है और । नाम जब सबके लिये तब 'च' कहनेकी क्या जरूरत ? समाधान—बहुत जरूरत है यहाँ । च कहनेसे ये ९ बातें अलग-अलग ज्ञानमें आ गईं । नहीं तो केवल मिश्रकी ही तीन ही बातें रहतीं । कहना तो यह है कि सचित्तशीतसंवृताः और इनका उल्टा अचित्त उष्ण विवृत और इनका मिश्र सचित्ताचित्त, शीतोष्ण व संवृतविवृत—यह अर्थ हुआ । यदि 'च' शब्द न देते तो ये अलग-अलग नहीं ग्रहणमें आते । और शब्दके देनेसे ये ९ ग्रहणमें आते हैं । ऐसे ९ प्रकारके जीवके जन्मस्थान होते हैं । निमित्तनैमित्तिक भाव देखते जावो यहाँ । ठंडा हो, गर्म हो, किसीमें कुछ, किसीमें कुछ जीव उत्पन्न हो सकते हैं । बस वह सब निमित्तनैमित्तिक भावकी बात है । ऐसे ९ प्रकारके जन्मोंके स्थान होते हैं । 'च' शब्दका अब सार्थकपना आ गया ना और इस 'च' शब्दसे यह भी बात जाहिर होती है कि ९ नहीं, और और जितने भेद बनाये जा सकें तो उतने बताये जावें, सो बताये गये ८४ लाख योनि ।

एकशः व तद्योनयः शब्दोंका तात्पर्य—"च" के बाद शब्द दिया—"एकशः" मायने क्रम क्रमसे रखना ये ९ भेद और इन दो-दो को मिलावो तो क्रम-क्रमसे मिलाना । यह बात बतायी गई है क्रमशः शब्द देनेमें । फिर बोलते हैं तद्योनयः मायने उनको योनियां मायने जन्मकी योनियाँ हैं । जन्म होते हैं उनके ये स्थान हैं जन्मस्थान । सभी जीवोंके जन्मस्थान हैं मेढकोंका, मच्छरोंका, मक्खियोंका । देखिये जब चैतका महीना होता है तो कितनी मक्खियाँ आ जाती हैं ? तो उस योग्य वातावरण मिल गया और वहाँ जन्मस्थान बन जाता ।

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो जन्मस्थानका नाम योनि है। तो ऐसे-ऐसे ६ भेद बताये गए। यहाँ एक बात और जानने के लिए है कि जन्म और योनिमें अर्थका फर्क क्या ? फर्क यह है कि जन्मके मायने तो प्रकट हो गया, जन्म हो गया और योनिके मायने उस आधारभूत स्थानमें कहां पैदा होते ? वे मिट्टी, खाद, पानी, बीज आदि वहांका जैसा वातावरण हैं वह है उस अंकुरका योनिस्थान। तो किस जगह रहकर जीव जन्म पाते हैं, यह बात बतायी गई योनि शब्दसे जन्मका प्रकरण सुनाकर।

संसारकी प्राकृतिक विधानरूपता—संसारी जीवोंका कैसा ओटोमेटिक काम चल रहा है, भाव बन रहा है, कर्मबन्ध हो रहा है, उसका उदय आया है, उसके अनुसार शरीरके परमाणु ग्रहणमें आ रहे हैं और जैसी जहाँ जो बात हो सकती है उस प्रकार होती जा रही है। यह सब ओटोमेटिक प्राकृतिक काम चल रहा है। प्राकृतिकके मायने क्या है ? लोग कह तो देते हैं कि यह प्राकृतिक दृश्य है और प्रकृति बहुत सुन्दर है। तो उस प्रकृतिके मायने क्या ? तो कह देंगे कुदरत पर बताओ तो सही कि वह कुदरत क्या है ? प्रकृति क्या है ? तो लोगोंने ये प्रकृति, कुदरत आदिक नाम तो सुन रखा है और मुखसे बोलते भी हैं, सही प्रयोग भी करते हैं पर यह नहीं जानते कि उस प्रकृतिका, उस कुदरतका स्वरूप क्या है ? तो प्रकृतिके मायने हैं १४८ कर्मके भेद। कर्मकी १४८ प्रकृतियाँ बताई गई हैं और १४८ ही नहीं बल्कि अनगिनते। जो प्रकृतियाँ हैं उनके उदयमें होने वाली जो बात है उसे प्राकृतिक कहते हैं। जैसे पर्वतोंपर रंग बिरंगे फूल फूल रहे हैं, पर्वतोंका आकार बड़ा सुन्दर सा जंच रहा है, पानीके झरने बह रहे हैं, वृक्ष भी खड़े हैं, ऐसे दृश्यको देखकर लोग कहते हैं कि ये प्राकृतिक दृश्य हैं। तो उस प्रकृतिके मायने क्या ? प्रकृतिके उदयसे बना हुआ वह दृश्य है। वे फूल जीव हैं ना, पत्थर जीव हैं ना, बढ़ते भी हैं, वे झरने जीव हैं ना, उनकी सृष्टि हुई है तो यह कर्मप्रकृतिके उदयसे ही तो हुई है। तो किस जगहमें जीव जन्म लेता है उन जन्म-स्थानोंका यह वर्णन चल रहा है। यह प्रकरण सुननेमें शायद आप लोगोंको कुछ कठिन लग रहा होगा, पर कह तो रहे हम तुम सब जीवोंकी ही बात। और अगर ये बातें सुनना कुछ कठिन लगता हो तो कोई ऐसा उपाय कर लो कि ये बातें सुननी ही न पड़ें। वह उपाय क्या है कि अपने आत्माके स्वरूपकी सुध करना। फिर न तो जन्म होंगे, न जन्मस्थान होंगे, न इन जन्मस्थानोंकी फिर चर्चा ही सुननी पड़ेगी, न फिर यह चर्चा कठिन ही लगेगी। जो लोग ऐसा कर नहीं पा रहे इसलिए उनकी ही बात सुनाई जा रही है। तो योनि और जन्म में आधार और आधेयका भेद है। जन्मस्थान तो आधार है और जन्म आधेय है। मायने किस जगह अधिष्ठान होकर जीवका शरीरमें ग्रहण होता है—यह बात बतायी जा रही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो ये ९ प्रकारके जन्मस्थान हैं।

जन्मस्थानोंके नामोंका सूत्रोक्त रखा जानेका कारण—इन योनियोंके नामोंका क्रम ऐसा क्यों दिया गया कि पहले सचित्त कहा, फिर शीत कहा, फिर संवृत कहा ? तो इसका कारण यह है कि सचित्त मायने जीवसहित, चित्तसहित, चैतन्यसहित। तो चैतन्य द्रव्य तो सबमें प्रधान है। तो जो प्रधान बात है उससे सम्बंधित बात पहले ली गई, क्योंकि सचित्तमें चित्त है, जीव है। सब द्रव्योंमें जीवद्रव्य प्रधान है, इस कारण सचित्तका नाम पहले कहा। यहाँ चित्तका अर्थ जीवद्रव्य नहीं, किन्तु चैतन्यका (जीवका) परिणाम इससे जो सहित है वह सचित्त है। इसके बाद 'शीत' शब्द क्यों कहा ? तो शीत जन्मस्थानसे सचित्त होनेका एक निकट सम्बन्ध है। प्रायः करके जो शीत स्थान होता है वह सचित्त होता है। ठंडी जगह बहुत जीवोंपर व्याप्त होती है। गर्म स्थानमें जीवोंकी बहुलता नहीं होती है। सचित्त-पना वहाँ होता है जहां शीत है। चूंकि शीतका सचित्तके साथ निकट सम्बंध है, इसलिए सचित्तके साथ शीत बन गया, और संवृत मायने जो अपने लक्ष्यमें न आये ऐसा जन्मस्थान। तो उसका नाम बादमें लिया। यह सूत्ररचना है, इसको आचार्य संत वीतराग ऋषि संतोंने बहुत कठिन-कठिन तपश्चरण करके, बड़ी एक अध्यात्मसाधना करके जो उन्होंने विशाल ज्ञान पाया है वह हम आप लोगोंपर करुणा करके तथा हम आप लोगोंपर दया करके उन्होंने रचना की। तो जिनको शास्त्रोंके तत्त्वका ज्ञान करनेकी रुचि नहीं जगती, परिणाम नहीं होते, सुहाता नहीं और बड़ी घबड़ाहटसी लगती है शास्त्र सुननेमें, फिर बाट भी देखते हैं कि कब यहांसे निकलनेका मौका मिले। जब किसीने थोड़ा अगल-बगल मुख कर लिया तो झट उठकर चुपकेसे चले जाते हैं, और आचार्यजन इन्हींपर दया करके और अपने तपश्चरणमें कमी करके ग्रन्थरचना करते हैं और जिनके लिए दया की गई है उनकी प्रवृत्ति ऐसी रहती है तो क्या है, यह सब कर्मोंकी विचित्रता है, नहीं सुहाता, नहीं रुचि होती इन आचार्य संतों की वाणी सुननेकी, ये विषयकषाय ही रुचिकर बन रहे हैं, यह सब कर्मोंकी विचित्रता है। हां यह बात कह रहे थे कि इन ९ का नाम इस क्रमसे क्यों रखा गया ? तीनका तो बता दिया। अब तीनके जो उल्टे हैं वे उल्टे भी उसी क्रमसे चलेंगे। अचित्त, उष्ण और विवृत। और फिर जब मिश्र कहेंगे तो वह भी उसी क्रमसे बन जायगा। इस तरह ये जन्मस्थानके ९ भेद हैं। जरा ९ भेदोंका नाम और स्वरूप ध्यानमें रखना तो यह बात समझमें आयगी कि इन जीवोंका इस प्रकारका जन्मस्थान होता है। देखो ये जन्मस्थान कितने हुए ? ९। ९ ही नहीं हजार, हजार भी नहीं बल्कि लाख। इतने प्रकारके जो जन्मस्थान हुए और उतने प्रकारके जन्मस्थानोंमें जीवका जन्म हुआ, तो यह विचित्रता ही तो है ना। इसका कारण है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मोंकी विचित्रता। अनेक प्रकारके सुख भोगना, दुःख भोगना, सुकुमाल होना, क्रोधी होना, कठोर होना आदिक आदिक जैसे-जैसे अध्यवसाय होते हैं वैसा-वैसा कर्मबंधका वातावरण होता और वैसा ही उदय होता, वैसा ही यह योग मिलता।

जन्मस्थानोंपर जन्म लेनेके अपराधका संक्षिप्त वर्णन—ये सब जन्मस्थान यहाँ ६ बताये गए हैं। उनमें से देखो अचित्त जन्मस्थान किसका होता है याने ऐसी जगह जन्म होता जहाँ जीव नहीं होते, अचित्त प्रासुक जगह है ऐसी जगह जन्म किन जीवोंका होता? तो बतायेंगे देव और नारकियोंका। देखो संसारमें ये सारे जीव बताये जा रहे हैं, ये जीव कैसे-कैसे जन्म लेते हैं, उन्हीं जीवोंमें से हम आप भी हैं। हम आपने भी जन्म लिया है, हम आपके भी जन्मस्थान हैं, तो उन्हें सोचकर यह ध्यानमें रखना चाहिए कि यह तो सब कर्मोंकी छाया माया है। यह सब कर्मोंका चमत्कार हो रहा है। मैं तो एक शुद्ध चैतन्यस्वभाव हूं। मेरेमें स्वयंमें अपने आपमें ही कोई उल्टी लीला न हो। विविक्त अनादि अनन्त अपने स्वभावकी जो परख न कर सके वह धर्म कैसे पालन करेगा? धर्म नाम किसका है? तो आत्माका जो सहजस्वभाव है उस सहजस्वभावरूपमें रहना इसका नाम धर्मपालन है। कितने निष्पक्ष शब्द हैं ये। इसमें न मजहब है, न पक्ष है, न इसमें यह है कि किसका धर्म है? कोई सम्प्रदायकी भी बात नहीं। आत्माके नाते बात कही जा रही है। जो आत्माका स्वभाव है सो धर्म। जीव का धर्म क्या है? तो जीवका जो स्वभाव है उसमें वह ठहर जाय यह ही तो इस जीवका धर्म है। अब जो धर्मपालनके लिए व्यवहारमें अनेक बातें होती हैं—मंदिर बनाना, पूजा करना, जाप देना, शास्त्र सुनना, जप बोलना आदिक, तो ये सब किसलिए की जानी आवश्यक हैं? इसलिए कि हम अपने वास्तविक धर्ममें नहीं ठहर पाते, सो हम वास्तविक धर्ममें ठहरने लायक बने रहें उसके लिए यह सब व्यवहार धर्म है, सीधा यह धर्म नहीं है। मन्दिर जाना, देवदर्शन करना, जाप करना, पूजन करना, सामायिक करना, उपदेश सुनना, बड़े-बड़े धार्मिक समारोह मनाना आदि ये जो व्यवहारमें नाना बातें की जाती हैं वे सब साक्षात् धर्म नहीं हैं। साक्षात् धर्म तो है ज्ञाताद्रष्टा रहना, अपने स्वभावमें ठहरना। तो फिर यह व्यवहारधर्म क्या है कि जो साक्षात् धर्ममें नहीं ठहरे हैं उनके लिए एक ऐसा आलम्बन है कि इस ढंगसे किसी क्षणमें साक्षात् धर्मकी बात आ जाय। इसलिए यह व्यवहारधर्म कहलाता है। तो ऐसा धर्मपालन जब नहीं होता जीवोंके तो उनका जन्म होता, जन्मस्थान होता, शरीर मिलता और इस कारण सारे नटखट होते। जीवोंपर विपत्ति है तो विकारकी, विकल्प की विपत्ति है। ये विकार विकल्प हुए हैं इसका आधार है जन्म। न जन्म होता, न शरीर मिलता तो ये विचार विकल्प आदि किस आधारपर होते? इस कारण यह जन्म जीवके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए कलंक है, कोई अच्छी बात नहीं है। जैसे लोकमें लोग खुशी इस बातमें मानते हैं कि मेरे घर पुत्र उत्पन्न हुआ या अमुक उत्पन्न हुआ, तो यह तो उनके लिए एक कलंक है। और अपना जो कोई भी हो, उसके लिए ऐसा मोहभाव होता कि यह मेरा है तो यह मोहभाव तो उस जीवके लिए कलंक है। यह तो उस जीवकी बरबादीका कारण है। सारा संग जो आँखों दिख रहा है, प्रायः जहाँ लोग ठहर रहे हैं, ये सब इस जीवकी बरबादीके ही प्रसंग हैं, इनसे आत्माका कोई लाभ नहीं।

देव नारकियोंका अचित्त जन्मस्थान—हाँ तो आत्मबोधके बिना जीव कैसे-कैसे जन्म-स्थानोंपर जन्म लिया करता है, उनके प्रकरणमें अलग-अलग छाँट देखिये—अचित्त जन्मस्थान होता है देव और नारकियोंके। देवोंके जन्मस्थानकी उपपाद शैया बनी है, वहाँ प्रासुक जगह है और वहाँ ही विक्रिया योग्य आहारवर्गणायें भी हैं, वहाँ ही जीव उपपाद शैयापर गया और उन आहारवर्गणाओंको ग्रहण कर लेगा और थोड़ी ही देरमें वह एक छोटा बालकसा बन गया। (देवोंकी बात कह रहे) और अन्तर्मुहूर्तमें ही या यों समझ लो कि ४८ मिनटके अन्दर ही अन्दर वह जवान हो जाता। और जैसा उसका पुण्य है उस देवका, उस बच्चेका, उसके अनुसार आस-पासके अगल-बगलके नियोग वाले देव देवी सब जुड़ते हैं, मंगलगान करते हैं। जैसे यहाँ मनुष्य लोग बालक उत्पन्न होते समय मंगलगीत गाते हैं, ऐसे ही वहाँ भी देव देवियाँ नृत्य गायन आदि करके उत्सव मनाते हैं। कोई बड़ा देव हुआ तो वे देव लोग उसका स्तवन भी करते। जैसे कि यहाँपर मालिककी, राजाकी स्तुति की जाती, और वहाँ वह देव जो कुछ अच्छे पुण्यका है उत्पन्न होनेके बाद पहले वह अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदनाकी बात करता है। तो देवोंका योनिस्थान (जन्मस्थान) अचित्त है और इसी प्रकार नारकियोंका जन्मस्थान भी अचित्त है।

सचित्त आदि जन्मस्थानोंमें जन्म ले सकने वाले प्राणियोंका दिग्दर्शन—अब देखिये मिश्र याने जो कुछ सचित्त है, कुछ अचित्त है। ये गर्भज जीवोंके जन्मस्थान होते हैं। हम आप जहाँ उत्पन्न होते वह स्थान अचित्त भी है, सचित्त भी है। चिड़िया आदिक जो गर्भज हैं उनका जन्मस्थान सचित्त भी है, अचित्त भी है, सो सचित्ताचित्त कहा।

तो गर्भजन्म होता है जिनका उनके माता-पिता होते हैं, और माता-पिताका मुक्त शुक्रशोणित वह तो अचित्त है और जहाँ धारण है वह माता सचित्त है और स्थान भी सचित्त अचित्त होते। तो जो गर्भजन्म वाले जीव हैं उनका गर्भस्थान सचित्ताचित्त (मिश्र) होता है। उपपाद और गर्भ—इन दो की बात कह दी, अब जो सम्मूर्छन जीव हैं वे तीनों प्रकारके होते हैं—सचित्त भी होते, अचित्त भी होते और सचित्ताचित्त भी हैं। उष्णयोनि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसके है ? जैसे अग्निकाय, उसका जन्मस्थान गर्भ ही रहेगा। देखो जैसे यह बिजली है बादलोंकी, जब कभी यह तड़कती है तो वह भी अग्निकायक हो सकती। और अगर आप कहें कि वह तो ठंडेमें उत्पन्न होती तो आपको क्या मालूम है ? वह जो बिजली उत्पन्न होने का स्थान है, वह तो बड़ा गर्म है, लगता है ऐसा कि वह तो बड़े ठंडे स्थानमें पैदा होती है, पर उसकी रगड़, उसका वातावरण वह गर्म रहता है। तो अग्निकायिक जीव जहाँ-जहाँ उत्पन्न होते हैं उनका जन्मस्थान गर्म होता है। तो गर्म स्थान जो होते वे अचित्त हैं प्रायः। गर्भजोंके भी कुछ मिल गया, सचित्त भी है, और मिश्र भी हो गया। अच्छा अब इस जन्मस्थानके जो भेद किए जा रहे तो उन्हींके और भेद किए जा रहे। ठंडा, कम ठंडा, गर्म, ज्यादा गर्म—ऐसे भेद बनाकर सब भेद बनते हैं ८४ लाख योनि। देव और नारकियोंकी योनियाँ शीत भी हैं और उष्ण भी हैं। अग्निकायका जन्मस्थान होता है। बाकी तीनों तरह के चलते हैं।

अब तीसरी बात है संवृत और विवृत। यह संवृत गुप्त जगह है नारकियोंकी और एकेन्द्रियकी और विवृत याने खुली जगह है दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय जीवोंकी, याने जिस जगह ये जन्म लेते हैं उस जगहकी विशेषता बतलायी जा रही है और गर्भ वाले जीवों की मिश्र योनि होती है। इस प्रकार ये जीवके जन्मस्थानके भेद कहे, और 'च' शब्दसे बताया था कि और भी भेद लेना। तो वे भेद होते हैं ८४ लाख योनियाँ। जैसे नित्य निगोदकी ७ लाख, इतर निगोदकी ७ लाख, ये जन्मस्थानके भेद हैं। वनस्पतिकायकी दस लाख। दो-इन्द्रियकी दो लाख, तीनइन्द्रियकी दो लाख। ये जन्मस्थान कितने प्रकारके होते हैं कहा जा रहा है चारइन्द्रियके चार लाख। देवोंके चार लाख। नारकियोंके चार लाख और ऐसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके चार लाख। १४ लाख मनुष्योंके जन्मस्थान होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि व वायुकायिक जीवोंके ७-७ लाख जन्मस्थान हैं। ऐसी जगहमें ये जीव जन्म लेते हैं उसका कारण है कि यह अहंकार ममकारमें लगा हुआ है, इसलिए उसकी ऐसी विडम्बनायें होती हैं।

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥

गर्भज जीवोंका परिचय—जो जेर लेकर उत्पन्न होते हैं, जो अंडेसे उत्पन्न होते हैं, जो उत्पन्न होकर तुरन्त चलने-फिरने लगते हैं, ऐसे जीवोंके गर्भजन्म होता है। संसारी जीवों की क्या-क्या दशायें होती हैं, कैसे मरते हैं, कैसे नया शरीर धारण करने चले जाते हैं, किस तरह उन्हें शरीर मिलता है ? इन बातोंपर प्रकाश चल रहा है इस प्रसंगमें। जेरायु क्या चीज होती है ? एक जालकी तरह प्राणियोंको ढांकने वाली जो एक पतलीसी झिल्ली होती है वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जेरायु कहलाती है। जेर जिसे कहते हैं उस जेरके भीतर मनुष्य या पशु गर्भमें लिपटा रहता है और उस ही जेरका सम्बन्ध रहता है नाभिसे और उस नाभिके द्वारा ही आहार होता रहता है। तो ऐसी स्थितिसे जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं उन प्राणियोंके गर्भजन्म बताया है। अंड़ा क्या चीज है? जैसे नखका ऊपरी भाग होता है इस तरहका एक प्राणियोंको कठिन वाला आवरण है, अंडा उसे बोलते हैं लोग, जिसमें माता-पिताका शुक्रशोणित पड़ा रहता है। जैसे चिड़िया जो अंडे देती है वहाँ जो जीव उत्पन्न होता है वह गर्भजन्म बताया है। वह गर्भसे उत्पन्न होता है। पोत किसे कहते हैं कि जिसके अवयव सम्पूर्ण हैं और पेटसे निकलते ही तुरन्त चलने-फिरनेकी सामर्थ्य हो जाती है वे पोत कहलाते हैं। इस तरह जेरायुज, अंडज और पोत—इन जीवोंके गर्भजन्म हुआ करते हैं। यह गर्भमें पहुंचनेकी एक रीति बतायी जा रही है।

जन्मका अर्थ—यहाँ जन्म नाम किसका है? शरीरको ग्रहण कर लेनेका नाम जन्म है और जन्म नाम किसका है करणानुयोग पद्धतिमें कि जिस क्षण मरण रहा उसी क्षण जन्म हुआ। जैसे कोई मनुष्य है और मरकर देव होता है और मानो ८ बजे वह मनुष्य न रहे, ८ बजे वह मनुष्य मर गया तो इसका अर्थ यह ही है कि वह देव हो गया। एक समय का भी घट-बढ़ नहीं होता मरणका और जन्मका। तब ही तो कहते हैं ना जैसे कि निगोद जीवमें एक श्वासमें १८ बार जन्म-मरण है, तो क्या १८ जन्म हैं और १८ मरण हैं, क्या ऐसी ३६ बातें हैं? अरे जन्मका ही तो नाम मरण है, मरणका ही तो नाम जन्म है। उत्पाद व्ययकी तरह। जैसे एक सीधी अंगुली है और अब यह टेढ़ी हो गई तो यह बतलावो कि सीधी पहले मिटी कि टेढ़ी पहले हुई? तो आप तो कहेंगे कि एक ही साथ दोनों काम हुए। वही तो व्ययका समय है और वही उत्पादका समय है। तो मरण तो कहलाता है व्यय और जन्म कहलाता है उत्पाद। जिस क्षणमें मरण है याने मनुष्य आयु नहीं है उसी क्षणमें देव आयु है। तो करणानुयोग विधिसे तो जन्म वहाँ हो गया जहाँ कि पहली आयु न रहे, विग्रहगतिमें ही जन्म लेकर है वह, लेकिन शरीर ग्रहणको जन्म कहते हैं, यह प्रसंगका मुख्य कथन है। विग्रहगतिसे चलकर जब गर्भकी जगह जीव पहुंच गया और वहाँ परमाणुओंका ग्रहण करने लगा तो उसका नाम जन्म और लोकरूढ़िमें जब गर्भसे निकला, बाहर प्रकट हुआ, उसे कहते हैं जन्म। तो तीन तरहके जीव हैं जिनके गर्भजन्म बताया जा रहा है—जेरायुज, अंडज और पोत।

जेरायुज, अंडज, पोत इस तरहका सूत्रमें क्रम रखा जानेका कारण—यहाँ एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि जेरायुज, अण्डज व पोत, इस प्रकारका सूत्रमें क्रम क्यों रखा?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और तरहका क्रम रखते । पहले अंडज कहते, पर पहले जरायुज कहा, फिर अंडज कहा, फिर पोत कहा । यह क्रम क्यों रखा गया ? बताओ इन तीनों जन्मोंमें मनुष्यका जन्म कौनसा है ? जेरायुज है । और कबूतर आदिक चिड़ियोंका जन्म कौनसा है ? अंडज । और सिंहका कौनसा जन्म है ? पोत । तो इन तीनोंमें जेरायुज पहले क्यों कहा ? तो उत्तर यह है कि जरायुजकी महिमा अधिक है, क्योंकि देखो इन तीनों तरहके जीवोंमें भाषा कौन बोल सकता ? शास्त्र कौन बोल सकता ? जेरायुज । तो वाणीका प्रसार और अध्ययनका प्रचार ये सब जेरायुजमें होते हैं, इसलिए महिमा है जेरायुजकी । एक बात, दूसरी बात—जेरायुजमें अनेक प्राणी बहुत प्रभावशाली उत्पन्न होते हैं । जैसे चक्रवर्ती, बासुदेव, नारायण आदिक बड़े ऊँचे-ऊँचे पुरुष होते हैं तो यह जेरायुजकी महिमा है । तीसरी बात—जेरायुज ही मोक्ष जा सकते, अंडज नहीं, पात मोक्ष नहीं जा सकते और रत्नत्रयमें भी इनके सकल संयम नहीं हो सकता, इसलिए जरायुजकी मुख्यता है । जरायुजका पहले ग्रहण किया, इसके बाद अंडज कहा, फिर पोत कहा । पोतसे पहले अंडज क्यों कहा ? तो पोतकी अपेक्षा अंडज कुछ विशेष महिमा रखते हैं, तोता (सुवा) सिखा देनेपर दोहा बोल देते हैं—'चित्रकूटके घाटपर भई संतनकी भीर । तुलसीदास चंदन घिसें, तिलक करें रघुवीर ॥' इतना बड़ा दोहा तक तोते अपने मुखसे बोल देते हैं सिखानेपर, किन्तु बोल तो लेते हैं, चाहे वे जानते नहीं हैं, मगर भाषाके रूपमें बोल तो लेते हैं कुछ । तो पोत जीव हैं सिंहाविक, उनकी अपेक्षा अंडज महिमा वाले हैं, इसलिए पोतसे पहले अंडज शब्द रखा । इसके बाद पोतका ग्रहण है सो ठीक ही है । यों जेरायुज, अंडज और पोत—ये तीनों नाम इस क्रमसे रखे गए हैं ।

जन्मभेदोमें प्रथम पठित सम्मूर्छनजोंका सूत्र न बनाकर गर्भ व उपपाद जन्म वालों का सूत्र कहनेके बाद सम्मूर्छन जन्म वालोंका सूत्र बनानेका कारण—देखो सूत्ररचना जो जो होती है वह इस ढंगसे होती है कि सिलसिला भी बने, थोड़े शब्द बोल दिए जायें और एक दूसरे सूत्रका आपसमें सम्बंध रहे, ऐसी कुशलताके साथ संत लोग सूत्रकी रचना किया करते हैं । तो इस बातसे अनभिज्ञ कोई पुरुष ऐसी शंका रख सकता है कि देखो जन्मके तीन भेद कह दिए—सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद । देखो इस शंकामें बात क्या कही जा रही शब्दोंमें ? जिस तत्त्वार्थसूत्रका पाठ किया जाता उस सूत्रमें शाब्दिक कुशलता, अर्थकी कुशलता, भावकी कुशलता, सब बातें पायी जाती हैं । शंकाकार यह कह रहा है कि जब जन्मके तीन भेद कहे—सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद तो इसी क्रमसे पहले सम्मूर्छनकी बात बतलाते हैं कि सम्मूर्छन कौन-कौन होते हैं ? तो यहाँ वहाँके जीव इकट्ठे हो गए और वहाँ जीव उत्पन्न हो गए जैसे गिजाई, बिच्छू, लट, पंखी आदि । ये सब सम्मूर्छन जीव हैं । अभी जरा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तेज पानी बरस जाय तो शामको ही देखो कितनी पंखियाँ हो जाती हैं। तो वे कहाँसे पैदा हो गईं ? अरे यहां-वहांसे कुछ परमाणु इकट्ठे हो गए, अनुकूल वातावरण मिल गए तो वे सब मक्खियां पैदा हो जाती हैं। इस तरह ये सम्मूर्छन जीव पैदा होते हैं। तो सम्मूर्छन जन्म किसके होता है ? यह बात बतानी थी। समाधान इसका यह है कि पहले यह जान लें कि गर्भ तो इनके कहलाया—जेरायुज, अंडज और पोतके और उपपाद कहलाया देव और नारकियोंका जन्म। सम्मूर्छन किसके होता ? एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय और कुछ तिर्यंच पंचेन्द्रियके भी सम्मूर्छन जन्म होता। मगरमच्छ आदिकके और मनुष्योंमें भी अनेक मनुष्योंके सम्मूर्छन जन्म होता। यहां दिखने वाले मनुष्योंकी बात नहीं कह रहे, किन्तु स्त्रियोंकी कांखसे, नाभिसे और अन्य गुप्त स्थानोंसे सम्मूर्छिम मनुष्य पैदा होते रहते हैं। उसमें माता-पिताकी जरूरत नहीं पड़ती। वह तो शरीरका स्वभाव है कि सम्मूर्छन मनुष्य बनते रहते हैं। वे दिखते नहीं, छिड़ते नहीं, निगोद्र जीवोंकी जैसी उनकी स्थिति है। नाममात्रके वे मनुष्य हैं। तो कोई-कोई मनुष्य भी सम्मूर्छन जन्म वाले होते हैं। तो अगर पहले सम्मूर्छन जन्म किसके होता ? यह बतानेको सूत्र रचते तो कितना बड़ा सूत्र बनाना पढ़ता ?····'एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां केषांचित्तिरश्चां पञ्चेन्द्रियाणां केषांचिन्मनुष्याणां सम्मूच्छंनम्।' इसका अर्थ है—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, कुछ पंचेन्द्रिय तिर्यंच, कुछ पञ्चेन्द्रिय मनुष्य, इनके सम्मूर्छन जन्म होता है। इतना बड़ा सूत्र बोलना पड़ता। अच्छा और गर्भ किसके होता और उपपाद किसके होता, यह बतानेके बाद बड़ी लम्बी लाइन नहीं बनानी पड़ती। जब गर्भ, उपपाद जन्मके स्थान बता दिये तो इतना ही कहना पड़ेगा—शेषाणां सम्मूर्च्छनम्॥ याने संसारी शेष जीवोंके सम्मूर्छन जन्म होता। तो यह बात ध्यानमें आयी कि सम्मूर्छन किसके होता है ? यह बात कहनेसे क्या फायदा मिला ? छोटासा सूत्र बना दिया। यहां यह अर्थ लेना सूत्रमें कि जरायुज, अंडज और पोत—इनके ही गर्भ जन्म होता है, अन्यके नहीं। अच्छा गर्भजोंकी बात कही, अब उपपाद जन्म किसके होता ? इसके लिए सूत्र कहते हैं—

देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥

उपपाद जन्म वाले जीवोंका निर्देशन—देव और नारकियोंके उपपाद जन्म होता है। जैसे यहां चौकी है ना, ऐसे ही स्वर्गोंमें शैयास्थान होते हैं, उपपाद शैया बड़े-बड़े होते हैं। उस उपपाद शैयापर एकाएक ही वह देव बच्चासा दिख जाता, देवोंके माता-पिता तो होते नहीं, कोई विडम्बना नहीं है। जैसे ही जीव मनुष्य या तिर्यञ्चगतिसे मरकर आया और देव होना है तो उस उपपाद शैयापर आ जाता। जैसे ही पहुंचा वैसे ही वहांकी वैक्रियक वर्ग-

http://sahjanandvarnishastra.org/

णायें, आहारवर्गणायें जो कि जीवके साथ लगी ही रहतीं। विस्रसोपचयके रूपमें तथा अन्य भी तो उन वर्गणाओंको ग्रहण कर लिया, शरीर बन गया। देखो सब जीवोंकी विचित्र-विचित्र स्थितियाँ होती हैं। देव उत्पन्न हुआ और ४८ मिनटके अंदर पूरा जवान बन जाता। मनुष्य तो बहुत वर्षोंमें जवान बनता, तिर्यञ्च थोड़े ही दिनोंमें जवान बन जाते, सम्मूर्छन जीवोंको तो जवान बननेमें अधिक देर नहीं लगती। सबकी अपनी-अपनी स्थितियाँ हैं। जो भोगभूमिया जीव हैं वे भी माता-पिताके गर्भसे ही होते हैं, पर जैसे ही बच्चा-बच्ची दोनों एक साथ उत्पन्न होते वैसे ही उनके माता-पिता गुजर जाते हैं। आप सोचते होंगे तब तो भोगभूमिमें बड़ा दुःख है। अरे वहाँ दुःख काहेका? दुःख वहाँ नहीं है, इसीलिए तो माता-पिता बच्चा-बच्चीके पैदा होते ही मर जाते। न माता-पिताने बच्चोंका मुख देखा, न बच्चोंने माता-पिताका मुख देखा, फिर वहाँ दुःख कैसे हो सकता। दुःख तो मुख देखनेका है, संयोग का है, कुछ दिन साथ रहनेका है। तो वे भोगभूमियाके बच्चे ४९ दिनोंमें जवान हो जाते, पहले कुछ पैरका अंगूठा चूसते हैं, बच्चोंकी कुछ आदत भी ऐसी ही होती है। तभी तो बताया है कि अंगूठेमें अमृत होता है। बच्चोंका व विशेषतया भोगभूमियाके बच्चोंका शरीर इतना कोमल होता है कि वे उनके पैरोंका अंगूठा बराबर मुखमें आ सकता। इस तरह फिर और बड़े हुए, रेंगे, फिर यों चले। ये ७-७ दिनकी बातें हैं। इतनी जल्दी वे जवान हो जाते हैं। देव और नादकी ये ४८ घंटेके अन्दर ही अन्दर अपनी क्रियाके योग्य हो जाते हैं। हाँ तो देवोंका जन्म कब कहलाया? वहाँ तो देवगतिका, देवआयुका उदय हुआ, देव कहलाने लगा, वही जन्म है, लेकिन प्रकरणमें जब शरीरका ग्रहण हुआ उसे जन्म कहा है। तो देव तो उपपाद शैयापर बड़े ठाठसे बच्चे जैसा पैदा हो जाते हैं और नारकी इस जमीनके नीचे, इस जमीनके तीन खण्ड हैं। यह पहले नरककी बात कह रहे। तो तीसरे खण्डमें उसका जो हिस्सा है, जमीनसे वह गिरा और उस जमीनमें ही घंटाकार, बुरे आकारके योनिस्थान होते हैं, वहाँसे नारकी टपक पड़ते और जमीनमें गिरकर गेंदकी तरह कई बार उछलते और बाद में फिर ठहर पाते। तो जैसे एक कुत्तेको देखकर दूसरा कुत्ता उसपर टूट पड़ता है, ऐसे ही एक नारकीको देखकर दूसरे नारकी उसपर टूट पड़ते हैं, उसके तिल-तिल बराबर खण्ड कर डालते हैं। तो उपपाद जन्म वालोंमें भी देखिये कितना अन्तर हो गया? देव होना तो पुण्य का फल है और नारकी होना पापका फल है। तो इन देव नारकियोंका उपपाद जन्म होता है याने देवोंका शरीर रच गया, जन्म हो गया, नारकीका शरीर रच गया तो जन्म कहलाने लगा। तो गर्भज और उपपाद जन्म वाले जीवोंका तो वर्णन हुआ। अब एक जन्म और होता है तो वह किसके होता है, उसके लिए सूत्र कहते हैं—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचित्र है और अपने आप हो रही है। इस प्रसंगका वर्णन सुननेसे सबसे बड़ा फायदा तो एक यह है कि जो एक मोह बसा है लोगोंके कि इस संसारका रचने वाला कोई एक ईश्वर है, इसका निराकरण अपने आप हो जाता। वहाँ सुनते-सुनते ही यह ध्यान हो जाता कि यह सब निमित्तनैमित्तिक ओटोमेटिक हो रहा है। दूसरे इससे यह शिक्षा मिलती है कि देखो भाई रागेद्वेष मोह करनेका यह फल है कि इस संसारमें अनेक देहोंमें यह जीव विचर रहा है और ऐसे-ऐसे घोर दुःख भोग रहा है। यहाँ आप लोगोंने देखा होगा कि झोटोंपर कितना बड़ा बोझ लाद दिया जाता है? ७०-८० मन तकका बोझ लाद देते हैं, उनके कंधे भी सूजे हों, फिर भी उनपर डंडे बरसते। कौन उनपर दया करता? जब वे वृद्ध हुए, किसी कामके लायक न रहे तो कसाईखानेमें भेज दिए जाते? कौन उनपर रहम करता? बिरले ही लोग उनपर रहम करते। कितने ही लोग तो चूहे पकड़कर उनकी पूंछमें रस्सी बाँधते, उन्हें ऊपर किसी चीजमें बाँधकर लटकाते, नीचेसे आग जलाते, उस चूहेको आगके पास तक ले जाते। बेचारा चूहा तड़फता। कौन रहम करता उन बेचारे चूहोंपर? तो ऐसी-ऐसी दुःखकी स्थितियाँ यह जीव क्यों सह रहा है? बस अज्ञानसे, मोहसे, आत्माकी सुध न करनेसे देहधारी बन-बनकर सह रहा है।

जैसे एक शराबी किसी शराब वालेकी दूकानपर पहुंचा, बोला—जरा अच्छीसी शराब देना। तो दूकानदार बोला— अजी हमारे यहाँ एकसे एक अच्छी शराब है, हम आपको सबसे अच्छी शराब देंगे।···अजी बहुत ही अच्छी देना।····हाँ हाँ बहुत ही अच्छी देंगे। और यदि आपको विश्वास न हो तो हमारी दूकानके पीछे जो तुम्हारे चाचा ताऊ वगैरा नालियोंमें पड़े हैं, जिनके मुखपर कुत्ते भी मूत रहे हैं उन्हें ही देखकर अंदाज कर लो कि इस दूकानकी शराब बढ़िया है कि नहीं। तो ऐसे ही समझ लो कि इस अज्ञानके फलमें इस जीव की ऐसी-ऐसी दुर्दशायें होती हैं। इसी अज्ञानताका ही तो यह परिणाम है कि ये जीव नाना रूपोंमें नजर आ रहे हैं। इन रागद्वेष मोह अज्ञान आदिकका ही तो भयंकर फल है कि कैसे-कैसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है?

जन्मसंकटसे बचनेका उपाय सहजचित्स्वरूपमें अहंका अनुभव—अभी अपने बारेमें कोई कह दे कि तुम तो मरकर गिजाई बनोगे। तो यह बात सुनकर एक बार तो दिल काँप ही उठेगा और यह कह उठेगा कि हमें ऐसा जीव नहीं बनना है। अरे ऐसा जन्म यदि नहीं चाहिए तो अपने आत्माकी सावधानी बनायें। आत्माका जो यथार्थ सहजस्वरूप है उस रूपमें अपने आपको मान ले तो ये नाना प्रकारके देहोंमें जन्म लेना छूट जाय। जब अपने आपके प्रति ऐसा विश्वास बनाये हैं कि मैं तो मनुष्य हूं, व्यापारी हूं, ऐसी पोजीशनका हूं····

http://sahjanandvarnishastra.org/

शेषाणां सम्मूर्छनम् ॥३५॥

सम्मूर्छन जन्म वालोंका विवरण—शेष जीवोंमें ही सम्मूर्छन जन्म होता है। अब शेषमें बहुत आ गए। एकेन्द्रिय जितने हैं उनके सम्मूर्छन जन्म है। अभी आप नींबू या अमरूदकी डाली काट ले आयें और उसको गाड़ दें, उसमें थोड़ा खाद पानी वगैरा डाल दें तो उसका पेड़ बन जाता है। और ये घास, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक ये सब सम्मूर्छन जन्म वाले हैं। वहाँ कुछ स्कंध मिल गए, अनुकूल वातावरण मिल गया तो वहीं सम्मूर्छन जीवोंकी उत्पत्ति हो गई। न जाने कहांसे इतने जीव आ जाते, आप सोच रहे होंगे। सरसों तिल्ली आदिकमें कितने लट तिरूला दिख जाते। तो वहाँ बात क्या है कि वहां योग्य वातावरण हो कि इस शरीरकी रचना अपने आप हो जाती है। तो ये सम्मूर्छन जन्म वाले हैं दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय आदिक जीव। देखा होगा कि कहीं-कहीं चींटा-चींटीके झुंडके झुंड दिखाई पड़ते हैं। तो ये सब सम्मूर्छन जीव हैं, चारइन्द्रिय जीव भी सम्मूर्छन जन्म वाले हैं और पञ्चेन्द्रियमें कुछ तिर्यञ्च हैं, कुछ मनुष्य हैं, जिनके सम्मूर्छन जन्म होता है। तिर्यंचोंमें भी लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्च भी सम्मूर्छन हैं याने मनुष्योंकी तरह तथा जिनका शरीर भी दिखे और जिनका शरीर बड़ा लम्बा-चौड़ा है। ऐसे भी तिर्यञ्चपंचेन्द्रियोंके किन्हींके जन्म सम्मूर्छन हैं, पर मनुष्योंमें जिनका शरीर प्रकट आहारवर्गणाओं वाला नहीं है, जो स्त्रियोंके कांख आदिकसे निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं वे सम्मूर्छन जीव हैं।

देखो भगवानके ज्ञानमें यह सब प्रमेय आया। जो है सो ज्ञानमें आता है। नहीं तो ऐसे सम्मूर्छन मनुष्योंकी कौन चर्चा कर सकता था? कैसी-कैसी व्यवस्था बताई गई है और सब सही उतरती है। परीक्षा कर लो। कुछ वैज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि एक स्त्री जातिके पेड़का फूल भंवरा लाता है और पुरुष जातिके पेड़के फूलपर रख देता है, उससे फिर फल पैदा होते हैं, पर उनकी यह बात गलत है। वे वैज्ञानिक असली तथ्यपर नहीं पहुंचे। भले ही ऐसा संयोग हो कि एक पेड़का फूल दूसरे पेड़के फूलमें पहुंच जाय, तो फल बन जाये, लेकिन तब भी वह सम्मूर्छन हो कहलाया। उसमें पुरुष स्त्रीका भेद नहीं है कि यह पेड़ तो स्त्री जातिका है और यह पुरुष जातिका। संयोगसे भले ही हों फल वगैरा, फिर भी वे सम्मूर्छन ही हैं। उनमें माता-पिता जैसा, पुरुष-स्त्री जैसा कोई भेद नहीं होता। इसी तरह तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय जीवोंके भी कई लोग बतलाते हैं कि ये अंडेसे उत्पन्न होते, लेकिन वे अंडेसे नहीं उत्पन्न होते। वे अपनी चोंचमें भले ही कुछ अंडे जैसी चीज लिए रहते हैं, लेकिन वे अंडेसे नहीं उत्पन्न होते। वे तो यहां-वहांकी चीजोंसे ही अनुकूल वातावरण मिलनेपर बन जाते है। भले ही उससे वे पैदा हो जायें, लेकिन वे सम्मूर्छन कहलाते हैं, गर्भ वाले नहीं कहलाते।

जन्मवृत्तके परिचयसे आत्मलाभ ग्रहण करनेका संदेश—यह संसाररचना देखो कैसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो इसके फलमें तो इन नाना रूपोंमें जन्ममरण होता ही रहेगा। यदि जन्ममरण नहीं करना चाहे तो जन्म-मरणरहित अपना जो आत्माका सहज चैतन्यस्वरूप है उसकी दृष्टि करें। मैं यह हूं। जैसे यहाँ मानते कि मैं अमुक बच्चेका पापा हूं···देखिये पापा का क्या अर्थ है? पा मायने है पाप। और डबल पा हो जानेसे अर्थ हो गया कि डबल पाप करने वाला। तो जैसे यहां अपनेको लोग किसी न किसी रूपमें अनुभव करते रहते हैं, ऐसे ही एक अपने आपके आत्माका अनुभव बने कि मैं आत्मा तो ज्ञानानन्दका पिण्ड हूं, केवल एक चित्प्रकाश हूं जो स्वरूप स्वभावतः आनन्दको ही लिए हुए है। जब इतनी दृष्टि ये मोही अज्ञानी जीव नहीं करते तो बाहरके पदार्थोंमें ही अपना ज्ञान खोजते हैं, अपना सुख भी बाहरमें खोजते हैं। तो बाहरमें अपना सुख खोजनेके मायने हैं कि अपनेको बाहरमें ढूंढ़ना। जैसे कोई पुरुष रोये कि अरे मैं तो गुम गया तो लोग तो उसे देखकर हँसेंगे। सोचेंगे कि देखो यह कैसा पागलपनेकी बात कर रहा? खुद ही तो बोल रहा और कहता कि अरे मैं गुम गया। तो ऐसे ही जो बाहरमें सुख ढूंढ़ता है वह बाहरमें मानो अपनेको ढूँढ़ता है। तो सुख कहीं बाहर पाता नहीं। सुख तो आत्मासे अभिन्न चीज है। तो फिर वह अपने आपमें क्यों नहीं सुख ढूंढ़ रहा? तो जिसको सारी विडम्बनाओंसे बचना हो उसका कर्तव्य यह है कि वह जन्म-मरण रहित, रागद्वेष मोहादिक समस्त दोषोंसे रहित एक विशुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपका अनुभव करे, अपना विश्वास रखे कि मैं तो यह हूं।

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥

शरीरके प्रकार—शरीर ५ प्रकारके हैं—(१) औदारिक, (२) वैक्रियक, (३) आहारक, (४) तैजस और (५) कार्माण। अनादि अनन्त अहेतुक नित्य अन्तःप्रकाशमान सहज अन्तस्तत्त्वकी सुध बिना यह जीव शरीरको 'यह मैं हूं' ऐसा मानता है तो उसको शरीर मिलते ही रहते हैं। शरीर मिलनेकी विधि—जन्मस्थानपर पहुंचना और जन्म द्वारा शरीर परमाणुओंको ग्रहण करना। यह बताया ही गया था तो उसके बाद यह जिज्ञासा बनी कि वे शरीर कितने होते हैं जिनके सम्बंधके कारण इस जीवको नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। तो ये शरीर हैं ५, औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। औदारिक शरीरका अर्थ क्या है? तो पहले शरीरका ही अर्थ जान लो—शीर्यंते इति शरीरं, जो शीर्ण हो, जीर्ण हो, सड़े गले उसे कहते हैं शरीर। कोई कहे कि ऐसी तो दुनियाकी सारी चीजें हैं—ईंट, भींत, कपड़ा इत्यादि। वे सब तो अविशीर्ण होते हैं, तो साथमें एक बात और भी समझनी कि नामकर्मके उदयसे जो प्राप्त होता उसको शरीर बताया है। तो शरीरका शब्दरूढ़िसे यहाँ नाम रख लिया और शरीरमें एक गुण है भी, शरीर शीर्ण होता है। उर्दूमें भी एक 'शरीर'

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्द है, उसका अर्थ होता है बदमाश । वास्तवमें यह शरीर बदमाश है । इस शरीरके कारण ही तो सारे दुःख हैं ।

आकुलताके माध्यम शरीरसे सम्बंधित प्रसंगका परिचय—हम आप जीवोंका मनुष्य तिर्यञ्चका जो शरीर है इस शरीरका नाम है औदारिक शरीर । देव और नारकियोंके शरीर का नाम है वैक्रियक शरीर । बस इन दो प्रकारके शरीरोंकी बात स्थूलतया समझियेगा । मनुष्यगति और तिर्यञ्चगतिके जीवोंके शरीरका नाम है औदारिक शरीर, देवगति और नरक-गतिके जीवोंके शरीरका नाम है वैक्रियक । उदार कहते हैं स्थूलको, बड़ेको, घनको, जिसका प्रतिघात होता है उससे जो बने सो औदारिक । हम आप सबका शरीर इस ढंगका है । देखो शरीरकी बात भी समझते जाइये और यह भी निगाहमें रखते जाइये कि यदि मेरेको यह शरीर न मिला होता, मैं केवल अकेला ही चैतन्यमात्र यथार्थ जो सत्त्वके कारण है वह ही होता तो उसकी क्या स्थिति रहती ? विशुद्ध ज्ञान, विशुद्ध आनन्द । विशुद्ध आनन्द क्या ? जहाँ आकुलता नहीं । आकुलताके तीन कारण हैं—(१) उपादान, (२) निमित्त और (३) आश्रयभूत । उपादान तो हम ही हैं जो उस योग्य हैं, वैसी मलिनता रखते हैं, अपवित्र भाव रखते हैं, यह तो हम उपादान हैं, ऐसा हुए बिना आकुलता तो नहीं हो सकती, और निमित्त कारण है कर्मका उदय, असाताका उदय, मोहनीयका उदय । उसका निमित्त पाकर आकुलता होती है और आश्रयभूत कारण हैं जगतके ये सारे पञ्चेन्द्रियके विषय, मनका विषय, ये सारे प्रसंग आश्रयभूत कारण हैं । किसीको कहा जाय कि भाई तुम राग किसी वस्तुमें मत करो, और राग करो, तो उसके रागकी मुद्रा बन पायगी क्या ? उसमें कोई चीज विषय बनेगी तब तो रागकी मुद्रा बनेगी । अब उन विषयोंमें कोई नियतपना नहीं है, इस-लिए आश्रयभूत कारण है और न वहाँसे कोई प्रेरणा मिलती है, किन्तु जा उपयोगका विषय-भूत हुआ राग करनेके लिए उसको कहते हैं आश्रयभूत कारण । और निमित्त कारण है असाता मोहनीयका उदय । शरीर न होता, कर्म न होते तो फिर कोई कारण न था कि इस जीवको आकुलता होती । और परमात्मतत्त्व पानेके लिए और उद्यम ही क्या करना है ? कैवल्यका अभ्यास । सबसे विविक्त केवल चित्स्वभावमात्र यह मैं हूं, इसका जो बारबार अभ्यास है जिसके बलसे विकल्प दूर होंगे और ज्ञानमें ज्ञानस्वरूप ही समाया रहेगा, ऐसी स्थिति बने, देर तक बने, बस यह ही तो मोक्षमार्गकी बात है । ऐसा जीवके नहीं हुआ अब तक, इसलिए शरीरपर शरीर मिलते जा रहे हैं इस जीवको । तुम परमात्मस्वरूप हो और तुम मांग रहे हो शरीर तो शरीर, तुमको मिलते जायेंगे । इन शरीरोंके कारण कष्ट ही कष्ट पाये जा रहे हैं । यह है औदारिक शरीर ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवविभाव होनेपर कर्मोंका तात्कालिक बंधन होनेका प्रसंग—जरा एक परिस्थिति और समझिये। संसार-अवस्थामें हम आप जीवोंके साथ शरीरका बंधन है, यह तो प्रकट दिख रहा। कर्मका बन्धन है, यह अनुभागसे समझा जा रहा और साथ ही सर्वज्ञ भगवंतने यह बताया कि जो शरीर बन गया सो पुद्गलका तो बनता है, पर इस शरीरके साथ शरीर जिससे बना ऐसे बहुतसे स्कंधोंका भी इस जीवके साथ सम्बंध बना हुआ है, इसे कहते हैं विस्रसोपचय याने यह शरीर जो काम कर रहा, जो पिण्डरूप दिख रहा यह तो है और इस शरीरमें जितने परमाणु हैं, अनन्त हैं ना, उससे भी कई गुने परमाणु ऐसे जीवके साथ और लगे हैं कि जो अभी शरीर नहीं बने हैं, पर शरीर बन जायेंगे। ऐसी ही कर्मकी भी बात है। जीवने कोई दुर्भाव किया, कर्मबन्धन हो गया तो जो कर्म बंध गए वे तो कर्म हैं हो, पर कर्मोंमें जितने परमाणु हैं उससे भी अनन्त गुणे परमाणु कर्मोंके साथ, इस संसारी जीवके साथ ऐसे लगे हैं कि जो अभी कर्म तो नहीं हैं, पर कर्मरूप बन जायेंगे। इससे क्या बात लेना कि जीव अगर खोटे भाव करता है तो तत्काल ही कर्मबन्धन होता है और जिन कर्मों का बन्धन होता है वे कर्म कहीं बाहरसे नहीं लाने पड़ते, क्योंकि जीवके साथ ही ऐसी विस्रसोपचय कार्माणवर्गणायें लगी हैं कि जो कर्मरूप बन जाती हैं। एक क्षण भी मोहका परिणाम बनता है तो उससे नाना कोड़ाकोड़ी सागर तकका मोहनीयकर्म बंधता है।

देखिये—कितनी खोटी बात है। मगर भय यों नहीं कि आत्माको अगर अपने विशुद्ध चित्ज्योतिका अनुभव बने तो भव-भवके बाँधे हुए कर्म भी क्षणभरमें खिर जायें। हम आपका कर्तव्य यह ही है कि शरीररहित एक चैतन्यस्वभावमात्र अपने आपको अनुभवनेका पौरुष करना। मैं तो यह हूं। जैसे बहुत-बहुत शिक्षायें दी जाती हैं—देखो क्रोध न करना, मान न करना, ईर्ष्या न करना, छल-कपट न करना, लोभ न करना, निन्दा मत करना आदि तो उसके लिए बड़े-बड़े उपाय बताने पड़ते हैं, लेकिन आत्माके शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अनुभव एक वह उपाय है कि फिर कोई उपाय अधिक बतानेकी जरूरत नहीं पड़ती। जहाँ एक चैतन्यस्वरूपका अनुभव हुआ, मैं यह हूं चित्सामान्य, उसे कोई गाली दे, मारे तो भी उसपर कोई असर नहीं, वह मैं हूं अमूर्त शुद्ध चैतन्यमात्र और जहाँ शरीररूप अनुभव किया, मैं यह हूं, जिसको देखकर कहा कि मैं यह हूं उसको कोई जरा भी निन्दाकी बात कहे तो यह सुनने वाला बड़ा क्षुब्ध हो जायगा…अरे मुझे यों बोला इसने। प्रशंसा-निन्दा, सम्मान-अपमान या और और भी रागद्वेषादिकके विकार किये जाते, उन सभीका यह मोही देही वेदन करता। इससे एक ही काम पड़ा है इस जीवनमें, अपनेको शरीररहित केवल चैतन्यमात्र अनुभव करना। किस ढंगमें अनुभव करना कि जहाँ केवल चैतन्य हो रहा, प्रतिभास हो रहा,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर विकल्प नहीं, तरंग नहीं, इष्ट अनिष्टका जमाव नहीं। व्यक्ति भी न मालूम पड़े कि यह भी कुछ है, यह भी कुछ है। इस ढंगमें शुद्ध चेतनाका अनुभव बनता है। तो अपनेको केवल चैतन्यमात्र माने तो सर्वरोगोंकी एक यह ही दवा है। सर्वसंकटोंके दूर करनेके लिए एक यही औषधि है। इसको पाये बिना जीवने कैसे-कैसे शरीर ग्रहण किया, उसके वर्णनमें यह सूत्र है।

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस व कार्माण शरीरका आख्यान—हम आपका जो शरीर है इसका नाम है औदारिक शरीर। स्थूलको उदार कहते हैं। उदारमें चले सो औदारिक है। और वैक्रियक शरीर विक्रिया जिसका प्रयोजन है उसे कहते हैं वैक्रियक शरीर। विक्रिया करना उस भवमें प्राकृतिक बात है। जैसे मनुष्योंके भी दो हाथ हैं और चिड़ियोंके भी दो हाथ हैं, दो पैर भी हैं। पर दो हाथ उनके पंखके रूपमें हैं। वे जहाँ चाहे उड़ जायें, प्राकृतिक बात है। यहाँ हम आप कृत्रिमता लायें तो भी नहीं उड़ सकते। एक भव भवकी अपनी-अपनी प्रकृति बनी हुई है। देव और नारकियोंको ऐसी विक्रिया वाला शरीर मिलता है कि वे एक शरीरके नाना शरीर बना लें, नारकी नहीं बना पाता, वह एक ही शरीरका कुछ कर ले, विड्रूप बना ले, हथियार बना ले, देवोंके पृथक् विक्रिया भी है। वे कितने ही शरीर संगमें खड़े कर लें। तो जिस शरीरमें विक्रिया मिलती है उसे कहते हैं वैक्रियक शरीर। ये दो शरीर बड़े प्रसक्त हैं जीवोंके। इसीसे उनके जन्मकी बात कहते हैं। तीसरा है आहारकशरीर। जो रचा जाय सो आहारक। छठे गुणस्थानवर्ती मुनिराज यदि वे आहारक ऋद्धिधारी हैं तो जब कभी वह कोई शंका करते तो बैठे ही बैठे उनके मस्तिष्कसे एक हाथका धवल सफेद सुन्दर जो कि किसीको दिखता नहीं, ऐसा पुतला निकलता है, उसके हाथ-पैर सब व्यवस्थित रहते, पर आत्मप्रदेश अभेद हैं, इसके लिए कोई दो अलग शरीर नहीं हैं। तो वह पुतला जहाँ कहीं तीर्थंकर केवली विराजे हों वहाँ वह दर्शन करने जाता है और दर्शन करते ही सारी शंकाओंका समाधान हो जाता है या कहीं तीर्थयात्राका ख्याल होता है तो वह पुतला तीर्थवंदना करनेके लिए निकलता और साक्षात् वंदना करता है। तो उस मुनिका यह आहारक शरीर कहलाता है। तो आहारकशरीर तो एक अतिरिक्त शरीर हो गया। इसके बिना तो बहुत शरीर हैं। आहारकशरीर बिरलेके ही होता है। तो स्थूल शरीरोंमें मुख्य दो हैं—(१) औदारिक और (२) वैक्रियक। आहारक एक बीचका है। और सूक्ष्म शरीर है तैजस और कार्माण। तैजस शरीर वह है जिससे तेज प्रकट हो, और कार्माणशरीर वह है, जो कर्मका समूह है सो कार्माण।

जीवपर उपाधियोंका बोझ—देखिये कितना बोझ लदा है इस जीवपर, फिर भी यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मोही जीव शरीरको देखकर घमंड करता है, ममता करता है—मैं अच्छा हूं। अपने-अपने शरीरको निरख-निरखकर बस मैं हूं जो कुछ हूं। ऐसा इस शरीरमें अहंभाव, ममभाव करके मोही जीव बरबाद होता है जो कि त्यागने योग्य है। यहाँ यह बात समझनी कि है तो सब कर्मका ही चमत्कार, कर्मकी ही माया छाया। जीव तो एक चेतनास्वरूप है सो बस इतनी बात इसपर बीतती है कि इसका विकल्परूप परिणमन बन जाता। बस यह ही हानिकी बात है जीवमें। बाकी तो सब कर्मका ही प्रतिफलन है। सो शंका हो सकती है यह कि फिर औदारिक, वैक्रियक आदिक कुछ न कहो, सब कार्माण ही कार्माण कहो, लेकिन वर्गणायें भिन्न-भिन्न हैं। कर्म बनें ऐसी वर्गणायें जुदी हैं। वर्गणायें कहते हैं चीजोंको, पुद्गलके पिण्ड को। जैसे चौकी कोई चीज है ना। यह है स्थूल वर्गणाओंका पुञ्ज। औदारिक शरीरकी वर्गणायें जुदी, नामकर्म भी जुदा, वैक्रियक शरीर नामकर्म अलग। तो अपने-अपने कर्मके उदयसे यह शरीर प्राप्त होता है। शरीर जैसे जीवोंके निराले-निराले हैं वैसे ही जीवोंके भाव भी अपने आपमें निराले-निराले हैं। मोही जीव भले ही एक दूसरेको कहते हैं कि हमारा और इनका शरीर तो जुदा है, पर आत्मा एक है, यह कभी हो ही नहीं सकता। परिणाम निराले, विचार निराले। लोग यह भ्रम करते हैं कि यह मेरा पुत्र है, मैं जो कुछ कहता हूं सो आज्ञा मानता है, यह बड़ा आज्ञाकारी है, हमारा हुक्म इसपर चलता है····, पर बात ऐसी नहीं है। कोई पुत्र पिताकी बात मान ही नहीं सकता, क्योंकि दो द्रव्य हैं अलग-अलग। एक द्रव्य दूसरेकी परिणतिको ग्रहण कर लेगा क्या? "पर मान तो रहा, देख तो रहे"।···अरे वह जो दिख रहा है। उसका ढंग यह है कि पुत्रको भी तो आवश्यकता है, उस जीवको भी तो जरूरत है कि मैं सुखी रहूं, शान्त रहूं। इसलिए उसने अपना यह निर्णय बनाया है कि यदि मैं पिताकी बात मानता रहूंगा तो मैं सुख-शान्तिसे रह सकता हूं। इससे वह आज्ञाकारी दिख रहा। किसी एक द्रव्यकी दूसरे द्रव्यमें परिणति नहीं पहुंचती। तो जीव सब जुदे-जुदे हैं, स्वयं अपने-अपने अध्यवसायसे, भावनासे, विचारसे उस-उस प्रकारके कर्म बाँधते हैं और उन कर्मोंका उदय होनेपर ये सारी विडम्बनायें बनती हैं। सर्व परिस्थितियोंमें ये अपनी-अपनी सुख-शान्तिके लिए खुद ही सारा प्रयत्न करते हैं।

अविकार चैतन्यप्रकाशके अनुभवका कर्तव्य—निष्कर्ष यह है कि कोई किसीका लगता कुछ नहीं है। तो ऐसा जो समझ लेता है, वस्तुकी स्वतंत्रताका जो भान कर लेता है, प्रत्येक पदार्थ अपने आपके गुणोंमें हैं, अपने आपके परिणमनोंमें हैं। किसीका किसी दूसरे पदार्थपर अधिकार नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि संसार अब तक व्यवस्थित है, और छहों प्रकारके द्रव्य हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं, जीव हैं। इन सबकी जो आज यह दशा दिख

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रही है, यह इसी बलपर दिख रहा है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थकी परिणति नहीं करता। अगर करता होता तो सब कुछ नष्ट हो जाता। तो ऐसा जहाँ पदार्थोंके स्वरूपका भान हुआ उसे अपने आत्माकी स्वतंत्रताका भान होगा और इस विश्वासके बलसे बाहरी पदार्थोंकी आशा का परित्याग करें। अपने आपमें इस चैतन्यभावका अनुभव करें। सहज अन्तस्तत्त्वका अनुभव ही है सम्यग्दर्शन। यह बात जहाँ नहीं मिलती, जहाँ शरीरको ही माना जा रहा है कि यह मैं सब कुछ हूं, उसको ये शरीर प्राप्त होते हैं।

कार्माणके कारणकी चर्चा—एक यह बात यहाँ चित्तमें आ सकती है कि कर्म कभी दिखते हैं नहीं, कर्मका कोई कारण है नहीं, यह कार्माण शरीर बन कैसे गया ? यह बात कुछ ठीकसी नहीं प्रतीत होती, क्योंकि जिसका कोई कारण नहीं, उसका कोई रूपक नहीं। जितने भी रूप होते हैं, जितनी भी अवस्थायें होती हैं उनका कोई कारण है। तो कारण बिना कार्माण क्या ? एक बात यहाँ और सूक्ष्म समझनी कि औदारिक शरीर जो मिलता है सो तो औदारिक शरीर नामक कर्मके उदयसे, वैक्रियक शरीर मिलता है, सो वैक्रियक शरीर नामकर्मके उदयसे आहारकशरीर बनता है, सो आहारकशरीर नामकर्मके उदयसे, इसी प्रकार तैजस शरीर बनता है तो तैजस नामकर्मके उदयसे। और कार्माण शरीर कर्मके समूहका नाम है कार्माण शरीर। तो कर्मका ही नाम कार्माण है। हम किससे बन गए ? एक यह अन्तः प्रश्न है। तो उत्तर यह है कि कई चीजें ऐसी होती हैं कि खुद ही कारण है और खुद ही कार्य है। जैसे दीपकका प्रकाश खुद ही कारण है और खुद प्रकाशमें आ भी रहा है, प्रकाश्य भी है और प्रकाशक भी। ऐसे ही ये कर्मवर्गणायें शरीर बननेका कारण हैं और कार्माण शरीररूप कार्य भी बन गया तथा यह भी समझ लें कि कर्मका कारण भी अवश्य है—मिथ्यादर्शन, असंयम, कषाय, ये सब कर्मबंधके कारण होते हैं।

कार्माण शरीरकी अनुमेयता—अब अनुमान करो कि कर्म है अन्यथा यह शरीर और यह विषमस्थान सुख हो, दुःख हो ये सब बन नहीं सकते। केवल जीव ही जीव होता, इसके साथ दूसरी उपाधि न होती तो केवलमें ही सुख दुःख आदिक भिन्नतायें होनेका कारण क्या ? निश्चित समझिये कि यदि कहीं विषम कार्य होता है, नाना बातें बनती हैं तो वहाँ कोई दूसरा निमित्त कारण अवश्य होता है। यद्यपि परिणमता जो है उपादान ही नानारूप। निमित्त नहीं परिणमा देता, मगर निमित्त सन्निधान बिना विसम विभाव बिकारकी परिणति नहीं हुआ करती। इसी तरह जगतकी व्यवस्था है। इतना जान लें और इसके साथ-साथ वस्तुकी स्वतंत्रता भी पहिचान लें कि यह निमित्तनैमित्तिक योग होने पर भी पदार्थ अपनी ही परिणतिसे अपना परिणाम करता है, दूसरेका परिणाम नहीं करता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उदाहरणपूर्वक वस्तुस्वातंत्र्यका दिग्दर्शन—इससे और मोटी मिसाल क्या होगी कि दोपहरमें खूब सूर्यका तेज प्रकाश हो, बादल नहीं हैं, खूब बढ़िया उजेला है, मगर यहाँ जो उजेला है सो यह बताओ कि उस उजेलेको सूर्यने किया क्या ? सूर्य ने इस उजेलेकी परिणति बनाया क्या ? एक कुञ्जी यह समझिये कि जो चीज होती है उसका कार्य, उसका गुण, उसका परिणमन, उसका प्रभाव जितनी भी चीजें हैं उतनेमें होंगी, उससे बाहर न होंगी। जैसे हाथ है तो हाथका व्यापार, हाथकी क्रिया, हाथकी चेष्टा सब कुछ हाथमें ही होंगी, हाथ से आगे न होंगी। अगर किसीने अपने हाथसे किसीकी पीठमें चाँटा मार दिया तो वहाँ भी समझो कि उस हाथने पीठमें कुछ नहीं किया, वेगपूर्वक चले हुए हाथके संयोगका निमित्त पाकर पीठके परमाणुवोंका पीठमें ही चोटरूप परिणमन हुआ। तो ऐसे ही समझिये कि यहाँ जो प्रकाश फैल रहा है तो यह सूर्यका प्रकाश नहीं, किन्तु प्रकाशमय सूर्यका सन्निधान पाकर यह पृथ्वी, ये भींत, ये काँच, ये चटाई, चौकी, दरी आदि सब अपनी-अपनी योग्यतासे अपनी परिणतिसे प्रकाश रूप हो गए। सूर्य भी तो पृथ्वी है, यह पृथ्वी भी पृथ्वी है, वह चमकदार है। यह इस ढंगमें है कि चमकदारका सन्निधान मिले तो यह अपनी चमक बना ले। अगर सूर्यका प्रकाश होता तो यह भेद क्यों पड़ रहा कि काँचपर तो तेज प्रकाश है और भींतपर कम ? तो यह भेद ही यह बताता है कि काँचका ऐसा उपादान है कि सूर्यका सन्निधान पाये तो ऐसा प्रकाशमान हो और भींत ऐसा उपादान है कि कुछ ही प्रकाशमान है। पर बात यहाँ यह कहनी ही पड़ेगी कि सूर्यका निमित्त पाकर पृथ्वीपर प्रकाश फैला है। और देखो किसी कमरेमें जहां एक छोटासा ही दरवाजा है और खूब कमरेके अन्दर घना अंधकार है, उसके अन्दर यदि सूर्यका प्रकाश पहुंचाना है तो लोग क्या करते कि इस तरह सूर्यके सामने कि उस कांचका (दर्पणका) सामना भींतकी तरफ भी हो जाय ऐसा कांच करते और उस कांचके द्वारा सूर्यका प्रकाश उस अंधेरे कमरेके अन्दर तक पहुंचा देते तो देखो कांचके द्वारा कमरेके अन्दर पहुंचे हुए उस प्रकाशका निमित्त क्या है ? वह चमकीला कांच निमित्त है, सूर्य निमित्त नहीं और उस चमकीले कांचका निमित्त क्या है ? सूर्य। तो उस कमरेमें जो प्रकाश पड़ा है उसके निमित्तका निमित्त है सूर्य। साक्षात् निमित्त तो प्रकाशमान कांच है। बड़ी-बड़ी घटनाओंमें इस बातको निरखने की आदत डालो कि भले ही निमित्त योग है किन्तु प्रत्येक पदार्थ अपनी ही परिणतिसे अपनेमें परिणमन करता। भले ही कर्मका उदय है और कर्मका अनुभाग फैला, परन्तु उसका निमित्त पाकर जीवके उपयोगमें ऐसा प्रतिफलन हो गया।

अब जीवकी ही यह परिणति है कि जो प्रतिफलन हुआ और उसे अपनाया और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकल्प बनाया। सर्वत्र वस्तु अपनी ही परिणतिसे अपना परिणमन करता है। तो जीवने किया खोटे भाव, उसका निमित्त पाकर हुआ कर्म बन्धन, उसके विपाककालमें बस यह सब रचना बनती है। तो कार्माण शरीर है और उसका कारण है मिथ्यात्वादिक। यदि यह कार्माणका कोई निमित्त न होता और जीवके साथ यों ही दोस्ती निभाता तो फिर इस जीव का कभी मोक्ष न हो सकता था, क्योंकि जो कर्मका कारण है वह दमदार न रहा, स्वभाव न रहा। तो ये सब शरीर पांच हैं।

शरीरोंके नामोंके सूक्तोत्र क्रमका कारण—कोई कहे कि कर्म तो अनादिकालसे लगा है और अब तक चला आ रहा है, यह तो कभी जीर्ण-शीर्ण होता नहीं, गलता नहीं, तो इसका शरीर नाम कैसे रखा? जो सड़े गले सो शरीर। कर्म कहाँ सड़ते हैं? भाई कर्म भी सड़ते, कर्ममें भी गलन होता है, उसमें भी आय-व्यय होता, मगर उसकी संतति अब तक नहीं टूटी। एक बार भी संतति कर्मकी टूटे तो टूटे ही टूटे। तो सारे शरीरका कारण कर्म है। तो सबसे पहले कार्माणको क्यों नहीं कहा? औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण ऐसा कहना तो गलत है। सो भाई क्रमके कोई ध्येय होते हैं। यहाँ ध्येय यह है कि औदारिक तो है सबसे स्थूल शरीर, इसलिए औदारिक नाम यहाँ पहले रखा, और कार्माण है इन सब घटनाओंके लिए अनुमानमें आने वाले इसलिए कार्माणको अन्तमें रखा और फिर जो औदारिकसे सूक्ष्म हैं वे वैक्रियक हैं, जो वैक्रियकसे सूक्ष्म हैं वे आहारक हैं, आहारकसे सूक्ष्म हैं तैजस और तैजससे सूक्ष्म हैं कार्माण। इस कार्माण बीजसे सब विडम्बनायें बनीं। यह शरीर चूंकि मूर्तिक है, औदारिक है, हम आपको मिला है उससे ही यह सिद्ध है कि कर्म एक मूर्तिक हैं। मूर्तिकका कारण मूर्तिक होना चाहिए। वह पौद्गलिक हैं और उसके बन्धनमें पड़े हुए जीवको भी बंधके प्रति एकत्व होनेकी विवक्षासे यह संसारी आत्मा भी मूर्तिक बनता है। सो इस सूत्रमें बताया कि यह संसारी जीव जन्मके द्वारा ऐसे-ऐसे जन्मस्थानोंमें ऐसे-ऐसे शरीरोंको ग्रहण करता है। अब इस शरीरके विषयमें और भी बात चलेगी वह आगे सूत्रमें आयगी।

परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥

सूत्रोक्त क्रमसे कहे गये शरीरोंकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मता—जो इससे पहले सूत्रमें ५ शरीर बताये गए—(१) औदारिक, (२) वैक्रियक, (३) आहारक, (४) तैजस, (५) कार्माण। तो ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं। औदारिकसे सूक्ष्म वैक्रियक, वैक्रियकसे सूक्ष्म आहारक, आहारक से सूक्ष्म तैजस और तैजससे सूक्ष्म कार्माण। कैसे सूक्ष्म हैं सो इसका अंदाज लगाया जा सकता है। देखो औदारिक शरीर, स्थूल शरीर, जैसे हम आप मनुष्यों व तिर्यञ्चोंके जो शरीर हैं ये सबसे बड़े शरीर औदारिक स्थूल हैं। औदारिक शरीर सबसे मोटा है उससे सूक्ष्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है वैक्रियक। वैक्रियकमें आहारवर्गणाके विशिष्ट परमाणु होते हैं। जो बहुत सूक्ष्म हैं और उनका शरीर चाहें तो दिख जाये, न चाहें तो न दिखे, ऐसे भी वैक्रियक शरीर होते हैं। तो ये वैक्रियक शरीर औदारिकसे सूक्ष्म होते हैं, आहारक शरीर वैक्रियकसे भी सूक्ष्म हैं। छठे गुणस्थानवर्ती आहारक ऋद्धिधारी मुनिके मस्तकसे जो एक हाथके प्रमाण वाला पुतला जो कि धवलरूपमें होता और जिसमें सर्वइन्द्रियोंके चिन्ह होते, वह शरीर इतना सूक्ष्म होता कि चाहे बज्र भी सामने आये तो उसे भी पार कर जाय, किसीसे आघात न हो, ऐसा वह आहारक शरीर होता है। तैजस शरीर उससे भी सूक्ष्म होता है। इस तैजस शरीरका एक रूप देख लीजिए। जिस शरीरका जो तेज है, जो चमक है, जो दिख रहा वह तो नहीं है तैजस। वह तो औदारिक है, मोटा है, वैक्रियककी तरहका है। जो एक तेज उत्पन्न करने वाला है वह तैजस शरीर है। जैसे बिजली कितनी सूक्ष्म होती और सूक्ष्म क्या होती, बिजली बहते बहते या संयोग पाकर एकदम समस्त तारोंका परिणमन होता है, भीतर कुछ दिखता नहीं कि वह बिजली कहाँसे कैसे आती है, लेकिन उससे भी सूक्ष्म चीज है तैजस शरीर और तैजससे भी सूक्ष्म है कार्माण शरीर।

कार्माण शरीरकी विज्ञप्ति—देखो जब जीव विकट स्थितितोंसे गुजर रहा है, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय आदिक इन भवोंमें गमन कर रहा है तो इतनी विषम, इतना कठिन, इतना गजब होनेका कारण कोई बाह्य सम्बंध होना ही चाहिए। जगतमें भी देखा जाता, पानी अधिक गर्म बनता है तो किसी उष्ण पदार्थके संयोगसे। पानी बर्फ बनता है तो किसी शत पदार्थके संयोगसे। तो जो विकार होते हैं वे भी किसी बाह्य पदार्थके संयोगसे होते हैं। तो कर्म तो मानना ही पड़ेगा और ये कर्म कोई ऐसा कह सकने मात्रका नाम नहीं है कि उपचरित है। कह दिया है, सामने हाजिर हुआ है, बोल दिया है। जिस वक्त यह जीव कषायभाव करता है उस समयमें कार्माणवर्गणाओंमें अपने आप प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, प्रदेशबंध, अनुभागबंध—ये चारों बंध हो जाते हैं। मायने उस समय यह निश्चित हो गया कि इन कर्मोंमें जो इस समय बंधे हैं इनमें यह कर्म इतने दर्जेका फल देनेकी शक्ति है, इसमें इतने दर्जे का, ये निषेक इतने समय बाद उदयमें आयेंगे, ये निषेक इस प्रकारकी प्रकृति वाला फल देंगे, और इस समय इतने परमाणु उदयमें आयेंगे, इस समय इतनेमें आयेंगे। जो कर्म एक समयमें बँध गए हैं उनमें ये चार विभाग हो जाते हैं। आगम वचन हैं, अनुमान सिद्ध है। तो अब जिस प्रकारका अनुभाग, जिस प्रकारकी प्रकृति बंधी थी, स्थिति बँधी थी, विपाकमें आया है तो कर्मकी गड़बड़ी कर्ममें होती है, यह एक वस्तुका नियम होता है। प्रत्येक पदार्थ का परिणमन उस ही पदार्थमें होता है। अगर निमित्तनैमित्तिक योग न होता तो यह संसार

Version.1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहाँसे आता ? केवल एक अकेले पदार्थमें संसार नहीं हुआ करता। तो उदय आया, उसमें एक क्षोभ रहा। वह सबका सब निमित्तनैमित्तिक योगवश उपयोगमें प्रतिफलन हुआ। छाया माया कहो, औदयिक भाव कहो, बस यह जो जीव भूल गया, जिसने अपनी चेतनाको भुला दिया और यह ही मान लिया कि यह ही मैं हूं। जैसे नाटक करने वाला बालक अगर भूल जाय कि मैं तो अमुक नामका बालक हूं और जिसका पार्ट अदा किया जा रहा है उस ही रूप अपनेको अनुभव करे तो इस अनुभवका दुष्परिणाम भी होता है। सुना है कि कोई युवक जब वह अमरसिंह राठौरका पार्ट अदा कर रहा था तो उस समय वह यह भूल गया कि मैं तो अमुक नामका व्यक्ति हूं, यहाँ तो पार्ट अदा कर रहा हूं। उसने अपनेको अमरसिंह राठौरके रूपमें अनुभव किया और अपने सामने खड़े विरोधी व्यक्तिपर इतना क्रोध किया कि तलवार से उसका सिर उड़ा दिया। तो देखिये—उस ही रूप अनुभव करनेका दुष्परिणाम यह हुआ। तो यहाँ भी तो ये जीव नाना प्रकारके पार्ट अदा कर रहे हैं, इनपर यह सब माया छाया आ रही है, यह पहनावा पहिन रहा है। इसमें मान लिया कि यह मैं हूं और उसीमें ही रम गया। यही कारण है कि यह इसका दुष्परिणाम भोग रहा है। नाना पर्यायोंके दुःख भोग रहा है।

शान्तिका उपाय सुगम होनेपर भी सुगम न होनेका कारण—देखिये शान्तिका उपाय है तो कितना सुगम, लेकिन कितना कठिन हो रहा है। बहुत-बहुत समझाया जानेपर भी यह उपयोग अपने आपको स्वभावरूप नहीं अनुभव कर पाता है। स्वभावकी ही ये सब लीलायें हैं, मगर अपनेको स्वभावरूप अनुभव नहीं करता। यह एक जीवपर बहुत बड़ी विपत्ति छायी है। मिथ्यादृष्टि, मोही, अज्ञानी संसारमें रुलने वाले कौन ? देह जीवको एक गिनें—जो शरीर और आत्माको एक मानता है, संसारमें भटकता है। सारी विपत्तियाँ इस शरीरको आत्मा माननेसे हुई। सम्मानमें खुश होना, अपमानमें दुःखी होना, प्रशंसामें महत्त्व समझना, निन्दा में अपनी बरबादी मानना, यह क्या गजब हो रहा है कि चित्स्वरूप जीवका हो सकता है। यह सब पौद्गलिक कर्मका नाच है और उस नाचको इसने अंगीकार कर लिया कि यह मैं हूं, और अगर संसार-सागरसे तिरना है, संसार-संकटोंसे छूटना है तो इतना अंतःसाहस बनाना होगा कि जगतमें जो कुछ हो सो हो, वह बाह्य पदार्थोंका परिणमन है, उनकी परिणतिसे हो रहा है। तीन लोकके समस्त पदार्थ कैसे ही परिणमें और लोकदृष्टिसे वहाँ चाहे हम प्रतिकूल समझ लें, अनुकूल समझ लें तो इस समस्त लोकके परिणमनसे भी इस आत्माका कोई बिगाड़ नहीं है, यह तृष्णा, शरीरकी प्रतिष्ठा, नामकी प्रतिष्ठा, लोगोंसे इज्जतकी बात। धनका लोग क्यों संग्रह करते हैं ? मनुष्योंमें सबसे कठिन कषाय मानकषाय है और बताया है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नरकगतिमें तो क्रोधकी तीव्रता है, तिर्यञ्चगतिमें छल-कपटकी तीव्रता है और देवगतिमें लोभ की और मनुष्योंमें सबसे अधिक मानकी तीव्रता है। जितने जो लोग काम करते हैं, जितनी भी मन, वचन, कायकी चेष्टायें करते हैं, धन-वैभवका संग्रह करते हैं, तो इन सबका प्रयोजन मानकषायकी पुष्टि है। लोगोंमें क्यों यह होड़ मच गई कि मैं अभी लखपति हूं तो करोड़पति हो जाऊँ ? अरे रोटियोंकी कमी थी क्या ? कमी तो न थी, पर उपयोग भटक गया। उपयोग में तृष्णाने घर कर लिया। यह तृष्णा मानकषायवश बनी। क्रोध भी इस मनुष्यको क्यों जगता, क्योंकि उसके चित्तमें मानकषाय बैठी है। जब उस मानकषायकी पुष्टि नहीं होती तो क्रोध जगता है। मनुष्य छल-कपट क्यों करता ? इसीलिए कि चित्तमें मानकषाय है। चित्त में जैसे मान बढ़े उसके लिए उपाय रचते हैं। लोभ नाना प्रवृत्ति क्यों करते ? अपनी मान कषायकी पुष्टिके लिए। सबका मूल मानकषाय है। जिस ज्ञानी पुरुषने इस मानकषायको अलग कर दिया और यों अपनेको समझ लिया कि जो हो सो हो, मेरे आत्माको तो कोई जानता नहीं, लोग तो इस देहसे ही परिचित हैं, मेरा चैतन्यस्वरूप इस देहसे पृथक् है, इस देहको देखकर ही लोग कहते कि फलाने आ गए, अरे तो इस देहकी किसीने निन्दा कर दी तो समझो कि उसने तो अभी बहुत कम निन्दा की। यह शरीर तो बहुत ही निन्द्य है। इसकी तो बहुत-बहुत निन्दा करनी चाहिए थी। तो निन्दा करने वालेपर रोष क्यों ? उसके प्रति तो मित्रताका भाव रहे। और सोचो कि इसने अभी बहुत थोड़ा दंड दिया है इस बेईमान (शरीर) को। इसे तो और भी अधिक दंड मिलना चाहिए था। इस शरीरमें ममता होनेके कारण इस शरीरको कितनी परेशानी हो रही है ? कहाँ तो यह अनन्तआनंद, अनंतज्ञानका स्वभाव रखने वाला यह चैतन्य पदार्थ और कहाँ ये नरक निगोद तिर्यञ्च पशु-पक्षी आदिक देहोंकी यह विडम्बना। बड़ा बलिदान करना होगा आत्मोद्धार चाहने वाले व्यक्तिको। एक आत्मोद्धार है तो सब सिद्धि है।

आत्मोद्धार हुए बिना उसके निमित्तसे विश्वकल्याणकी भी असंभवता—आत्मोद्धार हुए बिना विश्वकल्याणकी बात जरा भी संभव नहीं। जैसे एक कथानक है कि कोई महिला आयी, साधुसे कहा—महाराज हमारा बेटा गुड़ बहुत खाता है और उस गुड़ खानेसे उसको बड़ी तकलीफ मिलती है फिर भी नहीं छोड़ता, महाराज, आप उसका गुड़का त्याग करा दें। तो साधुने कहा अच्छा तुम मेरे पास उस बेटेको लेकर अबसे १५ दिन बादमें आना तब उसे गुड़ न खानेका नियम दिलायेंगे। ठीक है। महिला चली गई। अब देखो चूँकि वह साधु महाराज स्वयं गुड़ बहुत खाते थे, इसलिए वह उसे तुरंत नियम न दिला सके। जब १५ दिन स्वयं उन्होंने अभ्यास कर लिया, गुड़का स्वयं त्याग कर दिया तब शिष्यको गुड़के अवगुण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बताकर, उसके त्यागका नियम कराया। तो मतलब यह है कि पहले तो अपने आत्मापर विजय पावो और फिर बादमें यह विकल्प ही क्यों हो कि दूसरोंका कल्याण हो, दूसरे लोग इस मार्गपर चलें। अपने आत्माका उद्धार करो, बादमें दूसरोंके कल्याणकी चिन्ता करो। कोई दूसरोंके प्रति तो खूब विकल्प करे, चिन्ता रखे और खुदके हितकी कोई बात न सोचे तो उससे उसे लाभ क्या ? देखो स्वाध्याय करनेके ५ भेद हैं—वाचना, पूछना, भावना, आम्नाय (याद व पाठ करना) तथा धर्मोपदेश। सो यहाँ यह समझें कि धर्मोपदेश भी आत्माके मननके लिये है। देखो लोग तो कहते हैं कि उपदेश दूसरोंके लिए दिया जाता है पर ऐसी बात नहीं, धर्मोपदेश तो स्वाध्यायका एक भेद है। स्वाध्यायमें होता स्वका अध्ययन। धर्मोपदेश देने वाला व्यक्ति उस प्रसंगमें यदि अपने आपको सम्बोध रहा है और अपने आपमें भी कुछ प्रयोग बन रहा है तो वह उसका स्वाध्याय है और यदि उसकी बाहर-बाहर ही दृष्टि है—ऐसा करो, ऐसा करो, देख रहा है श्रोताओंकी ओर, उनसे कहे कि देखो तुम सब पाप न करो नहीं तो नरक जावोगे, निगोद जावोगे, तो समझो कि वह तो अभी विपत्तिमें चल रहा है, विडम्बनामें चल रहा है। अरे उपदेश करने वाला स्वयंके लाभके लिए, स्वयंको सम्बोधता हुआ बोले तो वह तो उसका एक स्वाध्याय है। देखो इस मनको ठाली (ठलुवा) मत बैठने दो, इसे तो धर्मोपदेश देने, आत्मध्यान करने, स्वाध्याय करने आदिके अच्छे कामोंमें लगा दो। देखो धर्मोपदेश देना एक ऐसा काम है कि जिसमें मायाचारी नहीं चल सकती। और कामोंमें तो मायाचारी चल जायगी, प्रमाद कर जायेंगे। जैसे जाप दे रहे हैं, बैठे हैं अकेले तो वहाँ कोई नियन्त्रण तो नहीं है कोई और ढंगका, मगर धर्मोपदेशका प्रसंग ऐसा है कि एक तरह का प्रोग्राम है, एक नियन्त्रण है, कुछ कहना पड़ेगा, कहना चाहिए, कहा जा रहा है। हाँ इतना आश्रय जरूर है कि श्रोता आश्रय बन रहे हैं। तो जब और और विचार, और और चेष्टायें जीवकी चल रही हैं तो धर्मोपदेशमें श्रोता आश्रय बनते, उनका थोड़ा लक्ष्य भी होता है। जो कहा जाय सो खुद भी सुना नहीं जा सकता क्या ? क्या दूसरोंके सुनानेके लिए ही कहना होता है ? अगर इसका जल्दी हिसाब लगानेके लिए बोलें तो चार आने तो दूसरोंको सुनानेके लिए और १२ आने खुदको सुनानेके लिए बोलते हैं धर्मोपदेष्टा। तो धर्मोपदेश भी स्वाध्यायका एक भेद है।

आत्मनिरीक्षण—भैया ! अपने आत्माको देखो—इस शरीरके मोहमें पड़कर यह जीव व्यर्थ ही बरबाद हो रहा है। यह शरीर सदा रहना है नहीं, यह जीर्ण-शीर्ण होना है। अभी कोई बूढ़ा हो गया, हड्डियाँ निकल आयीं, चेहरेमें झुर्रियाँ भी पड़ गईं, सारा शरीर सूख गया, जिसकी शक्लको देखकर बच्चे लोग डर जायें, फिर भी उस शरीरसे कितना मोह है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हाय यह मैं ऐसा हो गया। देखिये कितना है शरीरका व्यामोह ? बस यह ही मात्र विपदा है इस जीवपर। चेतते नहीं तो नुक्सान उन्हींका ही तो है। कभी तो यह अनुभव कर लें कि मैं शरीरसे निराला एक चैतन्यस्वरूप मात्र हूं। देखो धन वैभवके विकल्प, इज्जत पोजीशनके मनमें विचार, ये सब राक्षस एक इस चैतन्य राजापर हमला कर रहे हैं। पूर्व समयमें अनेक मुनिराज ऐसे हुए हैं कि जिनको उस समयमें भी कोई नहीं जानता था, और जब वे पवित्र हो गए, परमात्मा हो गए, निर्वाण हो गया तो उनके आनन्द और ज्ञानमें और जो जगतमें प्रसिद्ध हैं ऋषभदेव आदिक भगवान, उनके आनन्द व ज्ञानमें कुछ फर्क है क्या ? यहाँ तो थोड़े दिनोंकी बात है और पवित्र बननेका फल है अनन्तकाल तक आनन्द भोगना। बताओ तुम किसको महत्त्व देते हो ? यहांके थोड़े दिनोंके सम्मान-अपमान, इज्जत प्रतिष्ठाको महत्त्व देते हो या अनन्तकाल तकके लिए केवलज्ञान अनन्त आनन्दरूप मेरा परिणमन हो, उसको महत्त्व देते हो ? सारी बात गुप्त है। गुप्त ही करना है। गुप्तको ही करना है और गुप्त बात ही की जानी है। यहाँ दिखानेकी तो कुछ बात ही नहीं है। दिखानेका जितना सम्बन्ध है वह सब मायाजालका है और कल्याणका जो सम्बन्ध है, गुप्त कल्याण करता है और कल्याण भी गुप्त होता है और कल्याण भी गुप्तविधिसे होता है। उसमें दिखावेका नाम नहीं। यह हिम्मत तब बनती है जब आत्माके स्वरूपका भान है और शरीरादिक पुद्गल परमाणुओंके स्वरूपका सही रूपमें भान है। सर्व पदार्थ स्वतंत्र हैं, एकका दूसरेमें प्रवेश नहीं, एक दूसरेका कोई परिणमन नहीं कर पाता। मेरा किसीसे क्या बिगाड़ ? मैं बिगाड़ करता हूं अपने आपका परिणमन करके। ज्ञान बल हो तो कर्मानुभाग खिर जाता है, ज्ञानबल नहीं है तो कर्मानुभाग हामी हो जाता है। तिस पर भी करने वाला यह जीव ही है अपनी परिणतिका। अगर जीव अपनी परिणतिका करणहार नहीं है और कर्म ही जीवमें रागद्वेष कराते हैं तो फिर रागद्वेषसे छूटनेका फिर कभी अवसर नहीं मिल सकता। क्योंकि रागद्वेष तो कर्म करते हैं। उनके जी (मन) में क्यों ऐसा आयगा कि मैं अपना कुल मिटाऊँ ? कर्म मानो अपनी अगली बढ़वारीके लिए ही कमर कसे हुए हैं। तो हम भी अपनी उन्नतिके लिए कमर कसकर चलें।

उत्तरोत्तर सूक्ष्म पांच शरीरोंमें परमाणुपुञ्जकी अपेक्षासे उत्तरोत्तर हीन होते जाने की संभावनाकी जिज्ञासा—ये ५ शरीर जिनके सम्बन्धसे, जिनके व्यामोहसे जीवका अकल्याण है उन शरीरोंका वर्णन किया जा रहा है। ये ५ शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते जा रहे हैं। अच्छा तो एक जिज्ञासा होती है कि ये पाँचों शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं तो क्या इनमें प्रदेश भी कम कम होते गए ? जैसे औदारिकसे वैक्रियक शरीर सूक्ष्म हैं तो क्या औदारिकसे वैक्रि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यकके परमाणु कम होते होंगे ? इसी तरहसे क्या वैक्रियकसे आहारक और आहारकसे तैजस आदि जो सूक्ष्म होते गए तो क्या उनके परमाणु उत्तरोत्तर कम होते गए ? क्या ऐसी बात है ? तो इसका समाधान करनेके लिए सूत्र कहते हैं।

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म कहे गए हैं इससे पहलेके सूत्रमें। सो अब इस ३८वें सूत्रके द्वारा यह बात बतला रहे हैं कि परमाणु कम कम नहीं हैं बल्कि औदारिक शरीरसे वैक्रियकमें असंख्यात गुणे अधिक परमाणु हैं। इसी प्रकार वैक्रियकसे आहारकमें उससे अनन्तगुणे अधिक परमाणु हैं। ज्यों ज्यों शरीर सूक्ष्म होते गए त्यों त्यों उसके परमाणु भी बढ़ते गए। जैसे औदारिक शरीरमें एक मच्छका शरीर ले लो, उससे असंख्यात गुणे परमाणु एक वैक्रियक शरीरमें मिलेंगे। यह कोई नियम नहीं है कि जो देखनेमें बड़ा हो तो उसमें परमाणु ज्यादा हों और देखनेमें शरीर छोटा हो, सूक्ष्म हो तो उसमें परमाणु कम हों। इसके लिए एक उदाहरण ले लो। एक तरफ तो एक किलो रख दो और दूसरी तरफ रुईका एक ढेर रख दो। तो देखिये इन दोनोंमें किनमें ज्यादा परमाणु मिलेंगे ? किलोके बाटमें ज्यादह मिलेंगे। तो औदारिकसे वैक्रियकमें असंख्यातगुणे ज्यादह परमाणु हैं और वैक्रियकसे असंख्यातगुणे ज्यादा परमाणु आहारकमें हैं, आहारकसे ज्यादा तैजसमें और तैजससे ज्यादा कार्माणमें। तब यह बात है कि उत्तरोत्तर प्रदेशकी अपेक्षा ये शरीर असंख्यात गुणे प्रमाण अधिक हैं, लेकिन तैजससे पहिले तकके असंख्यातगुणे हैं।

शरीरोंकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मता होनेपर भी परमाणुओंकी अपेक्षा महत्ता—जब आकाश की बात चले तो प्रदेशका अर्थ होता है प्रदेश और जब पुद्गलकी बात चले तो प्रदेशका अर्थ है परमाणु। परमाणुओंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर ये शरीर अनगिनते गुणे हैं। कहाँ तक ? तैजस तक। ये प्रदेशकी अपेक्षा असंख्यात गुणे हैं। इससे यह बात जानना कि परमाणु हैं असंख्यात गुणे, पर जगह ज्यादह स्थान रोकते हों सो बात नहीं। मच्छका शरीर भी एक हजार योजनका लम्बा है। उसका आधा चौड़ा और उसका आधा मोटा और सर्वार्थसिद्धिके देवोंका शरीर केवल एक हाथ प्रमाण है। सो देखो जगह ज्यादा घेरा मच्छने, मगर बताओ परमाणु किसमें ज्यादह हैं ? सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें। तो प्रदेशकी अपेक्षा ऐसा कहनेसे यह बात सिद्ध हुई कि अवगाहमें असंख्यातगुणे नहीं हैं उत्तरोत्तर ये शरीर। परमाणुओंमें असंख्यात गुणे हैं। तो भाई यह नियम नहीं है कि जो बड़े प्रमाणमें फैला हो उसके परमाणु ज्यादह हों और जो थोड़े परिमाणमें फैला हो उसके कम हों। यों औदारिकसे वैक्रियक, वैक्रियकसे आहारक, आहारकसे तैजस और तैजससे कार्माण—इनमें उत्तरोत्तर एक दूसरेसे अधिक परमाणु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। तो देखो एक मुनिराज छठे गुणस्थानवर्ती आहारक ऋद्धि वाले उन्हींके ही आहारक शरीर बन रहा है। वे तो एक ही जीव हैं ना। मुनिका शरीर और आहारक शरीर ये दो जीव नहीं हैं। मुनिका शरीर औदारिक है और उन्हींके समुद्घातमें है आहारक। जीव एक है। एक होनेपर भी उस समयको औदारिक काय योग रुक गया। औदारिक काय योगकी चेष्टा नहीं चल रही और आहारक शरीरकी रचना है, आहारक शरीर बन गया। योग औदारिक शरीरका नहीं है, योग आहारक कायका है। उस औदारिकमें जितने परमाणु हैं उनसे असंख्यातगुणे परमाणु उस आहारक शरीरमें हैं।

ईश्वरीय विपरीत लीला—कैसी लीला है ईश्वरकी, कौनसे ईश्वरकी ? स्वयंकी, जीव की। कैसी शरीरकी रचना हो रही है, कैसी विडम्बनायें चल रही हैं कि शरीर हल्का हो, खराब हो, गंदा हो, कोमल हो, कठोर हो, पत्थर बन गया, जल बन गया, नम्र शरीर हो गया, तो कैसे कैसे विचित्र शरीर बन रहे और यह जीव इन शरीरोंमें किस-किस तरहसे बँधा फंसा है, यह ईश्वरकी उल्टी लीला चल रही है जिसमें ये सब ऐसी विकट बातें चल रही हैं और इस ही ईश्वरकी जब सीधी लीला चलेगी तो वह अपने आपके सहजस्वरूपको समझकर, जानकर, उसमें रमकर त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ ज्ञानमें झलक जायेंगे और अनन्त आनन्दका अनुभव होगा। तो हे प्रभु, हे भगवन, हे सहज परमात्मतत्त्व ! तेरी उल्टी लीलामें तो जगतकी विडम्बना बनती है और तेरी सीधी लीलामें तीन लोक तीन काल के समस्त पदार्थ इस ज्ञानमें समा जाते हैं। तो इन शरीरोंका वर्णन सुनकर हमको यह लाभ लेना है कि यह शरीर तो कलंक है। शरीरमें मोह लगा है। शरीरके मोहसे ये सारी विडम्बनायें बनती हैं। एक नामरहित जो एक चित्स्वरूप है उस चित्स्वरूपमें अपने आपका अनुभव करें कि सहज ज्ञानप्रकाशमात्र जो है सो मैं हूं, अन्य कुछ मैं नहीं हूं। इस अनुभवके द्वारा इस संसारसे निस्तारा बन सकता है।

अनंतगुणे परे ॥३९॥

तैजस और कार्माण शरीरकी अन्य सब शरीरोंसे अनन्तगुणी महत्ता—अन्तके तीन शरीर प्रदेशकी अपेक्षा अनन्तगुणे हैं। प्रदेशकी अपेक्षा इस शब्दकी अनुवृत्ति हुई है ऊपरके सूत्रसे और किससे परे अनन्तगुणे हैं। तो इसका भी भाव लिया गया है ऊपरके सूत्रमें याने पहले सूत्रमें यह बताया कि तैजस शरीरसे पहले तकके शरीर प्रदेशोंकी अपेक्षा असंख्यात गुणे हैं। तो तैजससे पहले शरीर है आहारक। तो आहारक शरीर तककी बात कही गई थी। अब यहां अर्थ यह लेना कि आहारकशरीरसे अनन्तगुणे प्रदेश तो हैं तैजस शरीरमें और तैजस शरीरसे अनन्तगुणे प्रदेश याने परमाणु हैं कार्माण शरीरमें। जो ५ शरीर बताये गए—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण । इनमें यह बताते हैं कि उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं, किन्तु प्रदेशकी अपेक्षा उत्तरोत्तर कितने ही गुणित हैं । आहारक शरीर तक असंख्यात गुणे हैं, और उसके बाद अनन्तगुणे परमाणु वाले हैं । क्या कहा गया सूत्रमें ? अन्तके दो शरीर अनन्तगुणे हैं । तो ऐसा सुनकर यह बात ज्ञात होती है कि अनन्तगुणे परमाणु तो हैं, पर जितने ही परमाणु तैजस शरीरमें हैं उतने ही परमाणु कार्माण शरीरमें हैं । क्योंकि अन्तमें दो शरीरोंको अनन्तगुणे परमाणु वाले कहा है । पर बात ऐसी नहीं है, क्योंकि अनन्त तो नाना तरहके होते हैं, अनेक प्रकारके होते हैं । तो आहारक शरीरसे तैजस शरीर अनन्तगुणे हैं और उससे अनन्तगुणे कार्माण शरीर हैं । यह अर्थ लेना । देखो सबसे सूक्ष्म है कार्माण शरीर याने जीवके साथ जो कर्म लगे हैं सो पौद्गलिक हैं, वास्तविक हैं । कार्माण शरीररूप हैं, सारे शरीरका बीज हैं, समस्त विपदाओंका हेतु है । कर्ममें कोई नाम नामकी चीज नहीं । जैसे कि अन्य लोग कह देते हैं कि कर्म है, रेखा है, भाग्य है, दैव है । पर है क्या वास्तविक बात, इसको स्पष्ट नहीं कर पाते । यहाँ स्पष्ट किया है । कर्म हैं कार्माणवर्गणाके पुद्गलस्कंधों का समूह । वह सबसे सूक्ष्म है, किन्तु सब शरीरोंसे अनन्तगुणे परमाणु हैं ।

अप्रतीघाते ॥४०॥

तैजस और कार्माण शरीरकी प्रतिघातरहितता—ये दोनों शरीर तैजस और कार्माण ये प्रतिघातरहित हैं । जैसे अन्य लोग कहते हैं कि जीवके साथ दो शरीर लगे हैं—सूक्ष्म और स्थूल । तो स्थूल शरीर हो गया औदारिक और वैक्रियक और सूक्ष्म शरीर हो गया तैजस और कार्माण । आहारक शरीरका तो कोई नाम भी नहीं लेते । तो जो तैजस कार्माण शरीर हैं वे चूंकि सूक्ष्म हैं, अतएव सर्वत्र चले जाते हैं, किसीसे व्याघात नहीं होता । न तो तैजस कार्माण शरीर द्वारा दूसरेको चोट पहुंचे और न दूसरेके द्वारा तैजस कार्माण शरीरमें विघात ही । ऐसे तैजस और कार्माण शरीर व्याघातरहित हैं । व्याघात मूर्तिकका मूर्तिकके साथ होता है । अमूर्तका व्याघात क्या ? यहाँ यह आश्चर्यकी बात है कि तैजस और कार्माण शरीर पौद्गलिक हैं, तिसपर भी इनका किसी भी पदार्थसे व्याघात नहीं होता । जीव क्या है, किस ढंगमें होता है, क्या उसके साथ है, यह सब विषम स्पष्ट खुला है । जीव है एक चैतन्य पदार्थ । उसके साथ लगे हैं कार्माण शरीर, और उसकी ही वजहसे फिर औदारिक, वैक्रियक, आहारक और तैजस—ये शरीर लगे हैं । तो तैजस शरीर तो सब संसारी जीवोंके साथ लगा है, जैसे कि कार्माण, पर अन्य शरीर बदलते रहते हैं । मनुष्य तिर्यञ्च हैं तो ये औदारिक शरीर हैं । हम आपके शरीरका नाम औदारिक शरीर है और मरण हो गया, भव बदल गया, देव हो गए तो वैक्रियक शरीर मिल गया, मगर तैजस और कार्माण शरीर—ये सदा जीवके साथ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। और इस जीवित अवस्थामें हम आपका प्रतिघात हो जाता है सो तैजस और कार्माणकी वजहसे नहीं, किन्तु औदारिक शरीरके कारण व्याघात होता है। क्योंकि औदारिक शरीरके साथ सब लगे हैं। यों व्याघातसहित शरीर है। इस स्थूल शरीरका कारण होनेपर जीवके साथ तैजस और कार्माण शरीर जाते हैं तो वज्र आये तो भी छिदते नहीं हैं। जीवकी विभूति देख लो—जीव जब बिगड़े तो उस हालतमें भी ऐश्वर्यपर दृष्टि दें। बिगड़ा है तो भी कोई वैज्ञानिक अचेतन पदार्थोंमें तो बता दे, रागद्वेष मोह करना, कुछ युक्तियाँ बता दें, मत्र बता दें, पर यह बात कहाँसे लायेंगे ? और बात तो जाने दो, वैज्ञानिक लोग अब तक मल और मूत्रकी भी रचना नहीं कर सके हैं। हैं ये पौद्गलिक और शरीरके विकार शरीरसे निकले पर जीवके सम्बन्धमें यह व्यवस्था बनाकर कोई वैज्ञानिक उस ढंगसे न बना सका। तो जीवका ऐश्वर्य देखो बिगड़ा है तो भी वहां चमत्कार चल रहा और सीधा बन गया, स्वभाव में आ गया तो उसका तो एक अलौकिक चमत्कार है। "तीन लोक तिहुं काल समाया जिसकी सीधी लीलामें।" तो यह जीव अनादिसे बिगड़ा ही है। इसके साथ तैजस और कार्माण शरीर हैं तो वे कितना सूक्ष्म शरीर हैं कि वे किसीसे छिदते नहीं हैं। बिना व्याघातके ये शरीर जहाँ जाना है चले जाते हैं। यहाँ बताया यह गया है कि देखो परमाणु एक हो तो वह एक समयमें ७ राजू १४ राजू गमन करे, मगर देखो कर्मभय सहित ईश्वरकी (जीवकी) बात एक भव छोड़कर जीव गया तो जीव एक समयमें ७ राजू चला गया तो इसमें आश्चर्य नहीं है, और जीवके साथ जो तैजस कार्माण शरीर लगे हैं उनमें तो अनन्त परमाणु हैं, एक एक तो हैं नहीं, लेकिन तैजस कार्माण शरीर भी जीवके साथ होनेसे एक समयमें अनेक राजू चले जाते हैं। अगर जीवके साथ न होतीं ये वर्गणायें, तैजस और कार्माण अलग होते तो स्कंध ही तो है, फिर इनमें सामर्थ्य नहीं कि एक समयमें यह कई राजू गमन कर जाय, मगर जीवका माहात्म्य देखो तो सही—बिगड़ी हालतमें भी जो बात दूसरेमें नहीं बन सकती वह इसमें बन रही। क्या बन रही ? "अप्रतिघाते" याने तैजस और कार्माण शरीर प्रतिघात रहित होते हैं।

तैजस और कार्माण शरीरकी लोकमें सर्वत्र अप्रतीघातता—यहां एक आशंका कर सकते हैं आप कि बताया यह है कि तैजस शरीर कार्माण शरीरमें व्याघात नहीं है, किसीसे रुकता छिड़ता नहीं है, पर यह बात तो आहारक शरीरमें भी है। वह तो व्याघातरहित है, वैक्रियक शरीर भी है। वैक्रियक शरीर भी तो कहीसे कहीं पार हो जाता है, फिर तैजस कार्माणको ही क्यों कहा गया ? प्रतिघातरहित है। फिर दो शरीर और रख दिया—वैक्रियक और आहारक। अब इसे पहलुवोंसे देखें तो सब कुछ बात दिखती है। औदारिकशरीरसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही जीवकी मुक्ति बन सकती है। अब किसकी बने वह बात अलग है। तो यहाँ प्रश्न यह किया जा रहा कि तैजस और कार्माणकी तरह वैक्रियक और आहारक शरीर याने देवोंका वैक्रियक शरीर, जैसे मुनियोंका आहारक शरीर, इनका भी तो व्याघात नहीं होता, फिर इन को भी तो कहना चाहिए। तो उत्तर इसका यह है कि यहाँ यह बतलाया जा रहा कि तैजस और कार्माणका दुनियामें सर्वत्र व्याघात रहित चलता है। आहारक शरीरका तो व्याघात है, ढाई द्वीपके बाहर कहाँ जायगा ? वैक्रियक शरीर भी व्याघात वाले सुने गए हैं। एक घटना थी कि अनन्तवीर्य यतीके माहात्म्यसे वैक्रियक शरीरका भी एक व्याघात हो गया। उनमें इसका नियम नहीं पड़ा हुआ है कि कौनसा वैक्रियक शरीर कहाँ तक जा सकता ? उससे आगे नहीं जा सकता। मगर तैजस कार्माण शरीरमें प्रतिबंध बन जायगा। जीव जहाँ जाय वहाँ तैजस कार्माण चले जायें। पृथ्वीके नीचे तक, लोकके अन्त तक, अगल बगल सर्वत्र तैजस कार्माण व्याघात रहता है—यह बताया गया है इस सूत्रमें। ये दो शरीर व्याघातरहित हैं। एक जीवकी सड़ी गली खराब भीतरकी पूजी बतायी जा रही है कि जीवके साथ अन्दर क्या क्या लगा हुआ है जिसके कारण बाहरमें यह मुद्रा बन गए। जीवके साथ कर्म लगे हैं, तैजस कार्माण शरीर लगा है। देखो पदार्थ सब स्वतंत्र स्वतंत्र हैं, कर्म जीवमें कुछ नहीं करते, जीव कर्ममें कुछ नहीं करता, मगर विभावोंमें तो निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। कोई भी विभाव निमित्त सन्निधान बिना नहीं बनता। तो निमित्तनैमित्तिक ढंगसे भी परखिये और वस्तुस्वातंत्र्यके ढंगसे भी जानते जाइये।

अनादिसंबंधे च ॥४१॥

तैजस और कार्माण शरीरका जीवके साथ परम्परया अनादि संबन्ध—तैजस और कार्माण शरीर अनादिकालसे जीवके साथ सम्बन्ध रख रहे हैं। यहाँ यह बात समझनी है अनेकान्तदृष्टिसे कि किस अपेक्षासे कहा गया है कि तैजस और कार्माणका सम्बन्ध जीवसे अनादिकालसे है, यह परम्परासे कहा गया है और विशेषरूपसे तो आदि है कर्मका जिस दिन से जो बंधा कर्म उस दिनसे उसकी आदि है। पहले भी बंधा, अनादिसे बंधे आये, मगर जब जब बंधे तब तब उसकी आदि है, इसी प्रकार तैजस शरीरका भी आदि है और परम्परासे देखें तो अनादि है। ये दोनों बातें माननी पड़ेंगी। एकान्ततः यह नहीं कह सकते कि तैजस कार्माण एकान्ततः अनादिसे संबद्ध हैं और यह भी नहीं कह सकते कि तैजस कार्माण एकांततः किसी कालसे लगे हैं। विचार करें। यदि यह कहा जाय कि तैजस और कार्माण शरीर एकान्ततः अनादिसे हैं, आदिसे होनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं तो देखो जिसकी आदि नहीं होती, जो एकान्ततः अनादिसे है, किसी भी अपेक्षासे आदि नहीं तो उसका अन्त भी नहीं होता।

http://www.jainkosh.org

जब तैजस कार्माणका अन्त न होगा तो फिर जीवका मोक्ष भी न होगा और अगर एकान्तसे आदि मान लिया जाय कि तैजस और कार्माण शरीर तो बराबर किसी दिनसे शुरू हुए, उनकी कोई आदि है तो ऐसा एकान्तसे आदिमान मानने पर उसकी उपपत्ति ही नहीं हो सकती, नया शरीर ही नहीं हो सकता, क्योंकि पहले कर्म ही नहीं हो सकते। जैसे कि तुम मान रहे हो किसी दिनसे कर्म लगे तो उससे पहले क्या था? यह ही तो मानना पड़ेगा कि जीव शुद्ध था, कर्मरहित था। अगर कर्मकी आदि मानते हो कि किसी दिनसे जीवके साथ कर्म लगे तो इसका अर्थ यह हुआ कि उससे पहले जीव शुद्ध था। कर्म न थे उसके साथ। अगर जीवके साथ कर्म न थे, जीव शुद्ध था तो फिर कर्म हो ही नहीं सकते। कारण क्या? और इसी प्रकार अगर तैजस और कार्माण शरीरका आदि है तो वह निर्निमित्त हुआ ना। कोई निमित्त नहीं बनता, क्योंकि जीव तो शुद्ध था, अपने आप लग गए तैजस और कार्माण। तो कदाचित् कोई मुक्त जीव भी हो तो जब चाहे उनके भी लग बैठें, क्योंकि निर्निमित्त आदिमान जो होता है उसका कारण तो कुछ न बन सका यहाँ, क्योंकि पहले जीव शुद्ध था तो शुद्ध जीवमें जब ये तैजस कार्माण लग बैठे तो मुक्त जीवमें भी लग बैठें। मुक्त की फिर कोई महिमा न रही। क्या फायदा ऐसा मुक्त होनेसे कि कुछ दिनको हुए मुक्त, बाद में फिर यहाँ आ गए। फिर ये ज्योंके त्यों तो ऐसे ही दार्शनिकोंकी तरहके हो गए। जैसे कोई दार्शनिक मानते हैं कि संसारका रचने वाला पूरा मालिक एक सदाशिव है। सदाशिव ईश्वर मायने तो अनादिकालसे मुक्त हैं, भगवान है वह सबको रचने वाला है। वह एक ही है, पर अनेक मुक्त जीव होते हैं तो वे कर्मसे मुक्त हुए तो इन मुक्त जीवोंमें और सदाशिवमें बड़ा फर्क माना जाता है, क्या कि सदाशिव तो बस उसको सब अधिकार है और मुक्त जीव कुछ दिन मुक्त रहेगा, बादमें सदाशिव उन्हें भी ढकेल देगा कि जावो संसारमें रुलो। तब ऐसा मुक्त होनेमें क्या लाभ हुआ? तो तैजस और कार्माण शरीरको एकान्ततः आदि मान लेंगे तो उसमें भी मुक्त रहनेकी बात न बन सकेगी। इससे क्या समझना कि अपने साथ जो कर्म लगे वे परम्परासे तो अनादिसे हैं और विशेषकी दृष्टिसे आदिसे हैं।

उदाहरणपूर्वक सम्बन्धकी अनादिमत्ता व आदिमत्ताका दिग्दर्शन—जैसे बीज और वृक्ष। बतलावो वृक्ष काहेसे हुआ? बीजसे। और बीज काहेसे हुआ? वृक्षसे। यों बीज और वृक्षकी परम्परा चलाते जावो। तो यह परम्परा अनादिसे है, ऐसा कभी नहीं होता कि बिना बीजके वृक्ष हो गया हो या बिना वृक्षके बीज बन गया हो। जैसे बीज-वृक्षकी परम्परा अनादि से है, मगर किसी खास बीजकी बात क्या अनादिसे है? वह तो अमुक वृक्षसे हुआ। किसी खास वृक्षकी बात क्या वह अनादिसे है? वह तो अमुक बीजसे हुआ। तो विशेषकी दृष्टिसे तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

बीज और वृक्षमें आदि है। हाथमें भी लेते हैं यह है बीज, उसे बो भी दिया, वृक्ष बन गया, एक नई चीज बन गई। आदि तो है, मगर परम्परा अनादिसे है। ऐसे ही बाप-बेटेकी ले लो। बेटा किससे हुआ? बापसे और वह बाप किससे हुआ? अपने बापसे? क्या कोई ऐसा भी बाप हुआ जो बिना बापका हुआ हो? हुआ तो नहीं। तो बाप-बेटेकी परम्परा अनादिसे है, मगर क्या कोई बाप भी अनादिसे है? क्या कोई बेटा भी अनादिसे है? अरे वे तो किसी दिनसे हैं। तो विशेषकी अपेक्षा आदि है, मगर उसकी संतान आत्मा तो अनादि है। ऐसे ही ये कर्म हैं। आज भाव बुरे किये, कर्मबन्ध हुआ, उसकी आदि हुई। जितने भी कर्म बाँधे थे उसकी आदि है, मगर कर्मकी परम्परा अनादिसे है। अगर अनादिसे कर्म न हों तो फिर कर्म हो ही नहीं सकते, फिर यह जीव संसारी हो ही नहीं सकता। यह जीव संसारी है, अनादिसे कर्मबन्धन चल रहा है तो इसकी परम्परा अनादिसे लगी हुई है।

यह ५ शरीरोंका प्रकरण चल रहा है और उनमें तैजस और कार्माण शरीरकी बात चल रही है। जैसे पहले यह बताया गया था कि औदारिक शरीर तो मनुष्य और तिर्यञ्चके होता। हम आपके शरीरका नाम क्या है? औदारिक, मोटा और देव और नारकियोंके शरीरका नाम क्या है? वैक्रियक। वे झट अपने शरीरकी विक्रिया बना लें, हथियार बना लें। उसका थोड़ा नमूना तो हम आपके भी पास है। यह जो हाथ है सो गदा (मुक्का) बन जाय, मुक्का मारें तो जोरसे लगे, यही हाथ कवच बन जाय, तलवार बन जाय, चम्मच बन जाय, काँटा बन जाय, बरछी बन जाय? देखो हम आपके हाथ तो वैक्रियक नहीं हैं, मगर हाथको ऐसा वैसा करनेसे कई चीजें बन जाती हैं। फिर वहाँ देव और नारकियोंके तो विक्रिया है। किसी नारकीके मनमें आ जाय कि मुझे तो तलवार मारना है तो उसका हाथ ही तलवार बन जाता है। उसके मनमें आये कि हमें तो कोल्हूमें पेलना है तो उसका ही शरीर कोल्हूरूप बन जाता है। ऐसी खोटी उन नारकी जीवोंकी विक्रिया है। नारकी जीवोंकी विक्रिया खोटी है और देवोंकी विक्रिया नारकियों जैसी खोटी नहीं है। देव लोग अगर सोचें तो पहाड़ बन जाय, मंडप बन जाय, शिला बन जाय। तो ऐसे ही यह बतलावो कि आहारक किसके होता? तो छठे गुणस्थानवर्ती आहारक ऋद्धिधारी मुनिके आहारक शरीर होता है।

अब बताओ तैजस और कार्माण शरीर किसके होता? तो तैजस और कार्माण शरीर सब जीवोंके होता है। अरहंत भगवानके हैं क्या तैजस, कार्माण? उनके भी हैं। और निगोदिया जीवोंके हैं क्या? उनके भी हैं। जब तक मुक्त नहीं हैं तब तक इस जीवके अनादि परम्परासे तैजस और कार्माण शरीर लगे आये हैं। देखो इतनी बड़ी तो इस जीवपर विपत्ति लगी है, मगर यह मोही जीव इस विपत्तिको विपत्ति नहीं समझता और जिसमें विपत्तिका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई लेश भी नहीं है उसे विपत्ति समझता। मान लो कुछ धन यहाँसे वहाँ चला गया तो बताओ कुछ विपत्ति आ गई क्या जीवपर? मान लो आपके पास खुदका मकान नहीं है, किरायेका मकान है तो इसमें भी कुछ विपत्ति है क्या? मान लो स्त्री-पुत्रादिक किसीका मरण हो गया तो इसमें भी इस जीवको कुछ विपत्ति है क्या? पर इनको यह जीव विपत्ति समझता। अरे कहाँ आयी विपत्ति? अरे वे भी एक जीव थे, अपने कर्मसे थे, जब तक उनकी आयु थी तब तक रहे, आयुका क्षय हुआ तो चले गए। इसमें विपत्तिकी क्या बात है सो तो बताओ? तो जिसमें विपत्तिका लवलेश नहीं उसमें यह मोही जीव विपत्ति मानता और जो इस जीवपर खास विपत्ति लगी है, तैजस लगा, कार्माण लगा, विकार लगा, इनको विपत्ति नहीं मानता। पर ये तैजस और कार्माण ये सब शरीरके बीज हैं और सारी विडम्बनाओंके कारण हैं।

सर्वस्य ॥४२॥

तैजस और कार्माणशरीरके स्वामियोंकी सूचना— ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवोंके होते हैं। सूत्रमें जो शब्द दिये हैं उसकी अपेक्षा तो यह अर्थ "सबके है" अब क्या है सबके, सो प्रकरणसे समझें–तैजस व कार्माण। ऐसा कोई नहीं बचा जिसके ये तैजस और कार्माण शरीर न हों। अब देखो सब कितने हैं? अनन्त। अनन्तानन्त तो निगोद ही हैं और तो सब ब्याजकी संख्या है, इतने तो जीव हैं और सूत्र क्या बना? 'सर्वस्य' यहाँ षष्ठी विभक्तिका एकवचन लगाया तो कहते हैं 'सर्वस्य' तो जब जीव अनन्त हैं तो 'सर्वेषां' ऐसा कहते बहुवचन। सबोंके ऐसा न कहकर ऐसा कहा—सबके। तो एकवचनमें क्यों निर्देश किया? उत्तर यह है कि सब जीव संसारीपनके नाते से एक बिरादरीके हैं, एक जातिमें हैं, एक ढंगमें हैं। तो एक ढंगकी चीज बहुत भी हो तो भी एकवचनमें कहा जाता है। देखो बाजारमें जब जाते हो तो गेहूंका भाव पूछते हो तो यह ही तो कहते हो कि यह गेहूं किस भाव दिया? अरे उनको बहुवचन करके बोलो—इन गेहुंवोंको किस भावमें दिया? ऐसा भी कोई बोलता है क्या? एकवचनमें प्रयोग होता, क्योंकि जाति, अपेक्षा वे सब एक समान हैं। देखिये—एक आदत और होती है—हिन्दीमें है यह आदत कि किसीको आदरसे बुलाना हो तो बहुवचनमें बुलाते हैं—जैसे पापा आ गए। ऐसा कोई नहीं कहता कि पापा आ गया। बहुवचनमें प्रयोग करेंगे, एकवचनमें न करेंगे। ये आ गए, ऐसा सभी बोलते हैं। यह आ गया, ऐसा कोई नहीं बोलता। तो सभ्यताके शब्द बहुवचनमें बोलनेका रिवाज है, एकवचन में नहीं। हाँ कहीं कहीं है ऐसा रिवाज कि आदरकी भी घटना हो तो भी संख्यानुसार एक-वचनमें बोले जाते हैं। जैसे मारवाड़में—वह आ गया, महाराज आ गया, पंडित जी आ

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया। लोग बोलते हैं आदरसूचक शब्द, मगर इन संसारी जीवोंका आदर भी क्या ? ये सब तो विपत्तियोंसे भरे हैं, अपवित्र हैं तो इस दृष्टिसे भी समझो। बहुवचन कहनेकी भी कुछ जरूरत नहीं। तो ये दोनों प्रकारके शरीर तैजस और कार्माण—ये समस्त संसारी जीवोंके होते हैं, और कैसे हैं जीवके प्रदेशमें एकक्षेत्रावगाह, कोई प्रदेश ऐसा नहीं बचा कि जहाँ तैजस कार्माण न पाये जाते हों। तो जहाँ जहाँ जीव प्रदेश हैं वहाँ वहाँ तैजस कार्माण हैं और यह तो तैजस कार्माणकी बात है, मगर यह औदारिक शरीर भी जहाँ जहाँ जीव प्रदेश हैं तहाँ तहाँ यह शरीर है, ऐसा घना सम्बन्ध है पर, वे भी रहे न साथ जो इतने घुले मिले। जीवने शरीर पाये बहुत और इतना घुल मिलकर रहे ये शरीर, मगर इतने घुले मिले शरीर भी जीवके साथ न रह सके, तो जड़ वैभवोंकी तो बात क्या करना ? ये तो प्रकट डले हैं। ऐसा मर्म जानकर देहसे, कर्मसे, विकारसे सबसे विरक्त हों और एक चैतन्य प्रकाश सामान्य चैतन्य महाप्रभुकी उपासना करें।

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्या चतुर्भ्यः ॥४३॥

एक जीवके एक समयमें शरीरोंकी संख्याका परिमाण—ये आदिक चार तक शरीर एक साथ एक जीवके लगा लेना चाहिए अर्थात् कमसे कम दो शरीर होते हैं। दो से कम शरीर किसी भी समय नहीं होते संसारी जीवके। मुक्तके तो कोई भी शरीर नहीं है। तो दो शरीर हैं—तैजस और कार्माण। ये कब हैं ? जब यह जीव विग्रहगतिमें मोड़ा लेकर जा रहा है, उस समय इसके स्थूल शरीर तो है नहीं, तैजस और कार्माण ही रहता है। जब जन्म हो गया, जब जन्मस्थानपर पहुंच गया तब तीन शरीर हो गए। तैजस कार्माण तो था ही। मनुष्य और तिर्यञ्चमें पैदा हुआ कि औदारिक शरीर हो गया। यदि देव या नारकी में उत्पन्न हो तो वैक्रियक शरीर हो गया। तब तैजस, कार्माण और वैक्रियक—ये तीन शरीर हो गए और जब किसी औदारिक शरीर वाले मनुष्यको आहारक ऋद्धि पैदा हो जाय, आहारक शरीर निकले तब चार शरीर हो गए। जिसके विक्रियाऋद्धि उत्पन्न हो गई, तो वैक्रियक शरीर हो गया तो ४ शरीर हो गए। ५ शरीर कभी नहीं होते, क्योंकि वैक्रियक और आहारक ये दो शरीर एक जीवके किसी भी प्रकार सम्भव नहीं।

तदादीनि भाज्यानि युगपत् शब्दोंका भावार्थ—अब जरा सूत्रमें शब्दोंसे अर्थ देखिये, सूत्रमें बताया है तदादीनि, तत् आदीनि, वह आदिक। वह है आदिमें जिसके तो वह मायने क्या ? जिसका प्रसंग चला आ रहा है, सर्वनाम सब तत् शब्द ही बताता है जिसका कि जिकर चल रहा है। तो प्रसंग किसका चल रहा ? तैजस और कार्मणाका। तो तैजस कार्मणामें दोनों ग्रहण आये, एक नहीं, क्योंकि दोनोंका एक साथ प्रसंग चल रहा है, इसलिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तदादीनिका अर्थ है तैजस और कार्माण शरीर और आदिका अर्थ है व्यवस्था मायने दो और अधिक बढ़ो तो तीन और अधिक बढ़ो तो चार। कौनसे तीन हुए, कौनसे चार हुए वे आगम के अनुसार लगा लेना चाहिए और युक्तिसे भी लगा लेना चाहिए। यहाँ दूसरा पद है भाज्यानि मायने पृथक् पृथक् कर लेना चाहिए। हिस्सा (भाग) कर लेना चाहिए, ऐसा भाज्यानिका अर्थ होता है। तो यहां एक शङ्का हुई कि जब औदारिक आदिक शरीर ५ हैं, अलग-अलग हैं, सो जुदे-जुदे तो पहलेसे ही हैं, फिर भाज्यानि शब्द देनेकी क्या जरूरत है? औदारिक शरीर आदि परस्पर एक दूसरेसे जुदे-जुदे लक्षण वाले हैं और आत्मासे भी जुदे हैं तब भाज्य ग्रहण करना बेकार है। एक ऐसी शंका हुई कि तब सूत्र इतना ही कहना चाहिए कि तदादीनि युगपदेकस्या चतुर्भ्यः। समाधान यह है कि यदि भाज्यानि शब्द न दें तो उनके विधिपूर्वक विभाग करनेका अर्थ न लगेगा। बस जुदा-जुदा है। एक जीवमें दो होते हैं, तीन होते हैं, चार होते हैं, एक साथ ऐसा अर्थ ध्वनित नहीं होता। पृथक् शब्दमें कोई व्यवस्था नहीं बनती। पृथक् है, पर एकके लिए एक साथ कितने होते हैं—ऐसी व्यवस्था बनानेके लिए भाज्यानि शब्द दिया है। इस सूत्रमें तीसरा शब्द है युगपद्, एक साथ। उसमें कालकी एकता बतायी। भिन्न-भिन्न समयमें तीन हों, चार हों ऐसा यह नहीं कहा है किन्तु एक जीवमें एक ही समयमें दो हैं, तीन हैं, चार हैं शरीर, यह बात यहाँ बतायी जा रही है।

एकस्य शब्दका भावार्थ—चौथा शब्द है एकस्य। यहाँ एक बात ध्यान देनेकी है कि कई पुस्तकोंमें तत्त्वार्थसूत्रमें एकस्मिन् शब्द लिखा है इस सूत्रमें बहुतसी जगह। और किन्हींमें एकस्य भी लिखा, तो शुद्ध शब्द एकस्य है। एकस्यका अर्थ है एक जीवके। एकस्मिन् का अर्थ है एक जीवमें। एकस्यका अर्थ है एक जीवके सो यह तो षष्ठी विभक्तिका प्रयोग, किन्तु एकस्मिन् यह है सप्तमी। आप सोचो—जब यह कहा जाय कि एक बारमें दो, तीन, चार शरीर तक होते हैं और यह कहा जाय कि एक जीवके दो तीन और चार शरीर तक होते हैं—इन दोनोंमें आपको भला कौनसा लग रहा सुननेमें? अच्छा भलेकी बात छोड़ो। सही कौन हो सकता है? जब यह कहा कि एक जीवमें दो तीन चार शरीर होते, तो क्या जीवके अन्दर होते? जीवमें अभिन्न हैं क्या? हाँ एक सूत्र पहले आया था प्रथम अध्यायमें कि एक जीवमें ज्ञान, एक जीवमें ज्ञान, एकसे लेकर चार तक होते हैं। वहाँ एक जीवमें सही बात थी, क्योंकि ज्ञान जीवसे अभिन्न है, किन्तु शरीर तो जीवसे भिन्न है। शरीर अमूर्त नहीं, जीव अमूर्त है, शरीर चेतन नहीं, जीव चेतन है, ऐसे भिन्न द्रव्य हैं तब जीवमें शरीर होता है यह कहना उपयुक्त नहीं, इसलिए एकस्य शब्द ही सही है और सही सूत्र है—'एकस्याचतुर्भ्यः' बोलना चाहिए।

http://sahjanandvarnishastra.org/

आचतुर्भ्यः का भावार्थ—अंतिम पद है आचतुर्भ्यः, इसका अर्थ है चार तक। आ शब्द आङ् से निकाला गया है और आङ् के दो अर्थ होते हैं– (१) मर्यादा और (२) अभिविधि। जब 'मर्यादा' अर्थ लेते हैं तो अर्थ होता है कि चारसे पहले मायने तीन तक होते हैं। जब 'अभिविधि' अर्थ लेते हैं तो चार भी होता है मायने यहाँ तक होता है, यह अर्थ है। तो यहाँ अभिविधि अर्थ है। इस तरह एक जीवके चार शरीर तक बताये। एक जीवके ५ शरीर नहीं होते। वैक्रियक और आहारक—इन दोका एक साथ सम्बन्ध नहीं है। जैसे आहारक शरीर तो होता छठे गुणस्थान वाले मुनिराजके, आहारक ऋद्धिधारीके, सो उनके विक्रिया नहीं होती और देव नारकीके विक्रिया है। उनके आहारक नहीं होते। कभी किसीकी विक्रिया हो जाय तो आहारक नहीं। इस तरह एक जीवके ५ शरीर एक साथ सम्भव नहीं। यहाँ चर्चा यह की जा रही है कि जीवके साथ जो शरीर लगे हैं, जिनका वर्णन पहले आया—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। मनुष्य और तिर्यञ्चके शरीरका नाम है औदारिक शरीर, देव और नारकियोंके शरीरका नाम है वैक्रियक शरीर और कोई एक विशिष्ट दिमाग जैसा अंदाजमें समझ लो, एक पुतला निकलता है बड़े ऋद्धिधारियोंके, वह आहारक शरीर और तैजस कार्माण जीवके संसार अवस्थामें सदा रहते हैं। यों इनमें से एक जीवके एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं।

शरीरोंकी अरम्यता—ये ५ शरीर ये भिन्न चीज हैं। ये मेरे साथ लग गईं तो मेरे को बरबाद करनेके लिए ही लग गई हैं। शरीरसे आत्माका हित नहीं है। शरीरके सम्पर्कसे आत्मामें अनेक विडम्बनायें और अनेक कष्ट आते हैं, इस कारण इतनी भी बात चित्तमें समा जाय कि यह शरीर प्रीति करने लायक नहीं और एक यह भी घटना ध्यानमें लायें कि कोई दिन ऐसा होगा कि (अपने शरीरको पकड़कर बोलें) कि यह शरीर कभी ठठरीपर लोग ले जायेंगे, मरघटमें ले जाकर इस तरह जला देंगे। यह है वह शरीर जो मेरे साथ लगा है, जो साथ न निभायेगा, जो अब भी अनेक दुःखोंका कारण है और साथ ही अपवित्र है। इस शरीरसे क्या प्रीति करना, क्या आसक्ति करना ? हाँ शरीरको एक नौकर समझकर उससे काम लेना और उसकी रक्षाके लिए आहार आदिक देना। काम क्या लें कि जिसमें अपना ध्यान, ज्ञान, साधना बने इस तरहसे इसको प्रवृत्त करावें। देखो कितनी बड़ी सुविधा हम आपको मिली है कि जो यह घिनावना शरीर मिला है, मानो यह शरीर घिनावना इसीलिए मिला कि हमें वैराग्य जगानेका मौका मिले। अगर यह शरीर घिनावना न मिलता, हाड़ मांस खूनका पिण्ड न मिलता और जैसा देवोंका वैक्रियक शरीर है मानो वैसा मिलता या जैसे आजकल रबड़के कोमल गड़े बने हैं जिन्हें डल्लो पिल्लो कहते, मानो वैसा शरीर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिलता, ये नाक, थूक, कफ, लार, मल मूत्र आदिक घिनावनी चीजोंसे भरा हुआ शरीर न मिलता तो न जाने यह मनुष्य क्या कर डालता ? ये सब गंदी चीजें भरी हैं इस देहमें, महा-अपवित्र देह है तब तो यह बेकाबू है, काश सुन्दर शरीर मिलता तो यह मनुष्य न जाने क्या कर डालता ? तो यह तो एक बहुत सुविधा मिली है हम आपको कि घिनावना शरीर मिला है। यह मानो इसी लिए हम आपको मिला है कि इससे झट विरक्त हों।

कार्माण शरीरकी निरुपभोगता—अन्तमें आया हुआ शरीर याने सूत्रमें जो अन्तमें बताया गया है—कौनसा शरीर ? कार्माण शरीर। यह निरुपभोग है, उपभोगरहित है। उपभोग इस कार्माण शरीरसे नहीं बनते। एक यहाँ यह आशंका हो सकती है कि लगने को तो ऐसा लगता कि सारी करामात तो इस कार्माण शरीरकी है। भोगोंमें लगना, संसारमें रुलना आदि ये सब बातें कर्मकी ही तो लीलायें हैं, फिर इन्हें क्यों उपभोगरहित कहा ? ये तो बड़े तेज उपभोग वाले बताना चाहिए था। तब समाधानमें सोचो, शंकाकार ठीक कह रहा है कि सारी विडम्बनाओंकी जड़ तो कार्माण शरीर है। सुख दुःख जन्म मरण आदिक सभी विडम्बनाओंका मूल यह कार्माण शरीर है इसलिए इसे तो डबल उपभोग वाला कहते, निरुपभोग्य क्यों कहा ? तो शङ्काकारकी बात ठीक है। लेकिन यहाँ उपभोगका अर्थ दूसरा है, याने इन्द्रियके द्वारा भोग उपभोग कर सके, उसका नाम है उपभोग और इन्द्रिय द्वारा जिसका उपभोग नहीं बनता उसे कहते हैं निरुपभोग्य। जैसे औदारिक वैक्रियक शरीर है, आहारक शरीर है, इन्द्रिय और मनके द्वारा इनका उपभोग बनता है, किन्तु कार्माण शरीरमें इन्द्रिय द्वारा, मन द्वारा उपभोग नहीं बनता। यह दुःखकी जड़ तो है और कर्मका उदय होने पर हो उपभोग वेदना सब बात होती है, लेकिन इन्द्रिय द्वारा ये ग्रहण तकमें भी नहीं आते तो उपभोग कैसे कहलायेंगे ? तो यहाँ उपभोगका अर्थ लेना इन्द्रियके निमित्तसे, जैसे शब्द, रूप, रस गंध आदिककी उपलब्धियाँ होती हैं बस उसका नाम है उपभोग। इस तरह कार्माण शरीरमें या कर्ममें इन्द्रिय द्वारा उपलब्धि नहीं होती। तो कार्माण शरीरको कहा गया है निरुपभोग है।

निरुपभोग होनेपर भी तैजस शरीरको निरुपभोग न कहनेका कारण तथा प्रसंगका उपसंहार—तब एक शङ्का और भी यहाँ होती है कि क्या तैजस शरीरका भी इन्द्रिय द्वारा भोग होता है ? तैजस शरीरका भी इन्द्रिय द्वारा उपभोग नहीं, ग्रहण नहीं, तब दोनोंको कहते निरुपभोग्य कि तैजस और कार्माण ये दोनों शरीर निरुपभोग्य हैं। इनमें से तैजसको क्यों छोड़ा, केवल कार्माण क्यों बताया ? तो उसका उत्तर यह है कि देखो—तैजस शरीर में योग नहीं होता, कार्माण शरीरमें परिस्पंद होता ना, और कार्माण शरीरमें परिस्पंदके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निमित्तसे अनेक बातें भी होतीं और औदारिक शरीरसे भी योग होता, वैक्रियकसे भी हो जाता है, मगर तैजस शरीरमें कोई हलन-चलन नहीं। अगर मुख हिला तो इसके साथ जो तैजस शरीर चमक रहा वह भी हिला मगर तैजस शरीर कोई स्वयंके हिसाबसे नहीं हिला। योग तैजसमें नहीं है इस कारण तैजस शरीरका तो यहाँ प्रसंग नहीं। जिन-जिन शरीरोंके योग होते हैं उन उन शरीरोंकी बात कही जा रही है। उनमें से उपभोग वाले शरीर कितने हैं और उपभोगरहित शरीर कितने हैं ? तो उपभोग वाले शरीर हैं तीन–औदारिक, वैक्रियक और आहारक और निरुपभोग्य हैं—तैजस और कार्माण मगर योग वाले शरीरमें तैजस नहीं इसलिए सयोग शरीरमें निरुपभोग है तो ऐसा है कार्माण शरीर, इस प्रकार इस प्रकरणमें योगनिमित्तक वृत्तोंका वर्णन किया। दूसरे अध्यायमें जीवतत्त्वकी बात कही गई तो सबसे पहले स्वतत्त्व और उपयोग इन दो की बात कही, जिसका कि जीवके साथ सम्बन्ध है, तादात्म्य है, जीवकी परिणति है, उसके बाद फिर योगका वर्णन किया। योगके वर्णनमें चूँकि शरीरका ग्रहण योग द्वारा होता ना, तो शरीरका वर्णन हुआ। अब शरीरका वर्णन होनेके बाद उसीसे ही सम्बंधित थोड़ा वर्णन और ज्ञातव्य है, जिसमें पहले यह बतला रहे हैं कि जो ये शरीर हुए सो ये किस किस जन्मसे कौन-कौन शरीर होते हैं ? शरीर ५ हैं, उनमें से औदारिक शरीर किस जन्म द्वारा प्रकट होता है, बनता है ? ऐसे ही सभी बातें पूछी जायेंगी। यहाँ प्रथम औदारिक शरीरकी बात कहते हैं।

गर्भसंमूर्छनजमाद्यं ॥४५॥

औदारिक शरीरकी गर्भजता अथवा सम्मूर्छनजताका नियम—आदिका शरीर गर्भ और सम्मूर्छन जन्मसे उत्पन्न होता है। आदिका शरीर मायने औदारिक। जितने भी औदारिक शरीर हैं या तो वे गर्भसे उत्पन्न होते या संमूर्छनसे। तीसरे कौन शेष बचे ? उपपाद। उपपाद जन्मसे औदारिक शरीर नहीं बनता, उपपाद जन्मसे तो वैक्रियक शरीर बनता है। शरीर बननेकी विधि यह ही है कि कोई जीव पहले भवसे आया, मोड़ा लेकर चला तो विग्रह गतिमें भी वह जीव रहा, पर वास्तविक विधिमें तो पूर्वभवको छोड़कर चला, वहींसे जन्म हो गया नई गतिका और शरीर सम्बन्धकी दृष्टिसे देखें तो विग्रह गतिसे चलकर जन्मस्थानपर आया तो जन्मस्थानपर आते ही शरीर वर्गणाओंको ग्रहण करने लगे तो जन्म वहाँ कहलाया और लौकिक पुरुषोंकी दृष्टिमें जब अंडेसे बाहर निकला जीव या पेटसे बाहर निकला तो उसे लोग जन्म कहते हैं, या एकदम शरीर सामने दिखने लगा तो लोग जन्म कहते हैं। गर्भमें जब यह जीव आया तब कोई समझ पाता है क्या कि जीव आया और जन्म हो गया ? गर्भकी बात तो जाने दो, सम्मूर्छन जन्ममें भी तत्काल कोई नहीं समझ पाता कि यहाँ यह जीव आ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गया । अभी किसी दिन रातको खूब बरसात हो जाय तो दूसरे दिन, दिनमें देखो तो इतना अधिक मेढक जमीनमें छा जाते हैं कि जमीनमें पैर धरना मुश्किल हो जाता है । बताओ वे मेढक कहांसे आ गए ? उन मेढकोंका शरीर बनते हुए किसीने देखा है क्या ? नहीं देखा ना । तो लोकव्यवहारमें तो जब शरीर प्रकट दिखने लगे तब उसे जन्म कहा जाता है, पर यहां जन्म शब्दसे क्या बात लेना है ? शरीरका प्रकरण है, इस कारण न तो गति आयुका उदय जिस कालमें हो वह जन्म है, यह अर्थ न लेना और न यह अर्थ लेना कि जब पेटसे बाहर निकला, शरीर दिखा तब जन्म है । किन्तु यह जीव जन्मस्थानपर पहुंचकर शरीर वर्गणाओंको ग्रहण करे उसका नाम जन्म है । तो यह औदारिक शरीर यह गर्भसे और संमूर्छन जन्मसे होता है । अब देखिये वैक्रियक शरीर किस तरह होता है ?

औपपादिकं वैक्रियिकं ॥४६॥

वैक्रियक शरीरकी उपपाद जन्म प्रभवता—वैक्रियक शरीर उपपाद जन्मसे उत्पन्न होता है । उपपाद देवोंके होता है उपपाद शैयाके रूपमें और नारकियोंके होता है । जमीनके नीचे हिस्सेमें लटकते हुए घंटाकार, झालर वगैराके ढंगसे, सो देवोंका वैक्रियक शरीर तो इस उपपाद शैयापर बच्चेकी तरह लोटा हुआ होता है और नारकियोंका वैक्रियक शरीर झालर घंटा आदिक जैसे स्थानोंसे टपकता हुआ होता है । देखिये देवों और नारकियोंके जन्ममें पुण्य और पापका अन्तर है । देवोंका वैक्रियक शरीर तो इन्द्रिय सुखके लिए है और नारकियोंका वैक्रियक शरीर उनके कष्टके लिए होता है । तो दोनों ही प्राणियोंके वैक्रियक शरीर उपपाद जन्मसे उत्पन्न होते हैं । ऐसी वैक्रियक शरीरकी बात बतानेसे यह ही जाहिर हाता कि वैक्रियक शरीर देव और नारकियोंके ही होता है, दूसरेके नहीं, किन्तु सुना गया तो ऐसा कि अनेक मुनिराजोंके वैक्रियक शरीर भी बने, विक्रिया ऋद्धि हो गई और उन्होंने उस शरीरमें जैसा चाहे परिणमन कर दिखाया । विष्णुकुमार मुनिने हाथ फैलाया तो वह मानुसोत्तर पर्वत तक चला गया । उनको विक्रिया ऋद्धि थी । तो ऐसा वैक्रियक शरीर तो फिर ग्रहणमें न हुआ तब इसके समाधानके लिए सूत्र कहते हैं ।

लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

लब्धिप्रत्ययक वैक्रियक शरीरका निर्देश—वैक्रियक शरीर लब्धिके कारणसे भी होता है । याने कर्मका क्षयोपशम, ऋद्धियोंका उत्पन्न होना, इन कारणोंसे भी वैक्रियक शरीर होता है । यहां शब्द तीन लग गए—लब्धि, प्रत्ययं, च । पद दो हैं, लब्धिप्रत्ययं और च । तो यहां प्रत्यय शब्दका क्या अर्थ है ? तो देखो प्रत्यय शब्दके अनेक अर्थ होते हैं—कहीं तो ज्ञान अर्थ में आता । जैसे कहते हैं कि जैसा अर्थ है वैसा ही शब्द है, वैसा ही प्रत्यय है । शब्दके अनुसार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यय होता। तो प्रत्ययका अर्थ कहीं ज्ञान भी लिया जाता, कहीं प्रत्ययका अर्थ सच्चाई भी लिया जाता। अच्छा तुम इस बातका प्रत्यय करो, मायने सत्य बताओ। कहीं प्रत्ययका अर्थ शपथ भी है, कहीं कारण भी है। जैसे कर्मबन्धके प्रत्यय मिथ्यादर्शन असंयम आदिक हैं तो प्रत्ययके जब अनेक अर्थ हैं तो उनमें से यहां कौनसा अर्थ लेना चाहिए? प्रत्ययका अर्थ है कारण। समास वाला पद है इससे यह विग्रह हुआ कि लब्धि है कारण जिसका ऐसा भी वैक्रियक होता है। लब्धिविशेष प्राप्त हो जानेसे मुनिजनोंके वैक्रियक भी बन जाता याने औदारिक शरीरसे संबद्ध विक्रिया हो। लब्धिके मायने क्या हैं? तपश्चरण विशेषके कारण ऋद्धिकी प्राप्ति होनेका नाम लब्धि है।

उपपाद और लब्धिमें अन्तर—देखो पहले सूत्रमें क्या बताया था कि उपपादसे वैक्रियक होता और सूत्रमें क्या बतला रहे कि लब्धिसे वैक्रियक हुए तो उपपाद और लब्धिमें अन्तर क्या रहा? उपपाद और लब्धिमें यह अंतर है कि उपपादमें तो निश्चय है कि उपपाद जन्मसे जो शरीर होंगे वे नियमसे वैक्रियक ही होते हैं। और उपपाद एक निश्चयकी चीज है, पर लब्धि तो कादाचित्क है। किसीके तपोविशेष होनेपर कोई उस ढंगका बना हुआ भी जो अनेकके न भी हो और तपस्यामें प्राप्त हो गया, फिर भी जब उस ऋद्धिका उपयोग करे तो वैक्रियक शरीर बने, मगर देव और नारकियोंका तो वैक्रियक शरीर जन्म पर्यन्त है और उपयोगमें चल रहा है। इस प्रकरणमें एक बात यहाँ समझ लेना कि देवोंका जो आवागमन चलता है मनुष्यक्षेत्रमें, और और जगह तो देवोंका जो असली शरीर है वैक्रियक और उपपाद शैयापर प्रकट हुआ, वह शरीर कहीं नहीं जाता। वह तो अपनी जगहमें, अपने ग्राममें, जितनी कि उसकी एक सीमासी है वहीं तक रहता है। यहाँ जो शरीर आता है वह उत्तर विक्रियाका शरीर है याने विक्रियाके बाद और विक्रिया करे, उससे यह शरीर आया। तो यह भी एक कादाचित्कसा हुआ। जब उनके मनमें आये तो करते उत्तरविक्रिया, पर मूल शरीरकी जो विक्रिया है वह तो वैक्रियक ही है। वहाँ वे परमाणु विक्रिया वाले ही हैं, किन्तु लब्धिपर्यासक वैक्रियक शरीरमें नियम नहीं है कि जब उपयोग करें तब हो। सभी समयमें नहीं, सभी जीवोंमें नहीं, इस कारण लब्धि और उपपाद—इन दोनों कारणोंमें बहुत अन्तर है।

विक्रियाका अर्थ व विक्रियाके प्रकार—एक आशंका यहां हो सकती है कि सारे ही शरीर हैं विनाशीक, सो यह विकार तो सभी शरीरोंमें है, सो सभी शरीर वैक्रियक हैं, फिर वैक्रियक विशेष क्या रहा? समाधान यह है कि यहाँ विक्रियाका अर्थ विनाश नहीं है, किन्तु वि मायने विविध और क्रिया मायने आकार आदि करना, सो विक्रिया है। ऐसी विक्रिया देव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और नारकियोंके तो भवप्रत्ययक है, किन्तु तपस्वी जनोंके गुणप्रत्ययक है। विक्रिया दो प्रकार की होती हैं—(१) एकत्वविक्रिया और (२) पृथक्त्वविक्रिया। अपने शरीरसे अलग नहीं, किन्तु अपने शरीरको ही सिंह, व्याघ्र, हंस आदिके रूपसे कर लेना सो एकत्वविक्रिया है तथा अपने शरीरसे पृथक् जीवोंके शरीर रूपसे अथवा महल पर्वत मंडप आदि रूपसे आकार कर लेना पृथक्त्वविक्रिया है। यहाँ यह जान लेना कि पृथक्त्वविक्रिया की जानेपर भी आत्मप्रदेश अपने मूल शरीरसे उत्तर शरीरों तक निरन्तर रहते हैं। नारकियोंके तो पृथक्त्वविक्रिया होती नहीं, एकत्वविक्रिया है। क्रूर हिंसक जानवरके रूपमें तथा नानाविध आयुधोंके रूपमें विक्रिया बना लेते हैं। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व कल्पवासी देवोंके दोनों प्रकारकी विक्रिया है। स्वर्गोंसे ऊपरके देवोंके प्रशस्त एकत्वविक्रिया है, ये अहमिन्द्र बाहर विहार नहीं करते। तिर्यंचोंमें जिनके प्रकृत्या सम्भव है उनके एकत्वविक्रिया है। मनुष्योंमें तपस्वी ऋद्धि प्राप्त मुनियोंके दोनों प्रकारकी विक्रिया होती है। अब यह बतलाते हैं कि लब्धिके कारण क्या वैक्रियक शरीर ही सम्भव है या अन्य और कोई भी शरीर सम्भव है।

तैजसमपि ॥४८॥

लब्धिप्रत्ययक तैजस शरीरका विवरण—तैजस शरीर भी लब्धिके कारणसे होता है। यहाँ यह समझना कि एक तो तैजस शरीर है प्राकृतिक जो सर्व संसारी जीवोंमें पाया जाता है, जिसके कारण शरीरमें तेज रहता है। कैसा ही शरीर हो, वृक्ष हो, पृथ्वी हो, निगोद हो, कीट हो उन-उन शरीरोंके अनुरूप उनमें तेज पाया जाता है। एक तो तैजस शरीर है सर्व साधारण जीवोंमें होने वाला, दूसरा तैजस शरीर है गुणप्रत्यय ,अपने तपोविशेषसे जो ऋद्धि प्राप्त होती है उस ऋद्धिसे उत्पन्न होने वाला ऐसा तैजस शरीर निस्सरणात्मक कहलाता है याने निकलने वाला। जब उपयोग करे तब निकले, हर समय नहीं निकलता। लब्धि प्राप्त है, योग्यता मिली हुई है, निकलेगा तब जब उसरूप उपयोग होता है। तैजस शरीर दो प्रकारके होते हैं—एक प्रशस्त और दूसरा अप्रशस्त याने शुभ और अशुभ। जिसको तैजसऋद्धि प्राप्त होती है उसके दोनों तरहकी योग्यतायें होती हैं। शुभ तैजस भी निकल सकता, अशुभ तैजस भी। जब चित्त प्रसन्न रहता है, प्राणियोंपर दया उमड़ती है तब वातावरणको या उस क्षेत्र-प्रदेशको बड़ा दुःखी निरखते हैं उस समय इतनी करुणा उमड़ती है कि यह भावना बनती कि सबका भला हो, इनका दुःख दूर हो, और उस भावनाकी अधिकतामें तैजस ऋद्धिधारी मुनिके दाहिने कंधेसे शुभ तैजस निकलता है प्रशस्त आकारका और वह बहुत दूर तक फैलता है। जहाँ-जहाँ तैजस शरीरका प्रसार हो वहाँ तक न रोग रहता, न कोई प्रकारका उपद्रव रहता। जैसा वातावरण सुखके लिए चाहिए वह सब बन जाता है, और किसी समय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ये ऋद्धिधारी तपस्वी मुनि क्रुद्ध हो जायें, किसी बातपर तीव्र क्रोध उमड़ आये तो उस समय जिसका निमित्त पाकर क्रोध उमड़ा है उसको दंड देनेके लिए समझो बायें कंधेसे अशुभ तैजस निकलता है। सो यह भी फैलता है, और जहाँ तक फैलता वहाँ तककी चीजें जल जाती हैं। अग्निकी तरह इनका भयंकर रूप होता है और वे चीजें जलती हैं तो वह मुनि कहाँ रह जायेंगे ? वह भी जल जायेंगे। सब भस्म हो जाते हैं, और इस समय संक्लेश परिणाम ही तो हुआ था मुनिराजके। सम्यक्त्व बिगड़ गया था, बुरे भाव हो गए थे सो मरकर नरक जाता है। तो योग्यता तो एक योग्यता है, शक्ति है, उस शक्तिका सदुपयोग हो तो भला हो, और दुरुपयोग हो तो बुरा हो। तो ऐसा तैजस शरीर कहलाता है निस्सरणात्मक। जो शरीरसे बाहर निकले और उसका प्रभाव पड़े। और सर्व संसारी जीवोंमें होता है अनिस्सरणात्मक। वह शरीरसे बाहर नहीं निकलता, किन्तु शरीरके आश्रय रहकर वहीं तेज योग्यतानुसार उत्पन्न करता है। तो जो निकलने वाला तैजस शरीर है वह है लब्धिप्रत्ययक। तो यह बात इस सूत्रमें कही गई है। अब समस्त शरीरोंका वर्णन हो गया, मगर आहारक शरीर बिल्कुल छूट रहा था अब तक, तो अब उसके विषयमें विवरण करते हैं।

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥

आहारक शरीरका स्वरूप—आहारक शरीर क्या कहलाता है ? जो तपस्वी ऋद्धिधारी मुनिके द्वारा पवित्र कार्यके लिए रचा जाय उसे आहारक शरीर कहते हैं। आहारक शरीर एक हाथके प्रमाणका होता है। बड़े सुन्दर अंगोपाङ्ग उसमें सर्व इन्द्रियाँ। देखनेमें तो ऐसा लगता कि बस दो शरीर हैं वहाँ। मुनिराजका औदारिक शरीर है और एक आहारक शरीर भी निकलता, वह भी पूरा व्यवस्थित, बड़ा सुन्दर, पवित्र। लेकिन वे दो शरीर जुदे-जुदे नहीं हो गए। हैं तो जुदे ढंकके, मगर आहारक शरीर नामकर्मका ऐसा ही उदय है कि वह पुतला बना तो, मगर आत्मा एक है। आहारक शरीरका जीव दूसरा हो गया हो और औदारिक शरीरका दूसरा ही था, ऐसा भेद नहीं है। एक ही प्रदेश है, उसे कहते हैं आहारक समुद्घात। समुद्घातमें प्रदेशका ही विस्तार मात्र है। तो वह आहारक शरीर कैसा है ? वह शुभ है, पवित्र है, व्याघातरहित है।

आहारक शरीरकी शुभरूपता—देखो—औदारिक, वैक्रियक, तैजस, कार्माण, इनमें सबसे एक विलक्षण पवित्र आराध्य आदरणीय है आहारक शरीर। क्योंकि वह शुभ है। कोई कहे कि वाह वैक्रियक भी तो शुभ है, बड़ा पवित्र है, देवोंका वैक्रियक शरीर बड़ा पवित्र है, उसमें हाड़ मांस वगैरह भी नहीं हैं, सुहावना भी लगता है। समचतुरस्रसंस्थान होता है, बोना शरीर नहीं होता, फिर आहारकको ही क्यों शुभ कहा है ? तो भाई इनमें आहारक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही पूर्णतया शुभ है । जैसा शुभ कहा जा रहा वैसा शुभ अन्य नहीं है । शुभका कारण तीर्थ-वंदना हो, शङ्का समाधान हो, जो शुभ कार्य हैं, उत्तम कार्य हैं, उनके कारणभूत हैं वह आहारक शरीर । कोई कहे कि वैक्रियक शरीर भी तो शुभका कारण है उससे भी तो अनेक बातें कर ली जाती हैं, अनेक उपसर्ग दूर कर लिए जाते हैं । धरणेन्द्र पद्मावतीने पार्श्वनाथका उपसर्ग दूर किया । विक्रियाका ही तो बल था जिससे विष्णुकुमार मुनिने ७०० मुनियोंका उपसर्ग दूर किया । तो वैक्रियक शरीर भी तो बड़े-बड़े कामोंका कारण बनता है, फिर आहारकको ही शुभ कहनेका क्या मतलब ? समाधान यह है कि आहारक सदा शुभ रहता है । उससे और प्रकारकी आशंका नहीं होती । जब कि वैक्रियक शरीर कभी शुभ कर दिया थोड़ा तो कभी किसीका बहुत अशुभ हो जाता तो वैक्रियक भी शुभ आहारककी भांति न रहा और अपेक्षाकृत मान लो कि थोड़ा बहुत शुभ है वैक्रियक, मगर सदा शुभ रहनेकी बात नहीं है । उस विक्रियासे दूसरेका बुरा भी किया जा सकता, मगर आहारक शरीर तो कभी भी किसीके बुरेके लिए नहीं है, वह सदा पवित्र कामके लिए है । इसलिए आहारक शरीर शुभ है और इस कारण अन्य शरीरोंकी अपेक्षा यह भिन्न है, विलक्षण है ।

आहारक शरीरकी विशुद्धरूपता—दूसरी बात आहारक शरीरमें है यह विशुद्ध है, पवित्र है, क्योंकि यह विशुद्धिका कारण है । जो एक निरवद्य पुण्य कर्म है, आहारक शरीर है उसका यह कार्य है इसलिए भी शुभ है और स्वयं यह पवित्र है । देखो आहारक शरीर क्या है ? पौद्गलिक पिण्ड है । वह क्या शुभ, क्या अशुभ, क्या विशुद्ध, क्या अविशुद्ध । मगर उस आहारक शरीरके कारणपर विचार करें । आहारक शरीरके कार्यपर विचार करें । उसके प्रयोजनपर विचार करे । वह शुभ है, वह विशुद्ध है । विशुद्धिका कारण है, कार्यमें कारणका उपचार करते हैं और कारणमें कार्यका उपचार करते हैं तब यह बात कही गई कि आहारक शरीर शुभ है और विशुद्ध है । जैसे कह बैठते हैं ना—अन्न हमारा प्राण है । बताओ अन्न कोई प्राण है ? ५ इन्द्रिय, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये १० प्राण कहे गए । इन १० प्राणोंका घात हो तो बस भव छूट जाता है । अगर अन्न न मिले तो मरण हो जायगा क्या ? हाँ हो तो जायगा, मगर बहुत दिनोंमें । वहां भी वास्तवमें मरण हुआ १० प्राणोंके वियोगसे १० प्राणोंसे यह शरीर चल रहा है । उस शरीरका साधन है अन्न । तो प्राण रखनेका साधन अन्न बनता, न कि अन्न स्वयं प्राण है । तो प्राणका साधन होनेसे अन्न भी प्राण कह दिया जाता है और इसी तरह देख लो कपाससे डोरा बनता, तंतु बनता और डोरेको ही कोई कपास कह दे तो गलत तो नहीं है, उपचारसे ऐसा ही है, मगर कोई कहता तो नहीं । टाट रखा हो, टेरालीन रखा हो, लाइलोन रखा हो, कपासका सूती कपड़ा रखा हो तो कहेंगे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यह तो कपास है और यह तो दूसरी वनस्पति है। क्या—टेरालीन, लाइलोन, टेरीकाट आदि। देखिये—नाम रखने वालोंने ये नाम तो बड़े अच्छे रखे। नाम क्या है? टेरालीन याने ग्राहकने बहुत टेरा कि खरीद लें, मगर ग्राहकने ली न। तो देखिये कितना खराब है टेरालीन और कोई ले आये घरमें टेरालीन, लाइलोन और इनमें कभी आग लग जाये तो ये शरीरमें चिपटते हैं, जलते हैं, बुझनेका काम नहीं। तो स्त्री कहती है कि लाई तो लाई पर लो न, ऐसा है वह लाइलोन। तो जैसे अनेक प्रकारके कपड़े रखे हों तो उसमें बोलते हैं ना यह कपास है, यह केला है, यह अमुक है तो कार्यमें कारणका उपचार, कार्यमें कारणका उपचार भी किया जाता है। यों आहारक शरीर यह सदा विशुद्ध है, इस कारणसे अन्य शरीरोंसे यह आहारक शरीर विलक्षण है। आहारक शरीर क्या है? तपस्याकी मूर्ति है। पवित्र परिणाम हो, तपश्चरण हो विशेष बात हो तो यह आहारक शरीर बनता, ऋद्धि मिलती है।

आहारकशरीरकी अव्याघातिता—आहारक शरीर अव्याघाती है, व्याघातरहित है। इसमें किसी जीवको बाधा नहीं आती। इस कारण अन्य सब शरीरोंसे विलक्षण शरीर है। कोइ कहे वाह, तैजस शरीरसे भी तो बाधा नहीं आती। जैसे आहारक शरीर वज्र पहाड़से भी निकल जाय, ऐसे ही तैजस शरीर भी निकल जाता। बताया ही है कि विग्रहगतिमें तैजस कार्माण शरीर सब प्रतिघात रहित हैं तो फिर तैजससे विलक्षण कहां रहा आहारक? वह भी अव्याघाती और यह भी अव्याघाती। तो समाधान यह समझें कि शंकाकारने अभी उसका सही रूप नहीं समझ पाया। आहारक शरीर हर प्रकारसे अव्याघाती है याने किसी शरीरसे न छिड़े, किसी वज्रसे न छिड़े ऐसा तो अव्याघाती है ही, मगर यह आहारक शरीर किसी भी प्राणीके दुःखका कारण भी नहीं बनता। लेकिन तैजस शरीर वह तो नगरीकी नगरी जला दे तो अव्याघाती आहारक शरीर अन्य सबसे विलक्षण होता कि नहीं? विलक्षण है।

आहारकशरीरका स्वामित्व—आहारक शरीर प्रमत्तविरत संयत मुनिके ही होता है याने छठे गुणस्थानवर्ती मुनिका आहारक शरीर होता। एवकार आहारकमें न लगाना कि छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके आहारक शरीर ही होता है। इसमें तो बड़ी बाधा है, अन्य शरीर भी हैं, मगर होता तो छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके ही, अन्यके नहीं होता, वह यह तो खूब कहा। छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके वह तैजस शरीर भी होता। तैजस और आहारक तो एक सगे मित्र हो गए ना? नहीं-नहीं, आहारक शरीर विशिष्ट प्रमत्त संयमी मुनिके ही होता है। अच्छा तो वह भी होता है किसी विशिष्ट मुनिके, मगर आहारकमें तपोबल ऋद्धिविशेष अधिक आदरणीय है, महत्त्वकी चोज है। ऐसा यह आहारक शरीर शुभ है, विशुद्ध है, व्याघातरहित है। यह प्रमत्तसंयमी मुनिके ही होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आहारकशरीरकी रचनाके प्रयोजन—इस सूत्रमें 'च' शब्द दिया हुआ है। च आहारकं। 'च' शब्द देनेकी कोई जरूरत न थी। सूत्रके कहनेका जितना भाव है वह 'च' शब्दके बिना ही निकल आता है। फिर 'च' शब्द यहाँ व्यर्थ हो गया, लेकिन यह जानें कि सूत्रमें कोई शब्द व्यर्थ नहीं हुआ करता। जो शब्द व्यर्थ पड़ा हो वह एक सिगनल है, संकेत है, वह किसी और बातका संकेत करता होगा। किसका संकेत करता है यह 'च' शब्द ? आहारक शरीरके प्रयोजनका संकेत करता है। यह आहारक शरीर निकलता क्यों है ? किस कामके लिए निकलता है ? देखिये—तभी तो लब्धिके सद्भावकी जानकारीके लिए बनती। जान लिया, है कि नहीं, ऐसा कभी-कभी कोई मनुष्य करते हैं, पर इसके करनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। किसीकी बात आ गई, आखिर शुभोपयोग ही तो है, यह अशुभोपयोग नहीं है। यह जानना चाहिए कि मेरेको आहारक शरीर है कि नहीं, किन्तु शुभोपयोग है ऐसी इच्छा आयी जानकारीमें। यों शुभोपयोग है, उस आहारक शरीरका यह ही तो प्रयोजन निकालना चाहेंगे तपस्वी। कभी कोई शंका हो तो उसकी शंका दूर हो जाय। कभी कोई तीर्थवन्दनाका भाव हो तो तीर्थवंदना कर आयें। इसमें विशेष संयमकी भी सिद्धि हो जाती है। मान लो यह औदारिक शरीर जाता किसी तीर्थवन्दनाके लिए तो सम्भव है कि उससे दूसरे जीवोंकी विराधना होती, मगर आहारक शरीरको भेज दिया तीर्थवन्दनाके लिए तो वह सब काम कर आयगा। वह आहारक शरीर जो गया तीर्थवन्दनाके लिए वह कोई आत्मासे जुदी चीज नहीं है। आत्माके ही प्रदेश गए हैं। उसमें कोई फर्क नहीं आता कि औदारिक शरीरमें जाकर वंदना करे तो उसमें कोई ज्यादा अतिशय बन गया हो और आहारक शरीरमें वंदन कर आये तो उसमें कुछ अतिशय न बनता हो। जीव तो वही है। आहारक शरीरके माध्यमसे वंदना कर ली, संयमकी रक्षा हो गई, किसी जीवकी विराधना भी न हुई, समय भी न लगा, और आहारक शरीरके द्वारा वही काम सब पूर्ण हो जाता है, इस आहारक शरीर का प्रयोजन है कोई तत्त्वमें शंका हो, जानकारी करना हो तो यह आहारक शरीर केवली, श्रुतकेवलीके निकट जाता है, कहीं हों, दूर हों तो भी भरत ऐरावत क्षेत्रसे ज्यादा आहारक शरीररचनाका कोई कारण नहीं है। वह तो अपने देशमें है, जब भरत ऐरावत क्षेत्रमें केवली भगवान नहीं रहे, चतुर्थकालमें भी जिस समय न हो कोई तो उस समय यह आहारक शरीर विदेह क्षेत्रमें सीधा जाकर केवलीके वंदन करता है, उनका दर्शन करते ही समस्त संशय दूर हो जाते हैं।

आहारकशरीरकी रचना व गति—देखो जीवोंकी लीलाकी विचित्रताकी बातें होती रहती हैं। इन सबमें जीवका ही तो एक महत्त्व है। कैसी ही सही, किसी भी स्थितिमें सही,

http://sahjanandvarnishastra.org/

आहारक शरीर पहले तो यहीं मस्तकमें बनता है। बननेमें थोड़ा समय लगता है। उतने समय यह अपर्याप्त रहता है आहारक शरीर। देखो जिस समय आहारक शरीर रचा जा रहा है और आहारक शरीरको काममें लिया जा रहा है उस समय औदारिक काययोग नहीं रहता है। कितनी विलक्षण बात है कि शरीर तो औदारिक पड़ा है, पर उसका योग नहीं है, परिस्पंद नहीं है और उस समय मनोयोग, वचनयोग भी नहीं रहता। अरे आहारक शरीर भी एक विलक्षण शरीर है कि उसके योगके समयमें मनोयोग भी नहीं बन रहा, वचनयोग भी नहीं चल रहा। कैसा एक ही अद्भुत अपूर्व काम हो रहा ? बन गया आहारक शरीर। जब तक नहीं बन पा रहा था, पर्याप्ति पूर्ण नहीं हो रही थी तब तक तो था आहारक मिश्रकाययोग और जब आहारक शरीर बन गया तो अब गति हो गई। आहारक काययोग हो गया। अब यह शरीर भी इतना विशुद्ध सूक्ष्म निराला है कि यह चक्कर नहीं लगाता है। यह सीधा ही गमन करता है। और क्यों जी, भगवान अगर चक्कर वाली गलीपर बैठे हों तो आखिर श्रेणी पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, ऊपर नीचे पंक्तिरूप ही तो है और इस श्रेणीके सीधमें केवली भगवान न मिलें तो फिर क्या होगा ? आहारक शरीर जायगा, सीधा जायगा और जहाँसे मोड़ा लेना पड़ता है यह मुड़कर नहीं जाता उस आहारकसे और आहारक बनता है। दर्शन कर आयगा, वापिस आ जायगा, आहारकमें मिलेगा। वह एक आहारक मस्तकमें आयगा और यहीं उसकी एक विधि समाप्त हो जायगी। लब्धि बराबर हो गई, मगर आहारक शरीरकी रचना हर समय नहीं हुआ करती कि मस्तकमें हर समय बना रहता हो। दूसरी बार आवश्यक होगा तो नया निर्माण होगा, ऐसा यह पवित्र आहारक शरीर संयमकी रक्षाके लिए, लब्धिकी ज्ञापनाके लिए, शंकाके निवारणके लिए, तीर्थवन्दनाके लिए इस आहारक शरीरका प्रयोग होता है।

जीवके शरीर व शरीरके अंगोपांगोंकी विभक्ति—जीवके ये ५ शरीर हैं—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण। इन शरीरोंमें कार्माण शरीर तो कर्म हैं। उसके अंगोपांग के रूपमें स्वतंत्र रचना नहीं है। कर्मपिण्ड हैं। जैसे यह स्थूल शरीर मिला उस प्रमाण जीव बनता है आकारमें, उसी प्रमाण कार्माण शरीर रह जाता है। उस कार्माण शरीरके भिन्न कोई अंगोपांग नहीं है, और तैजस शरीरके कोई भिन्न अंगोपांग नहीं हैं। तैजस तो तेज है। वह शरीरके आश्रयसे अपना प्रभाव बनाता है, उस तैजस शरीरके हाथ-पैर कुछ अलग हों सो बात नहीं। कर्मसिद्धान्तका जिन्होंने ज्ञान किया वे जानते होंगे कि नामकर्मके भेदोंमें औदारिक शरीर नामकर्मके ५ भेद बताये हैं— (१) औदारिक शरीर नामकर्म, (२) वैक्रियक शरीर नामकर्म, (३) आहारक शरीर नामकर्म, (४) तैजस शरीर नामकर्म और (५) कार्माण शरीर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नामकर्म। लेकिन अङ्गोपाङ्गके जो भेद किए गए, वे तीन हैं—(१) औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग नामकर्म, (२) वैक्रियक शरीर अङ्गोपाङ्ग नामकर्म, (३) आहारक शरीर अङ्गोपाङ्ग नामकर्म। कार्माण शरीरके अङ्गोपाङ्ग नहीं होते। तैजस शरीरके अङ्गोपाङ्ग नहीं होते। कोई कहे कि बताओ कार्माण शरीर पुरुष है कि स्त्री? तो वह न पुरुष है, न स्त्री। तैजस शरीर पुरुष है कि स्त्री? उसके अङ्गोपाङ्ग ही नहीं हैं। कैसे कहा जाय कि पुरुष है या स्त्री? अच्छा आहारक शरीर। आहारक शरीर भावसे भी पुरुषवेदीके होता और द्रव्यसे भी पुरुषवेदी होता ही है। ऐसा मुनिराजका पुतला निकलता है वह समुद्घातरूप है। उस शरीर में अलगसे वेदनामकर्म लगा हो, सो बात नहीं। वह सब उस ही एक आत्माके लिए है, तो जैसे पुरुषवेदी वह आत्मा है सो सब पुरुषवेदी। अंग और उपांग की विशेष स्वतंत्रता देखना कि इसकी रचना औदारिक शरीर और वैक्रियक शरीरमें है। और वहाँ ही वेद समझा जाता है। अब कुछ यह भी जानकारी करें कि किन जीवोंमें कौनसा वेद होता है?

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

मात्र नपुंसकवेद स्वामी—जो नारकी जीव हैं, सम्मूर्छिम जीव हैं वे नियमसे नपुंसक ही होते हैं। नरक मायने क्या? तो पहले 'नारक' शब्दका अर्थ समझिये—नरान् कायंति इति नारकाः। जो मनुष्योंको शब्दायमान करा दे, कांय-कांय करा दे। जैसे नरकोंके दुःखोंका चिन्तन करते समय यह मनुष्य तो चिल्ला उठेगा—आह। तो जो मनुष्योंको एक चीख उठा दे ऐसा है कौन? नारकी। वे यहाँ चीख उठाने तो नहीं जाते। अर्थ समझना है कि नरकोंमें कितना दुःख है कि उन दुःखोंका स्मरण भी हो जाय थोड़ा तो शस्त्रकी तरह इस जीवको चुभन पैदा कर दे। इसीलिए उनका नाम रखा है नारक। यह बात तो समझ लो, पर नरका अर्थ बतलावो, नर किसे कहते? लोग कहेंगे कि हम मनुष्य हैं, नर हैं, पर 'नर' शब्दका अर्थ क्या निकलता है सो तो देखो—धर्मार्थकाममोक्षपुरुषार्थरूपाणि कार्याणि नृणंति इति नराः—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार पुरुषार्थरूप कार्यमें जो अपनेको ले जाय, लगाये उसको नर कहते हैं। अब यह अपनी-अपनी समझ लो कि अभी हम नर हैं कि नहीं? नर उसका नाम है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंमें, कार्योंमें जो अपनेको ले जाय, अपनेको लगा दे उसे कहते है नर। ऐसे नरोंको जो कंपा दें, शब्दायमान कर दें, चीख उठा दें उन्हे कहते हैं नारकी। वे नारकी नियमसे नपुंसक ही होते हैं और संमूर्छन कौन कहलाते? संमूर्छन जन्म लेने वाले जीव संमूर्छी कहलाते। ये सब सिद्ध शब्द हैं। जिनके संमूर्छन हैं उनको कहते हैं संमूर्छिम याने यहाँ वहाँके कुछ पुद्गलस्कंध मिल गए,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिनसे शरीर बनता तो वे संमूर्छिम जीव बन गए। ये संमूर्छन जीव नियमसे नपुंसक ही होते हैं। नपुंसक वेदका उदय है, भीतरमें बड़े दुःखकी ज्वाला है, कामवासना तीव्र है, मगर कर कुछ नहीं सकते। इसीलिए तीव्रता बनी रहती है। ऐसा नपुंसकवेद नारक और संमूर्छिमके नियमसे होता है, इनके और कोई दूसरा वेद नहीं होता।

न देवाः॥५१॥

देवोंके वेदसंबन्धी नियम—देव नपुंसक नहीं होते। देवगतिमें पुरुषवेद, और स्त्रीवेद ये दो ही वेद हैं। साथ ही एक बात यह समझनी कि देवगतिमें भाववेद और द्रव्यवेद की विषमता नहीं है याने शरीर तो हो पुरुषका और भाव हो स्त्री जैसा। ऐसी बात मनुष्योंमें तो मिल सकेगी पर देवगतिमें न मिलेगी। शरीर तो है स्त्रीका और भाव हैं पुरुष के। यह बात मनुष्योंमें तो तो मिल सकेगी पर देवोंमें न मिलेगी। वहाँ देवोंका भाव पुरुष जैसा ही रहेगा और देवीका भाव स्त्री जैसा ही रहेगा। देवगतिमें नपुंसक क्यों नहीं होते? नपुंसक होना पापका फल है। यहाँ भी तो देख लो—अगर मनुष्योंमें कोई नपुंसक पैदा हो गया तो वह घर कैसे रहे? उसे हिजड़ा लोग ले जाते और अपनी गोष्ठीमें रखते। उनकी कोई कदर भी होती क्या? वे कितना दुखी रहते? तो देवगति एक पुण्य फलका स्थान है वहाँ सांसारिक सुखकी प्रचुरता है, वहाँ स्त्रीवेद पुरुषवेद विषयक ही सांसारिक सुखका अनुभव है, इस कारण देवोंमें नपुंसकवेद नहीं होता। देखिये वैक्रियक शरीर देवोंका भी है और नारकियोंका भी है, पर देवोंमें तो स्त्री व पुरुषवेद है पर नारकियोंमें नपुंसकवेद।

शेषास्त्रिवेदाः॥५२॥

तीनों वेदोंकी संभवताके धाम—अभी तक यह बता आये हैं कि नारकी जीव नपुंसक, संमूर्छन जन्म वाले नपुंसक, देवगतिके जीव पुरुषवेदी हों या स्त्रीवेदी हों, इनको छोड़ कर शेषके जो जीव बचे हैं उनमें तीनों वेद सम्भव हैं। वेद शरीरविषयक भी होते और भाव संबंधित भी होते हैं। शरीर प्रकरण चल रहा है ना। इस जीवको शरीर मिला है तो शरीर का जब खूब परिचय हो जाय कि शरीर है क्या? शरीरमें क्या क्या बात है? तो शरीरसे ममता हट सकती है, यह भी एक उपाय है। पुद्गल द्रव्योंका परिचय जैनशासनमें क्यों कराया गया कि जिन पदार्थोंसे इस जीवको मोह है, राग है उन पदार्थोंकी असलियत जाननेमें आ जाय तो मोह और राग न रहेगा। इस प्रयोजनसे पुद्गलका भी वर्णन हुआ। नहीं तो कह सकते थे कि धर्मका मतलब तो आत्मासे है। आत्माको मोक्ष होना है तो आत्माकी ही बात बताओ। पुद्गल आदिककी बात क्यों कही जाती है? तो उसके कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि पुद्गलका अगर सही रूपसे परिचय हो जाय तो जीवका लगाव शरीरसे हट जायगा,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देह अपना जुदा अस्तित्व रखता, यह अपनी परिणतिसे परिणमता, यह पुद्गलका पिण्ड है। इसमें मेरा कुछ नहीं लगता। मेरा स्वरूप निराला है। यह बात समझमें आयगी तो देहसे, पुद्गलसे इसके मोह और राग दूर होंगे, इसलिए पुद्गलका भी वर्णन चला। देखो यह जीव के शरीरोंका वर्णन चल रहा। जैसे जीवकी बात बहुत ध्यानसे सुनने योग्य है इसी तरह शरीरकी भी बात सुनने योग्य है। अनादिकालसे इस जीवको शरीरमें ही तो प्रीति बनी चली आयी और इस ही प्रीतिके कारण यह जीव अनेक संकट सहता आया। प्रथम तो विकल्प संकट है। तो शरीरको देखकर इसके नाना उथल-पुथल विकल्प चलते हैं। तो इन सब विडम्बनाओंका आश्रय शरीर ही तो रहा। तो शरीरका जब सही परिचय मिले तो उसका मोह छूटेगा और सुख शान्ति होगी, इसलिए शरीरका वर्णन किया गया है।

पांच शरीरोंके विषयमें संक्षिप्त जानकारीका पुनः स्मरण—ध्यानसे सुनो—कितना अब तक जाना ? इस जीवके साथ जो शरीर लगा है सो देखनेमें तो लग रहा आपको कि एक यह ही शरीर लगा है जो दिख रहा है, पर इस शरीरके साथ दो शरीर और लगे हैं—तैजस और कार्माण। तो आप जो यहाँ बैठे हैं आपके साथ तीन शरीर लगे हुए हैं। एक तो यह दिखने वाला औदारिक शरीर और एक इस औदारिक शरीरमें तेज जिस शरीरसे मिले एक वह तैजस शरीर और एक कार्माण शरीर जो शरीरोंका बीज है। जिस कर्मकी वजहसे ये शरीर मिलते हैं, जन्म-मरण होता है। तो यह निर्णय बना लो कि मैं जीव अकेला हूं और इसके साथ ये तीन शरीर और लग बैठे हैं—इनसे इस जीवकी परेशानी चल रही है। अच्छा आपके साथ तीन शरीर हैं, और बाकी जीवोंके कैसे हुआ करते हैं सो देखिये—देव और नारकियोंके भी तीन शरीर हैं, मगर वैक्रियक, तैजस, कार्माण हैं। उनका शरीर विक्रिया कर लेता ना, छोटा बने, बड़ा बने, जन्मजात यह बात है तो उसे औदारिक नहीं बोलते। देव और नारकीके शरीरको वैक्रियक कहते हैं और उसके साथ तैजस और कार्माण लगा है। कोई बहुत ऊँचे तपस्वी ऋद्धिमान मुनि हों तो मुनिके मस्तकसे एक हाथके प्रमाण वाला स्वच्छ धवल शुभ एक पुतला निकलता है बिल्कुल मनुष्याकार, उसके निकलनेका प्रयोजन है कि वह केवली भगवानके दर्शन कर आये और साक्षात् दर्शन भी हो गया और यहाँ संयममें दृढ़ता हो गई, शंकाका निवारण हो गया तो वह कहलाता है आहारकशरीर। इस प्रकार शरीर कुल ५ होते हैं—(१) औदारिक, (२) वैक्रियक, (३) आहारक, (४) तैजस और (५) कार्माण। यह जैनशासन मानने वालोंकी प्रारम्भिक पढ़ाई है। इस तत्त्वार्थसूत्रको अर्थ-सहित अवश्य ही पढ़ना चाहिए, तो उससे यह सब पता पड़ेगा कि जीवकी कैसी हालत है, कैसे कल्याण होता है ? तो इस प्रकरणमें शरीर ५ बताये हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लक्षण और स्वरूपकी दृष्टिसे शरीरोंमें परस्पर अन्तरका दिग्दर्शन——इन ५ शरीरों को और अधिक समझना है तो एक-एक प्रसंग ले लीजिए, और यह जाननेकी कोशिश करो कि ये ५ शरीर परस्पर एक दूसरेसे न्यारा-न्यारा स्वरूप रखते हैं, इस ढंगसे शरीरोंका बहुत कुछ वर्णन मिलेगा। जैसे पहले तो नामका ही भेद है। जैसे यहाँ तख्त, दरी, चौकी, घड़ी आदि जुदे-जुदे नाम हैं, ऐसे ही इन शरीरोंके भी जुदे-जुदे नाम हैं——औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। तो पहला भेद तो इनमें नामका ही है, इससे आगे बढ़ें तो इनमें स्वरूपका भेद है इन ५ शरीरोंमें। इनका स्वरूप न्यारा-न्यारा है। जैसे औदारिक शरीरका लक्षण है स्थूलता। जैसे हम आपके शरीर स्थूल हैं ना। यहाँके मोटेको नहीं कहते, ऐसे मोटेको जैसे किसी-किसी पुरुषका शरीर ही तकलीफ देने लगता है। स्थूल मायने दिखता है, छुआ जा सकता है, छिड़ सकता है, ऐसे स्थूल शरीरको औदारिक कहते हैं और वैक्रियक शरीर कहते हैं जिसमें नाना प्रकारकी ऋद्धि है, गुण हैं, विक्रिया है, शरीरको छोटा कर लें, बड़ा कर लें, एक शरीरके अनेक शरीर बना लें।

देखो इस जीवकी अशुद्ध अवस्थाका तो इतना बड़ा ऐश्वर्य चल रहा है कि जिसके रहनेके प्रतापसे शरीरके कितने ही रूप बना लिए जा सकते हैं। कहो उस विक्रिया वाले यहीं बैठे हों और आपको शरीर न दिखे। वे अपने शरीरको विक्रियासे छोटा कर लें, बड़ा कर लें, पतला कर लें, मोटा कर लें। तो ऐसी नाना प्रकारकी विक्रिया जिन शरीरोंमें होतीं वे वैक्रियक शरीर हैं। आहारक शरीर क्या है? कोई सूक्ष्म तत्त्वका निर्णय करते हुए जिसके आहारक ऋद्धि प्रकट हुई हो, ऐसे मुनिराजकी शंकाका निवारण करने वाला एक आहारक शरीर होता है। उसके माध्यमसे निर्णय होता है। और तैजस शरीर क्या है? जिसकी धवल स्वच्छ प्रभा है, चमक है वह है तैजस शरीर। यह तैजस शरीर हम आपके पूरे शरीर में बराबर फैला हुआ है, उसीसे यह तेज है। पर एक तैजस ऐसा भी होता है कि जो तपस्या के बलसे प्रकट कर लिया जाता। अगर किसीपर क्रोध आ जाय साधुको तो बायें कंधेसे वह तैजस निकलेगा, उसे भस्म कर डालेगा, खुद भी भस्म हो जायगा। अगर दया आ जावे साधु को तो थोड़े क्षेत्रमें क्या, कोशों योजनके क्षेत्रमें सुभिक्ष हो जायगा, हरा-भरा हो जायगा, सुख साता हो जायगी। तो ऐसा तैजसकी ऋद्धिके प्रतापसे होता है। और कार्माण शरीर क्या है कि जो कर्मोंका समूह है सो कार्माण। यह ही समस्त शरीरोंको उत्पन्न करनेका बीज है। जीवके साथ कर्म लगे तो एक शरीर मिला, दूसरा मिला, मिलते गए, जन्म हुआ, मरण हुआ, जीवन हुआ, जीवन बना, जीवनका बिगाड़ हुआ। यों यह तकलीफ पाता है। सब विपदाओंका मूल है कार्माण शरीर।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारणकी अपेक्षासे पांच शरीरोंमें अन्तरका दिग्दर्शन—यह ५ शरीरोंकी चर्चा चल रही है। आप किस-किस प्रकारसे समझ सकते कि ये शरीर एक दूसरेसे निराले हैं और इनका स्वरूप बहुत विलक्षण है। देखिये—कारण भी इसके जुदे जुदे हैं कि औदारिक शरीर बना औदारिक शरीर नामकर्मके उदयसे। लोग शङ्का रखते हैं कि यह सारा जगत कैसे बन गया ? ऐसी सृष्टि किसने की ? जब यह निमित्तनैमित्तिक योगकी बात समझमें नहीं आ पाती तो कह बैठते कि इसका बनाने वाला कोई साधारण पुरुष नहीं हो सकता। इसका रचने वाला तो कोई ईश्वर ही हो सकता। पर उनको यह पता नहीं कि यह जीव स्वयं ईश्वर स्वरूप है। यह इस समय बंधनमें बद्ध है, कषायें इसके होती हैं, कर्म बँधते हैं और उनका ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि यह शरीर-रचना चलती रहती है। जैसे कई बातें निमित्त-नैमित्तिक योगमें यहाँ की हुई देखी जाती हैं। रसायन कुछसे कुछ मिला दिया आपसमें तो उनका क्या असर हो जाय ? कोई दवा चूर्णमें मिल जाय तो उसका क्या असर हो जाय ? और यहाँ रोज-रोज देखते हैं, रसोई बन रही है तो वहाँ भी निमित्तनैमित्तिक योग ही तो हो रहे हैं। अग्निका सन्निधान पाकर रोटी सिक गई। अब कोई ऐसी ही अपनी हठ बनाये कि रोटीको जब पकना था तब सिक गई, उस समय अग्नि अपने आप हाजिर हुई, तो उसका यह हठ कोई अर्थ नहीं रखता। ऐसा वाक्य तो अब तक जैनधर्मके जितने भी ग्रन्थ हैं उनमें एकमें भी न मिलेगा। हाँ सावधानी तो की है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता नहीं, पर निमित्तनैमित्तिक योग भी खूब बताया गया है। वह योग है इसलिए बताया गया, अन्यथा हाजिर होनेकी भी जरूरत क्या ? पदार्थोंमें अपनी-अपनी पर्याय पड़ी है। समय है हो गई, निमित्तकी जरूरत क्यों लेते कि निमित्त हाजिर हो गया। क्या आवश्यकता ? अरे आवश्यकता यह है कि वह कार्य होता इसी विधिसे है कि जैसे कर्मोदयका निमित्त हुआ और जीवने अपने उपयोगमें उसका प्रतिबिम्ब लिया और जीवने अपनी ही परिणतिसे उसमें अपना जुड़ाव बनाया, दुःखी हो गया, है सब द्रव्योंकी अपनी अपनी परिणति, मगर विषम विभाव विकारके जितने परिणमन हैं वे निमित्तनैमित्तिक योग बिना नहीं हुआ करते। तो क्या हुआ ? इस जीवने जो कर्म बाँधे उनके उदयानुसार शरीर रचना यह स्वयं होने लगती है। औदारिक शरीर नामकर्मके उदयसे औदारिक शरीर बनता है, वैक्रियक शरीरका कारण है वैक्रियक शरीर नामकर्मका उदय। आहारक शरीरका कारण है आहारकशरीर नामकर्मका उदय। तैजस शरीरकी रचनाका कारण है तैजस शरीर नामकर्मका उदय। कार्माण शरीरकी रचनाका कारण है कार्माणशरीर नामकर्मका उदय। देखो एक तो कर्म हैं इस जीवके साथ और वे ही सब कर्म एक ढाँचेके साथ कार्माणशरीरके रूपमें फैले तो देखो कर्म और कार्माण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शरीरमें फर्क है ना कुछ। फर्क भी है, नहीं भी है। जैसे भींत खड़ी है, अब इस भींतमें ईंटें लगी हैं। बताओ भींतमें और ईंटमें क्या फर्क है कुछ? है भी फर्क और नहीं भी है। ईंट तो कहलाती हैं जुदी जुदी फुटकर जैसी कि बिखरी हुई पड़ी हों सो ईंटें हैं और भींत वह है जिसमें ईंट बिखरी हुई नहीं हैं, उनकी एक पंक्ति बना दी गई है, वे ईंटें चिन दी गई हैं तो भींत हो गई। तो ईंटोंका जो भींतके रूपमें आकार प्रकार है उसका नाम भींत है। तो जैसे आप ईंट और भींतका मतलब समझते, ऐसे ही आप समझ लो कर्म और कार्माण शरीरका बन्धन। इन ५ शरीरोंके कारण जुदे-जुदे हैं। ऐसे ये ५ शरीर भिन्न-भिन्न अपना स्वरूप रखते हैं।

स्वामित्व और सामर्थ्यकी अपेक्षा शरीरोंमें अन्तरका दिग्दर्शन—अच्छा और भी कुछ फर्क है क्या इसमें? हाँ स्वामित्वका भी फर्क है। तिर्यंच और मनुष्यके तो औदारिक शरीर होते हैं और वैक्रियक शरीर होते हैं देव और नारकियोंके। यहाँ जो लब्धिप्रत्ययक वैक्रियक है उसकी विवक्षा नहीं, क्योंकि वह नियमित नहीं होती और उस भवमें सबमें नहीं होता और आहारक शरीर होता है छठे गुणस्थानवर्ती ऋद्धिधारी मुनीश्वरोंके। तैजस और कार्माण होता संसारके सब जीवोंके।

देखा जिस शरीरमें मोह है यह शरीर ऐसा पड़ा है निराला, इसका कारण न्यारा, इसकी करतूत न्यारी, इसका स्वरूप न्यारा, सभी बातें जुदी-जुदी हैं। अच्छा और भी इन शरीरोंमें अन्तर है। हाँ, सामर्थ्यका अन्तर है। यह है औदारिक शरीर, इसकी सामर्थ्य जानते ना, क्या शक्ति है इसमें, जानते तो हैं। वह सामर्थ्य दो प्रकारकी है—एक तो भव प्रत्ययक और एक गुणप्रत्ययक। हम आपको औदारिक शरीर मिला तो जिसका जितनी शक्ति है उसके अनुसार वह अपनी चेष्टा कर लेता है। एक बच्चा औदारिक शरीरसे थोड़ा काम कर पाता, जवान अधिक करता। झोंटा, घोड़ा, हाथी आदिकमें उनकी उनके अनुकूल सामर्थ्य है। यह तो है भवप्रत्ययक सामर्थ्य, पर जिसके गुण होते हैं उसके गुणकी भी सामर्थ्य बढ़ती जाती है।

जैसे तपस्याके बलसे ऋद्धिधारी ऋषियोंके शरीरमें विक्रिया करनेकी भी सामर्थ्य आ गई। विष्णुकुमार मुनिने हाथ फैलाया तो विक्रियाके बलसे समुद्र पर्यन्त चला गया। वह किसकी सामर्थ्य है? है तो औदारिक शरीरकी सामर्थ्य, मगर गुणके कारण सामर्थ्य है, ऋद्धि के बलसे सामर्थ्य है। वैक्रियक शरीरकी सामर्थ्य बहुत बड़ी है। देवोंको वैक्रियक शरीरमें इतनी सामर्थ्य बतायी कि वे विक्रियाके बलसे मेरू पर्वतको भी हिला सकते, जम्बूद्वीपको भी पलट सकते। देखिये किया कभी नहीं ऐसा और न करेंगे ऐसा, पर उनकी एक सामर्थ्यकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात बता रहे कि उनमें इतनी सामर्थ्य है। सामर्थ्य बतानेमें संकोच क्या करना ? वैक्रियक शरीरमें इतनी सामर्थ्य होती है। अब आहारक शरीरकी सामर्थ्यकी बात सुनो। आहारक शरीर—जहांसे निकल जाय आहारक शरीर वहाँ उससे कोई चीज छिड़ नहीं सकती। उस मुनिको भी बड़ा आनन्द उत्पन्न हो रहा, तत्त्वनिर्णय हो रहा, धर्मध्यान हो रहा, भगवान के साक्षात् दर्शन हो रहे। तैजस शरीरकी सामर्थ्य है भवप्रत्ययक तो शरीरके साथ लगा, मगर ऋद्धिधारी मुनिके कषाय तीव्र उत्पन्न हो गया, क्रोध आ जाय तो भस्म कर डाले, प्रसन्न हो जाये तो सुभिक्ष हो जाय। कार्माण शरीरका तो यह सारा ही सामर्थ्य दिख रहा है। जगतमें जो कुछ भी एक जीती-जागती फिल्म सी चल रही है यह सब कर्मका फल है। कर्म बीजका सामर्थ्य है कि जो ऐसा शरीर मिला है और उन शरीरोंका ऐसा सब कुछ हो रहा है।

शरीरसम्बन्धित मांगोंके लिये मोहीका धर्मकी ओटमें प्रयत्न—देखो हम आप जीव की तारीफ है कि ऐसी ज्ञानदृष्टि बनायें कि जिससे मोह न उत्पन्न हो। मेरा कहीं कुछ नहीं है। मेरा मात्र मैं ही ज्ञानस्वरूप आत्मा हूं जिसके यह दृष्टिमें आ जाय तो वह है धर्मात्मा पुरुष और अगर मोह रागका फल पानेके लिए ही धर्म किया जाय तो वह धर्म नहीं। मेरे बच्चे सुखी रहेंगे, रोज मन्दिर जावें, महावीरजी जावें। देखो कुछ पहले तो लोगोंके मनमें यह रहा करता था कि वे मुखसे यह न बोल सकते थे कि हम महावीरजी अपने अमुक-अमुक कामकी सिद्धिके लिए जावेंगे, पर आजकल तो लोग मुखसे बोलनेमें भी संकोच नहीं करते। मुझे अच्छे बाल-बच्चे मिलें, धन मिले, मुकदमा जीतें, विवाह हो जाय आदि अनेक बातें सोचकर जाते, तो ये सब बातें लोग अपने मुखसे कहनेमें शर्म करते थे, भले ही अपने मनमें रखते थे और धर्मके काम करते थे, मगर आजकल तो लोग मुखसे कहनेमें भी शर्म नहीं करते। "बीरा कर दे निहाल कोठी बगला बनवा लूँ" आदि अनेक भजन भी ऐसे-ऐसे बन गए कि जिनमें धर्मके विरुद्ध भगवानसे मांग की गई। लोग जिनमें धर्मके खिलाफ बोलते हैं। तो ये कर्मकी बड़ी विचित्र लीलायें हैं। इस मोहमें जो पड़ा सो संसारमें रुला और जो मोहसे अलग रहता वह संसारसे छूटता।

शरीरपरिमाणकी अपेक्षा शरीरोंमें अन्तरका दिग्दर्शन—हाँ, इस शरीरकी बात चल रही है। ५ शरीर हैं। इनका विशेष विवरण मिले कैसे कि नाना दृष्टियोंसे इनका विचार करें। अब जरा प्रमाणकी दृष्टिसे विचार करें। औदारिक शरीर छोटेसे छोटा कितना हो सकता और बड़ेसे बड़ा कितना हो सकता ? ऐसी ही सब शरीरोंकी बात है। तो यह औदारिक शरीर अंगुलके असंख्यातवें भाग बराबर हो सकता। अंगुल क्या ? एक अंगुल

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाण एक लकीर खींच लें, चौड़ा अंगुल नहीं पतला अंगुल। उसमें लाखका भी नहीं, करोड़ का भी नहीं, अरब खरबका भी नहीं, असंख्यातसे भाग दें तो जो लब्धि आये उतना छोटा शरीर औदारिक शरीर होता है। ऐसे होते हैं शरीर निगोदिया जीवके, इतनेपर भी वह स्थूल शरीर कहा जाता, औदारिक कहा जाता। और बड़ेसे बड़ा शरीर हो औदारिक तो लम्बाई की अपेक्षा बताया है कि कुछ अधिक एक हजार योजन ऊँचा एक कमल बताया है जो कि नदीस्वर द्वीपकी बावड़ीमें उत्पन्न होता है, और वैसे और तरहके सारे वर्ग क्षेत्रकी अपेक्षासे देखें तो वह महामत्स्यका शरीर है जो स्वयंभूरमण समुद्रमें पाया जाता। इतने बड़े शरीरोंमें यह जीव उत्पन्न होता है। वैक्रियक शरीरका छोटेसे छोटा शरीर कितना होता और बड़ेसे बड़ा शरीर कितना होता, सो सुनो--वैक्रियक शरीर छोटेसे छोटा होगा तो एक हाथ प्रमाण, कहाँ मिलेगा? सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें। वे बड़े ऊँचे देव हैं, एक भवावतारी हैं। सर्वारिसिद्धिसे चयकर मनुष्यजन्म पाकर मोक्ष चले जायेंगे। उनका बड़ा दिव्य आनन्द है, वे ३३ सागर तक तत्त्वचर्चामें ही रमते। ज्ञानका आनन्द सबसे बड़ा आनन्द होता है। भोजनका आनन्द तो एक कृत्रिम है, औदयिक है, और कितनी देरके लिए है? जितनी देर मुखमें है। बादमें गलेके नीचे आ गया तो घाटी नीचे माटी। थोड़ी देरका आनन्द है, और तत्त्वज्ञानका आनन्द विशुद्ध पारमार्थिक, उत्तरोत्तर विकासका ही कारण और सारी जिन्दगीभर भोग सके, ऐसा विचित्र आनन्द है।

तो सर्वार्थसिद्धिके देव सबसे ऊँचे देव हैं, उनका है एक हाथका शरीर। अब समझ लो कितना अच्छे लगते होंगे एक हाथके ऊँचे देव? जैसे छोटा बच्चा, एक हाथका बच्चा शायद एक वर्षका होगा, एक वर्षके बच्चे जैसा देव वहाँसे आये, यहाँसे आये, बैठे, तत्त्वचर्चा हो रही, ज्ञानवार्ता हो रही, वैराग्यवार्ता हो रही, आत्माका स्वरूप बखाना जा रहा, कितनी शुद्ध बातें हैं? वैक्रियक शरीर है, छोटा शरीर है। वैक्रियकमें बड़ेसे बड़ा शरीर है नारकियोंका ५०० धनुषका। आहारक शरीरका प्रमाण कितना बड़ा? एक हाथका। तैजस शरीरका प्रमाण कितना बड़ा? जितना कि औदारिक शरीर। और कार्माणका भी उसी तरह है। और वहां देखा जाय तो देखो समुद्घात अवस्थामें तैजस कार्माण शरीर तो तीनों लोकोंमें व्याप्त हो जाता है इतना बड़ा है। यहाँ बतला रहे कि हम आप लोगोंने नाना प्रकार के कर्म करके जो कर्मबन्धन किया उस कर्मके उदयमें कैसे-कैसे शरीर मिलते और यह शरीर क्या है? पौद्गलिक पिण्ड है, कर्मके उदयसे मिला है, औदयिक शरीर है, हमसे बिल्कुल भिन्न है, हमको बरबाद करने वाला है। यह कलंक है। यह शरीर रमनेके योग्य नहीं। शरीरसे मोह भी करते रहे तो भी क्या शरीर छूटेगा नहीं? छूटेगा। यह शरीर रमने लायक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है। उन शरीरोंकी ये सब व्याख्यायें चल रही हैं कि कैसे-कैसे शरीर मिलते हैं।

अब इन शरीरोंमें भिन्नता समझना है तो क्षेत्रकी अपेक्षासे भिन्नता समझ लीजिए—औदारिक, वैक्रियक और आहारक ये कितने क्षेत्रमें मिलेंगे, कितनी जगहमें मिलेंगे? याने यह शरीर कितने प्रमाण क्षेत्रमें फैल रहा है? यह लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें फैल रहा है। लोक बहुत बड़ा है। उसके असंख्यातवें हिस्सेमें यह संसार है, और तैजस कार्माण शरीर ढंगसे तो चूंकि इन तीन शरीरोंके साथ है ना तो लोकके असंख्यातवें भाग समुद्घात हो तो ज्यादासे ज्यादा कहाँ तक? सारे लोकमें। तो ऐसे इन शरीरोंमें इन सब दृष्टियोंसे परस्परमें अन्तर पाया जाता है। यह शरीर जिसका नाम ही बुरा है, जो सड़े गले सो शरीर, जीर्ण-शीर्ण हो सो शरीर। इसका दूसरा नाम देह भी है। दिह्यते इति देहः, जो ढेर बन जाय सो देह। इसका नाम तन भी है, जो तन जाय, विस्तारको प्राप्त हो जाय, फैल जाय सो तन। इस शरीरके नाम ही इस शरीरकी पोलको बतला रहे हैं कि यह कोई ठोस शक्तिमान विशिष्ट बात नहीं है, यह तो सब पोल खाता है। आत्मा स्वयं अपने आपमें ज्ञानघन है, ठोस है। वहाँ कुछ अन्तर नहीं पड़ता, ऐसे निज ज्ञानघन अंतस्तत्त्वको देखो और ज्ञानरहित जीर्ण-शीर्ण होने वाले, कभी इकट्ठा हुआ, कभी बिखर गया, ऐसा शरीरमें ममत्व भाव न करना, यह ही एक शिक्षा लेनी है इस शरीरका विवरण सुनकर।

जीवकी बन्धनदशाकी मीमांसा—प्रत्येक पदार्थ जब केवल अपने आपके एकत्वमें रहता है तब तो वह सुन्दर, पवित्र, मंगल, और जैसे ही उस पदार्थके साथ किसी दूसरेका सम्बन्ध हुआ, बंधन हुआ, उपाधि हुई तब एक क्या, वे दोनों ही बिगड़ जाते हैं, ऐसा एक जगतका प्राकृतिक स्वरूप है। सो अब जीवके बारेमें देखो—जीवके साथ जीवका तो बंधन हो नहीं सकता। जीव जीवसे कभी बँध नहीं सकता। जो ऐसा मालूम पड़ता है कि इसपर मेरा अधिकार है, यह मेरे आधीन है, यह मेरे बन्धनमें है, सो वहाँ तो सब पौद्गलिक ठाठों की ही बात है। पौद्गलिक विभाव ही परतंत्रताका अनुभव करते हैं। तो कषायें, विभाव, अभिप्राय, विचार ये तो सब पौद्गलिक बातें हैं। तो पौद्गलिकका पौद्गलिकसे ही बंधन रहा, जीवद्रव्यका जीवद्रव्यके साथ बन्धन नहीं है। आप कहेंगे—वाह निगोदिया शरीरमें शरीर तो एक है और निगोदिया जीव अनन्त रहते हैं तो एक शरीरमें अनत निगोदिया हैं तो उन जीवोंका आपसमें बंधन हो गया कि नहीं होता? जीवका जीवके साथ बंधन नहीं होता। वह एकाश्रयताकी बात है कि यह जीव भी उस शरीरके बंधनमें है।

दूसरा जीव भी उस शरीरके बन्धनमें है, अनन्त जीव भी उस शरीरसे बंधे हैं, पर जीव जीव आपसमें एक दूसरेसे बँधे नहीं हैं, तो जीवद्रव्य जीवोंसे नहीं बंधता। जीवका धर्म-

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्यसे बंधन नहीं, अधर्मसे भी नहीं, आकाशसे भी नहीं, कालसे भी नहीं, केवल एक पुद्गल बचा जिसके साथ जीवका निमित्तनैमित्तिक बन्धन है, साक्षात् बन्धन उसका भी नहीं है। जैसे रस्सीके एक छोरसे रस्सीका दूसरा छोर बाँध दिया, ऐसा बंधन जीव और पुद्गलमें नहीं होता, किन्तु निमित्तनैमित्तिक योगरूप बन्धन है। यों तो मोटा उदाहरण देख लो—घोड़ेको रस्सीसे बाँध दिया तो बताओ घोड़ेके साथ रस्सीके छोरका बन्धन किया गया ना ? अगर इस तरहसे बंधन करें तो घोड़ा तो मर जायगा। पर किया क्या ? घोड़ेका गला तो मध्यमें रहा और रस्सीके एक छोरसे दूसरे छोरमें गाँठ लगा दी। साक्षात् बंधन रस्सीका रस्सीसे है, घोड़ेसे नही, लेकिन निमित्तनैमित्तिक योग देखो कि इस परिस्थितिमें घोड़ा बँधा हुआ है, ऐसे ही यहाँ भी पुद्गलका पुद्गलसे बंधन है, जीवके साथ साक्षात् बंधन नहीं है, क्योंकि जीव अमूर्त है, पुद्गल मूर्त है। अमूर्तका मूर्तके साथ बंधन कैसे बने ? मगर चूंकि यह जीव चैतन्य है, उपयोग लक्षण वाला है, इसमें विचार उठानेका सामर्थ्य है बस इस कारणसे इसका पुद्गलके साथ निमित्तनैमित्तिक योग वाला बंधन हो गया।

शरीरत्व सब शरीरोंमें होनेपर भी उनमें परस्पर भेदके प्रदर्शनका प्रसंग—अब देखो जीवके साथ कितने बंधन हैं ? यह बात इस प्रकरणमें चल रही है। ५ शरीरोंके बंधन हैं—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर। मनुष्य तिर्यंचका जो यह कार्माण शरीर है वह सब औदारिक शरीर है। देव और नारकियोंका जो विक्रिया वाला शरीर है, वैक्रियक शरीर है, होता हो है विक्रिया वाला और ऋद्धिधारी मुनिके मस्तकसे जो एक शुभ पुतला निकलता है शंकानिवारण आदिकके लिए वह आहारक शरीर है और शरीरमें तेज रहता है वह तैजस शरीर और कर्मोंका नाम कार्माण है। कोई कहे कि शरीर शरीर सब हैं, इसलिए शरीर एक ही मान लो, यह भी शरीर वह भी शरीर, सो कहते हैं कि नहीं, उनमें परस्परमें भेद है, इसलिए सब मिलकर एक नहीं हैं उन्हीं भेदोंकी बात चल रही है।

कालकी अपेक्षा पांच शरीरोंमें परस्पर अन्तर—इन शरीरोंकी म्याद स्थिति जुदी-जुदी है, इसलिए कालकी अपेक्षा इनमें भिन्नता है। कैसे ? औदारिक शरीर, यह कमसे कम ठहरे तो अन्तर्मुहूर्त। अन्तर्मुहुर्त ही क्या, सेकेण्डोंकी बात है। कोई जीव मनुष्य तिर्यञ्चमें उत्पन्न हुआ और तुरन्त ही मर गया, मिनट भी पूरा न कर सका तो उसमें भी थोड़े समय को तो औदारिक मिश्र आया, उसके बादमें औदारिक भी आ गया और फिर रहे नहीं तो जघन्यकाल औदारिक शरीरका अन्तर्मुहूर्त है और औदारिक शरीर अधिकसे अधिक रहे तो तीन पल्य तक रहता है। इसमें औदारिक मिश्रका काल भी थोड़ा सेकेण्डभरका है। उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा तीन पल्य तक औदारिक शरीर रहता है। आपने पढ़ा होगा—भोगभूमिया

http://www.jainkosh.org

जो मनुष्य होते हैं, तिर्यञ्च भी होते हैं तो उन मनुष्योंके ज्यादासे ज्यादा आयु तीन पल्य तककी होती है। एक पल्य कितना बड़ा होता, जिसमें अनगिनते अरबों वर्ष लग जायें इतने का होता है एक पल्य और ऐसे-ऐसे तीन पल्य तककी आयु होती है। अच्छा, और वैक्रियक शरीरकी स्थिति कमसे कम और ज्यादासे ज्यादा कितनी है? तो कमसे कम १० हजार वर्षकी आयु है। देवोंकी भी कमसे कम १० हजार वर्षकी आयु और नारकियोंकी भी कमसे कम १० हजार वर्षकी आयु। और वैक्रियक शरीरकी ज्यादासे ज्यादा आयु ३३ सागर होती है, उन सबमें अपर्याप्तका काल कम कर दो, इतने दिनों तक देव और नारकी बने रहते हैं। बहुत बड़ी आयु है। प्रथम तो पल्य ही बहुत बड़ा होता है, जिसमें अनगिनते अरबों, खरबों वर्ष लग जाते हैं। इसकी कोई गणितमें संख्या नहीं है। बहुत बड़ा काल होता है जो कि उपमाके द्वारा समझा जाता है। जहाँ तक गणित चलता है, चलेगा, पर समय तो अनन्त है। हम उसके आगेके समयको कैसे समझें? तो उसके समझनेका उपाय केवल उपमा है और वह उपमा सत्य है। केवली भगवानकी दिव्यध्वनिसे आया, मनःपर्ययज्ञानी गणधरोंने इसको प्रकट किया। कितनी बड़ी आयु होती है देवोंकी? ३३ सागर। वह जरा उपमासे समझो। दो हजार कोशका एक लम्बा-चौड़ा गड्ढा हो। कोई बनाने जायगा क्या? यह बनानेकी, प्रयोग करनेकी बात नहीं, मगर अधिक लम्बे समयकी उपमा बनानेकी लिए उपमा करनी पड़ती है, इतने लम्बे चौड़े गहरे गड्ढेमें छोटे-छोटे कोमल रोमके टुकड़े भर दो, जिनका दूसरा हिस्सा न हो, और उसपर हाथी फिरा दो ताकि वह गड्ढा खूब ठसाठस भर जाय और फिर प्रत्येक १०० वर्षमें एक एक रोमका टुकड़ा निकालो। अब उन सारे टुकड़ोंके निकलनेमें जितना समय लगे उतने समयका नाम है व्यवहारपल्य। फिर उससे अनगिनते गुणे होता है उद्धारपल्ल, उससे अनगिनते गुना होता है अद्धापल्य। एक करोड़ अद्धापल्यमे एक करोड़ अद्धापल्यका गुणा करके जो आवे उतने समयका नाम है एक कोड़ाकोड़ी अद्धापल्य। ऐसे ऐसे दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यका एक सागर होता है। ऐसे ३३ सागर तक बने रहते हैं देव और नारकी। यह कालकी अपेक्षा बात चल रही है। आहारक शरीर कितने काल तक रहता है? अन्तर्मुहूर्त तक आहारक शरीर बना, निकला, दर्शन हुआ, वापिस आ गया। इसमें मिनटोंका भी समय नहीं। तो आहारक शरीरका काल है अन्तर्मुहूर्त और तैजस शरीर का काल परम्परासे तो अभव्य जीवका तो अनादि अनन्त है, भव्योंमें भी जो भव्य कभी भी मुक्त न हो सकेंगे, ऐसे भव्योंका तैजस भी अनादि अनन्त है परम्परया और जो भव्य मोक्ष जायेंगे उनका अनादि सान्त है तैजस शरीर। यह ही बात कार्माण शरीरमें समझना। अगर तैजसके निषेकोंकी दृष्टिसे देखें तो जो तैजस शरीरके परमाणु हैं वहीके वही रह सकें लगातार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो ६६ सागर तक रहते हैं और कार्माणके ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक रहते हैं। कर्मके वही परमाणु अधिकसे अधिक रहेंगे।

दूरातिदूर भव्यका प्रवर्तन—इस प्रकरणमें अभी आपने यह सुना कि ऐसे भव्य भी होते हैं जो कभी मोक्ष न जायेंगे। तो फिर उनका नाम भव्य ही क्यों रखा ? यह तो पदार्थों की योग्यताकी बात है। हैं तो वे रत्नत्रय पानेके योग्य, मगर पा सकते नहीं कभी। यह तो स्वरूपकी बात है। आप कहेंगे—ऐसा कैसे ? तो सुनो। आप भविष्यकालकी बात सुनते समझते ना ? भविष्यकाल किसे कहते ? जो आगे आये उसे कहते हैं आगामी काल। जो कभी आगे आयगा उसका नाम है भविष्यकाल। अच्छा जरा दृष्टि तो दो—क्या कोई ऐसा भी आगामी काल है जो कभी आगे आयगा ही नहीं ? हाँ है। कैसे ? देखिये अगर सारा आगामी काल आ जाय तब तो फिर कालका अन्त हो जायगा। तो ऐसा भी आगामी काल है कि जो कभी भी आयगा ही नहीं और नाम है आगामी काल। अगर यह बात न मानें और सोच लें कि आगामी काल तो सारा आकर ही रहेगा तो फिर बताओ काल बचेगा क्या ? तब तो फिर न बचेगा। तो जैसे आगामी काल (भविष्यकाल) उसका भी नाम है पर वह कभी आगे आयगा नहीं, ऐसे ही भव्य जीवोंमें समझ लो कि अनन्त भव्य जीव ऐसे हैं कि जिनका नाम तो है भव्य पर वे कभी मोक्ष न जा सकेंगे। खैर, ये सब शरीरोंके काल बताये हैं। इस कालकी अपेक्षासे उन शरीरोंमें अन्तर जाना जाता है देखिये जो जीवके ५ शरीर बताये गए हैं उन शरीरोंके बारेमें विवरण चल रहा है। शरीरोंका परिचय कराया जा रहा है। कैसे-कैसे शरीर होते हैं ? इन शरीरोंमें परस्पर भेद है, वह भेद किन-किन बातोंके द्वारा है सो बात कही जा रही है।

अन्तरकी अपेक्षा शरीरोंमें भेद—अच्छा और भी देखिये, अंतरकी अपेक्षा इन शरीरों में भेद है। जैसे यह बात सोचो कि किसी जीवको औदारिक शरीर मिला है जैसे हम आप सभीका, स्थावरोंका द्वीन्द्रिय आदिकका। चार इन्द्रिय तक तो हैं ही औदारिक, पञ्चेन्द्रियमें देव और नारकीको छोड़कर शेष जितने हैं सबके औदारिक हैं। औदारिक शरीर मिला है किसी जीवको और फिर औदारिक शरीर न मिले, नष्ट हो जाय और फिर मिले तो ऐसी बीचमें अन्तरकी अवस्था कितनी हो सकती है ? यह बात सोचो। तो बताया है कि जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है। औदारिक शरीर मिटा फिर तिर्यञ्च हुआ या मनुष्य हुआ, अन्तर्मुहूर्तको औदारिक मिश्र आ गया, बीचमें फिर औदारिक हो गया। तो जितना औदारिक मिश्रका काल है उतने तक अन्तर रहा तो औदारिक शरीर मिटा, फिर मिला तो ऐसा बीचका अन्तर कमसे कम तो अन्तर्मुहूर्त और ज्यादहसे ज्यादह ३३ सागर। कैसे ? औदारिक शरीर वाला

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मनुष्य मर गया, औदारिक शरीर मिट गया और मरकर वह देव हो गया। अब देवोंका समय तो ३३ सागर है और साथमें यह भी नियम है कि देव मरकर मनुष्य या तिर्यञ्च हुआ करता, किन्तु ३३ सागरकी आयु पाने वाला देव मरकर मनुष्य ही बनता है। अब औदारिक शरीर बन गया तो ३३ सागर प्रमाण इस औदारिक शरीरका अन्तर हुआ। औदारिक मिश्रका काल भी अन्तरमें शामिल करना। अन्तरकी अपेक्षासे इन शरीरोंमें भेद समझ लीजिए। वैक्रियक शरीरका कितना अन्तर हो सकता ? वैक्रियक शरीरका अन्तर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त है। कोई देव था, मर गया, वैक्रियक शरीर मिट गया, मनुष्य या तिर्यञ्च हो पाया कि अन्तर्मुहूर्तमें ही वह मर गया, तिर्यञ्च हो गया और तिर्यञ्च मर गया, फिर देव हो गया, तो उसका अन्तर्मुहूर्त ही अन्तर रहा। ऐसा जीव देव होकर तिर्यञ्च या मनुष्य में उत्पन्न होकर फिर देव बना। वैक्रियक शरीर अन्तर्मुहूर्तको न रहा फिर बन गया। अच्छा वैक्रियक शरीर मिट जाय और फिर होनेके लिए बीचमें ज्यादासे ज्यादह अन्तर आये तो कितना ? यह अन्तर अनन्तकाल आ सकता है। कोई देव है, मर गया, तिर्यञ्च बन गया, मनुष्य बन गया, तिर्यञ्च हो गया, स्थावर हो गया, निगोदिया हो गया अब तो अनन्तकाल तक घूमे ? कभी फिर अनन्तकालके बाद त्रस पर्याय पाकर फिर देव बन जाय, नारकी हो जाय। कितना अन्तर हो गया वैक्रियक शरीरमें ? तो अंतरकी अपेक्षा इन शरीरों में परस्पर भेद समझा जा सकता है।

अब आहारक शरीरकी बात देखिये—आहारक शरीर हुआ किसी ऋद्धिधारी मुनिके, और फिर मिट गया, फिर आहारक शरीर बना तो बीचमें कितना अन्तर पड़ेगा ? तो जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। कोई ऋद्धिधारी मुनिने आहारक शरीर रचकर काम किया। यह सब एक जीवकी अपेक्षा बात चल रही है। काम करके आहारक शरीर मिट गया, लो काम भी निपट गया, फिर अन्तर्मुहूर्तमें फिर आहारक शरीरकी रचना कर ली तो ऐसे आहारक शरीरका अन्तर अन्तर्मुहूर्त रहा और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल रह सकता, यह अनन्तकाल, जिसका अन्त न आये वह नहीं है, किन्तु कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल। जिस कालको अवधिज्ञानी नहीं जान सकता, सर्वावधि ज्ञानी भी नहीं जान सकता। सर्वावधि ज्ञानीकी सीमासे बाहरका जो काल है उसे भी अनन्त कहते हैं, फिर और भी बड़ा अनन्तकाल होता है। तो आहारक शरीर होता ऋद्धिधारी मुनिके और आहारक शरीर मिटा, मुनि भी मिटा, और और पर्यायें पायीं, मानो स्थावर हो गया, निगोद हो गया, फिर मनुष्य बन गया, आखिर फिर सम्यग्दृष्टि बन गया और आहारक शरीर भी पा ले तो इतने कालके बीचमें अन्तर कितना रहा ? कुछ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल तक। तैजस शरीर

http://sahjanandvarnishastra.org/

और कार्माण शरीरमें अन्तर नहीं। ये मिट जायें तो मिटें ही मिटें, फिर दुबारा बनते नहीं।

संख्याको दृष्टिसे शरीरोंमें भेदविषयक ज्ञान—ये ५ शरीर जो जीवके साथ कलंक रूपमें लगे हुए हैं, अपेक्षाकृत उनमें कुछ भले ही छांट लें कि यह शरीर अच्छा, आहारक शरीर उत्तम। अगर उत्तम है तो आहारक शरीर सदा रहना मंजूर है क्या किसीको ? ज्ञानी जीव तो शरीररहित चैतन्यप्रकाश मात्र अपने आपकी स्थिति चाहता है। उन ५ शरीरोंमें परस्पर अन्तर किन-किन अपेक्षाओंसे समझा जा सकता है उसकी चर्चामें अब जरा संख्याकी दृष्टि देखिये—इन ५ शरीरोंमें सबसे कम है वैक्रियक और कितने हैं ? तो कोई अरबों खरबों की संख्यामें नहीं हैं, बहुत ज्यादा हैं तो जिनको यों समझो कि लोकमें आकाशप्रदेशकी जो लम्बी पंक्तियाँ हैं ना १४-१४ राजू प्रमाण, ऐसी असंख्यात श्रेणी हुई, उनमें जितने प्रदेश हैं उतने वैक्रियक शरीर हैं। यह सब शरीरोंमें तुलनाके लिये आहारककी बात छोड़ दीजिए। वे तो केवल ज्यादासे ज्यादा ५४ होते हैं। ५४ से अधिक आहारक शरीर न मिलेंगे कभी, पर औदारिककी अपेक्षा वैक्रियक कम हैं। ये असंख्यात श्रेणियाँ प्रमाण हैं। और औदारिक शरीर असंख्यात लोक प्रमाण है। लोक तो बहुत बड़ा है। तीनों लोक निष्कुट क्षेत्र। तो ऐसे अनगिनते लोक हुए, उनमें जितने प्रदेश हैं उतने औदारिक, मायने अनंतानंत। आहारक शरीर केवल अधिकसे अधिक ५४ ही हो सकते हैं। विदेहमें ऋद्धिधारी हों, और जगह ऋद्धिधारी हों। जिस समय भरत ऐरावत क्षेत्रमें चतुर्थ काल चल रहा हो वहाँ भी ऋद्धिधारी हों, और विदेह क्षेत्रमें सदा हो सकते हैं। सारे ऋद्धिधारी मिलकर भी आहारक वाले ५४ से अधिक शरीर नहीं हैं जब उनका उपयोग है। और तैजस कार्माण तो अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ये सब शरीरोंके परस्परमें भेद हैं। यह समझा जा रहा है।

प्रदेश, भाव व अल्पबहुत्वकी अपेक्षा शरीरोंकी विविधताका दिग्दर्शन—प्रदेशकी अपेक्षा भी इनमें भेद समझें। जैसे कि पहले सूत्रमें भी संकेत किया गया था। औदारिक शरीर अनन्तप्रदेशी होते हैं। वे अनन्त कितने ? अभव्योंसे अनन्तगुने सिद्धके अनन्तवें भाग। इसमें पहले एक बात और परख लें कि अनादिकालसे सिद्ध होते आये, वे कितने हैं ? अनंत सिद्ध याने एक औदारिक शरीरमें जितने परमाणु आ सकते हैं उससे अनन्तगुने हैं सिद्ध। अब आप बतलावो आखिर होते ही तो आये अनादिसे सिद्ध। तिसपर भी जेठा, बड़ा यह संसार ही है। अनन्त सिद्ध हो गए, अनन्तानन्त जीव संसारमें हैं ही और सदा रहेंगे, अनन्तकाल बाद भी यह ही बात बोली जायगी। और औदारिक शरीरसे वैक्रियक शरीरके परमाणु और ज्यादा, उससे ज्यादा आहारकके, फिर तैजसके, फिर कार्माणके। तो प्रदेशोंकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपेक्षा भी इन शरीरोंमें परस्पर अन्तर है। भावोंकी अपेक्षा देखो तो सब औदयिक भाव कहे जा रहे हैं। जो भी शरीर बना है उस-उस शरीरनामकर्मके उदयसे बना है, इसलिए एक सामान्यरूपमें तो वे सब औदयिक भाव हैं, पर विशेष रूपमें अपने-अपने शरीर वाले औदयिक भाव हैं। यह सब ५ शरीरोंमें परस्पर क्या अन्तर है ? यह बात कही जा रही है। अब एक हीनाधिकतापर विचार करो। अल्पबहुत्व मायने सबसे कम कौन शरीर हैं, सबसे ज्यादा कौन शरीर हैं ? तो इनकी संख्यावोंका जो प्रकरण था उससे समझा जा सकता है कि सबसे कम शरीर कौन हैं ? आहारक शरीर कम हैं, जिनकी ५४ संख्या कही गई और उससे अधिक हैं वैक्रियक शरीर। याने आहारक शरीरसे असंख्यातगुने हैं वैक्रियक और वैक्रियकसे भी असंख्यात गुने हैं औदारिक शरीर। औदारिकसे अनन्तगुने हैं तैजस और कार्माण। ऐसे ये ५ शरीर जो जीवके साथ असावधानीसे लग गए उनका वर्णन चल रहा है।

शरीररहित चिन्मात्र अन्तस्तत्त्वकी भावनाका प्रभाव—यह जीव अपने आपका जैसा सहजस्वरूप है शरीररहित, कर्मरहित, विकल्परहित, विकाररहित केवल शुद्ध चित्प्रकाशमात्र जो सही-सही बात है, सहज है, अपने आपके केवलमें है उस रूप अपनेको मानना होगा केवल चिन्मात्र अपने अनुभवमें होता तो शरीरोंकी यह विडम्बना न होती। अभी क्या बिगड़ा ? जो जब सम्हल जाये उसका तभी भला। जो जीव अबसे अनन्तकाल पहले सम्हले वे भी अनन्तकाल तक रुले, हमारा आपका भी अनन्तकाल तकका भ्रमण चल रहा है, लेकिन आज अगर चेत जायें तो हमारा सारा विपरीत काम सब दूर हो जाय। अपनेको अभी अनुभव करें ना। अच्छी बातके लिए तो कोई विलम्ब नहीं लगाता। भोजनमें जिसे आसक्ति है उसे अच्छा-अच्छा भोजन परोसा जाय तो खानेमें देर तो नहीं लगती, थालीमें आने भरकी देर है और कोई रईस आदमी विलम्ब करेगा भी तो उसे मालूम है कि ये लड्डू, पेड़े, रसगुल्ले आदि भागकर जायेंगे कहाँ ? हैं तो हमारे ही कब्जेमें। कोई चाहे जैसा समझे, उसमें विलम्ब नहीं करता। तो अगर संसारके सारे संकटोंसे मुक्ति पानेकी भावना है तो उसके उपायमें विलम्ब न करें। उसका उपाय सीधा सुगम यह ही है कि समस्त परपदार्थ और परभावोंसे रहित केवल चिन्मात्र चित्प्रकाशमात्र अपने आपका अनुभव किया जाय। मैं हूं यह चैतन्मात्र। इस अनुभवमें ही सामर्थ्य है कि भव-भवके बांधे हुए कर्म भी क्षीण हो जाते, शरीरोंकी परम्परा सब समाप्त हो जाती, तब फिर यह ज्ञानशरीरी रह जाता। ज्ञान ही जिसका शरीर है, अन्य कुछ नहीं है, ऐसा यह अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द और अनन्तशक्तिका एक पिण्ड हो जाता है। तो आप अपनेको अशरीर अविकार चिन्मात्र अनुभव करें, इसीमें वह धर्म है कि जिसके प्रसादसे समस्त संकट दूर हो जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

प्रकृतसूत्रसे सम्बंधित प्रासंगिक ज्ञेयका अनुस्मरण—यह मोक्षशास्त्रके दूसरे अध्याय का अन्तिम सूत्र है। इस अध्यायमें सबसे पहले जीवके स्वतत्त्वका वर्णन किया याने जीवकी परिणतियाँ क्या-क्या होती हैं, इसका विवरण बताया। जीवके भाव कोई औपशमिक हैं, कोई कर्मके क्षयसे हुए, कोई कर्मके क्षयोपशमसे हुए, कोई उदयसे हो रहे, कोई अपने आप चल रहे, ऐसे जीवके भाव हुआ करते हैं। जीवके भावोंका वर्णन करके फिर जीवके लक्षणका वर्णन किया। "उपयोगो लक्षणं" जीवका लक्षण उपयोग है, फिर उपयोगवान जीवके भेद बताये गए—संसारी और मुक्त। उपयोग तो सब जीवोंमें है। मुक्त जीवके केवलज्ञानका उपयोग है, संसारी जीवके अन्य ज्ञानोंका उपयोग है। मगर यह बात जानना है कि उपयोगकी मुख्यता संसारी जीवोंमें है। मुक्त जीवोंमें उपयोग उपचारसे है, केवलज्ञान तो सही है। केवलज्ञान उपचारसे नहीं है। केवलज्ञानको उपयोग कहना यह उपचार है, क्योंकि उपयोगकी मुद्रा किसी विषयकी ओर अभिमुख होनेकी ओर होती है तो यह अभिमुखता केवलज्ञानमें नहीं है, किन्तु सहजस्वरूपसे उनके ज्ञानमें समस्त लोकालोक विषयभूत हो जाता है। तो मुख्यतासे जो उपयोगी है। जीव हैं उनके भेद बताये गए संसारी त्रस स्थावर आदिक। उनके भेदोंका वर्णन करनेके बाद फिर कुछ योगका वर्णन चला, और जीवमें दो ही बातें मुख्य हैं—योग और उपयोग। उपयोग तो कहलाता है ज्ञानका ज्ञेय पदार्थोंकी ओर झुकना, ज्ञान का लगाव होना यह तो है उपयोग और जीवके प्रदेशोंका हलन-चलन परिस्पन्द यह कहलाता है योग। योगका वर्णन हुआ, फिर बताया गया कि संसारी जीव किस तरह योग और उपयोग करता है और उसका फल क्या है? उसका फल है शरीर मिलना। तो शरीरोंका वर्णन चला। शरीर ५ प्रकारके होते हैं—(१) औदारिक, (२) वैक्रियक, (३) आहारक, (४) तैजस और (५) कार्माण। इन शरीरोंका विशद वर्णन चला। फिर अन्तमें यह बतलाया कि जब शरीर है तो शरीरके साथ जीवके वेद भी लगे रहते हैं। वेद—पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद। ये जहाँ तक भी लगते हैं उन वेदोंका वर्णन हुआ। अब यह समस्त एक व्यावहारिक वर्णन होनेके बाद एक बात और शेष समझी गई कि शरीरोंमें यह जीव रहता है तो कब तक रहता है? जब तक आयु रहती है। मनुष्यआयु जब तक है मनुष्यशरीरोमें रहेगा, देवआयु जब तक है देवशरीरमें रहेगा। तो रहे। वहाँ यह जिज्ञासा हुई कि क्या यह नियम है कि जिसने जितनी आयु पायी हो वह उतने समय उस शरीरमें रहा ही करे। तो बतलाते हैं कि कुछ जीवोंका तो नियम है, पर सबका नियम नहीं है। यही बात इस सूत्रमें कही जा रही है।

http://www.jainkosh.org

औपपादिक जन्म वालोंकी अनपवर्त्यायुष्कता—एक तो औपपादिक याने जिन जीवोंका शरीर उपपाद जन्मसे उत्पन्न होता जैसे देव और नारकी। देवोंके शरीरकी उत्पत्ति देव देवीके सम्बन्धसे नहीं बनती, उनके माता पिता नहीं होते। देव देवियां तो जरूर होते, मगर एक सांसारिक सुख लूटने भरके लिए वह वेद है उनका। उनके संतान नहीं होती, आजकल भी तो लो। विवाह शादी कराकर जो एक नये ढंगके, नये विचारके हैं वे संतान नहीं चाहते, बस आपरेशन करा लिया, सुख भोग रहे। संतानका कौन कष्ट करे? प्रोग्राम नहीं है बच्चोंका, केवल एक भोग भोगनेका साधन बनाये हैं, ऐसी ही बात देवोंमें है। उनको आपरेशनकी जरूरत नहीं, उनके ऐसा ही शरीर है, संतान तो विषयका बाधक है। यह बात बतलाते हैं देवों के उपपाद जन्मकी। देव देवियाँ होते हैं संसारके सुखोंको भोगनेके लिए। वे भोग निन्द्य हैं, उनका फल बहुत बुरा है, लेकिन पुण्यका फल इस तरह चल रहा। उन देवोंका उपपाद जन्म है याने उपपाद शैयापर पता नहीं किसीको एकदम बालक जैसा दिखने लगा। तो वे देव बीचमें नहीं मरते। जितनी आयु पायी है उतनी आयु भोगकर ही मरते हैं। इसी प्रकार नारकी भी अपनी पाई हुई आयुके बीचमें नहीं मरते। देव तो चाहते हैं कि मेरी उम्र और बड़ी हो, क्यों मरण हो रहा, क्योंकि वे बूढ़े नहीं होते, सदा जवान रहते, विषयोंसे थकते नहीं, मनमाने विषय भोगते हैं, विहार करते हैं तो मरते समय उनको कष्ट होता है कि ऐसे एक संसारी सुखमय देह छोड़कर अपन उस घिनावने देहमें जायेंगे। वे नियमसे घिनावने देहमें ही तो आते हैं, कर्मभूमिया मनुष्य या तिर्यञ्च बन गए। और नारकी जीव यह चाहते हैं कि हमारा अभी मरण हो जाय, जिन्दा रहनेसे तो बड़ा कष्ट है, पर बीचमें उनका मरण नहीं होता। तो देव और नारकियोंका शरीर औपपादिक है। उनकी आयु बीचमें कटती छिदती नहीं है।

चरमशरीरी जीवोंकी अपवर्त्यायुष्कता—चरम शरीरी जीव जो उस ही भवसे मोक्ष जाने वाला है, उसकी भी आयु बीचमें कटती छिदती नहीं। जो उपसर्ग सिद्ध केवली हुए उनको उपसर्ग होता है। पर ऐसा ही नियोग है कि जब उनकी आयुका अंतिम समय होता है तो उसी समय उपसर्ग हो तो वे मुक्त हो जाते हैं। तो जितने चरमशरीरी याने उस ही शरीरसे मोक्ष जाने वाले हैं, उस भवसे बीचमें आयु नहीं कटती। देखिये मुक्त होनेकी तरकीब है आत्माको ज्ञानमात्र अनुभव करना। मैं ज्ञानमात्र हूँ। इस ज्ञानस्वरूपमें ही ज्ञानको जमाकर स्थिर रहना, यही है सर्वसंकटोंसे मुक्त होनेका उपाय। कर्म कैसे कटते हैं हम नहीं जानते, साधक नहीं जान रहा। साधक देख भी नहीं रहा कि कर्म मेरे कट रहे हैं क्या, कितने कट गए, लेकिन इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वमें मग्न होनेका ऐसा प्रताप है कि जैसे कर्म

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कटते हैं, जिस तरह होना है उस विधिमें स्वयं होता है, तो ऐसी दृष्टि ऐसी भावना जो रख रहा है, जो प्रयोग कर रहा है उस जीवके तो वैसे ही मरण नहीं। यहाँ ही जो समाधिमें है और अपने-अपने आत्मस्वरूपमें मग्न हो रहा है उसका कोई सिंहादिक क्रूर पशु या कोई शत्रु आकर प्राण ले ले तो उसके लिए क्या विपदा ? वह तो जो अभी है वह ही आगे है, यहाँ न रहा और जगह चला गया। यह तो एक ध्यानी पुरुषकी बात कह रहे, मगर जो उसी भव से मोक्ष जायगा उसका ऐसा अतुल प्रताप है कि उसकी आयु बीचमें नहीं छिदती।

भोगभूमिज जीवोंकी अनपवर्त्यायुष्कता—और भी कई जीव हैं ऐसे कि जिनकी आयु बीचमें नहीं छिदती, जैसे भोगभूमियाके जीव। उनकी आयु अनगिनते वर्षोंकी होती है। ३ पल्य तक होती है। पल्लका प्रमाण अरब खरब आदिककी गिनतीसे परे होता है। उनकी आयु बीचमें कटती नहीं। तो कोई जीव अनगिनते वर्षकी आयु वाले होते हैं।

चरमोत्तमदेहा का अर्थ—यहाँ सूत्र शब्दसे जब अर्थ लेते हैं तब एकदम ऐसा विदित होता है कि इसमें तीन तरहके जीव नहीं बताये, किन्तु चार तरहके बताये। कौन-कौन ? उपपादिक, चरमदेह, उत्तमदेह और असंख्यात वर्षायुष्क। ऐसा लगता सा है। औपपादिक मायने देव नारकी, ये बीचमें नहीं मरते, चरमदेह मायने उसी भवसे मोक्ष जाने वाले, उत्तम देह—मायने चक्रवर्ती नारायण वगैरह और असंख्याते वर्षकी आयु वाले भोगभूमिया। मगर ऐसा अर्थ लगानेपर एक शङ्का होती है कि उत्तम देह वाले चक्रवर्ती भी तो कोई बीचमें मर गए। जैसे अंतिम चक्रवर्ती सुभौमको देवने समुद्रमें डुबोया और अन्तमें यह भी कहा कि तू णमोकार मंत्रको यहाँ पानीमें हाथसे लिखकर पैरोंसे मिटा तो उसने किया भी वैसा, श्रद्धाहीन भी हुआ और मरण हुआ। तो यह बात तो न रही कि उत्तम देह वाले बीचमें नहीं मरते ? तब समाधानमें यह सोचना कि इसमें चारों तरहके जीवोंकी बात नहीं कही गई, किन्तु तीन तरहके जीवोंकी बात बतायी गई—औपपादिक, चरमोत्तमदेह और असंख्यातवर्षायुष्क तो चरमोत्तम देहका मतलब क्या ? चरम और उत्तम है देह जिनका। कोई कहे कि चरम शब्द भी मत बोलो, कोई एक ले लो। या तो चरमदेह बोलो या उत्तम देह कह लो, दोनों शब्द कहनेकी क्या आवश्यकता ? तो चरम शब्द कह लो यह तो निभ जायगा या उत्तम देह लगाओ। सिर्फ इतना सूत्र बनाओ—औपपादिकचरमदेहासंख्येय वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः, यह बात निभ जायगी। अगर चरम छोड़कर उत्तम शब्द लगायेंगे तो बात न निभेगी, क्योंकि प्रश्न तो वही था कि उत्तम देह वाले चक्री नारायण आदिक ये भी तो बीचमें मृत्युको प्राप्त हुए। तो कोई कहे कि इससे तो चरमदेह इतना रख लो, उत्तम निकाल लीजिए तो भाई समाधान यह है कि उत्तम निकाल लो, कोई हर्ज नहीं, मगर भक्ति इतनी प्रेरणा देती कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो चरमशरीर है वह सब उत्तम देह वाला है, ऐसा भावमें आता है। ऐसा भक्तिके साथ यहाँ चरमके साथ उत्तम शब्द दिया है।

अकालमृत्युका निराकरण करनेकी एक आशंका—अब यहाँ एक और प्रश्न है कि अवधिज्ञानी केवलज्ञानीने जो कुछ जाना भविष्यका, कोई कहे कि केवलज्ञानी तो निर्विकल्प होते, वे क्यों ऐसा जानेंगे कि यह इस समय हो रहा है। ज्ञानमें आया सब, मगर जैसे एक तुरन्तका जाया हुआ बालक ज्ञानमें सब कुछ आकर भी यह तर्क नहीं उठा सकता कि इस चीजके बाद यह चीज धरी है, इसके बाद यह, ऐसे ही केवलज्ञानीके ज्ञानमें आ गया सब, मगर वहाँ तर्क विकल्प नहीं उठाता। तो चलो केवलज्ञानीकी बात छोड़ो, अवधिज्ञानी की बात लो। अवधिज्ञानी भी तो बहुत काल (अनगिनते वर्ष) तककी बात जान लेते और फिर श्रुतज्ञानके विकल्प करके उस जानी हुई बातको विधिपूर्वक कहता भी है, तुम ५वें भव में यह होगे, छठे भवमें यह होगे, इससे पहले भवमें यह थे, यों सारी वाणी भी होती है। मृत्यु भी वह जानता है कि यह अकाल मौतसे मरेगा, यह अपने समयसे मरेगा, यह भी जान लेता। तो जब यह ज्ञानमें आ गया एक बार कि यह अकाल मौतसे मरेगा तो जब वह मरना था तब मरा फिर अकाल मौत कैसे? जिस दिन उसका मरना पहलेसे ही जान रखा था उसी दिन तो मरा, एक सेकेण्ड भी तो कम ज्यादा समय नहीं लगा तो फिर अकालमरण किसका नाम है? अवधिज्ञानी संतोंने जब जब जिस जिसका जो जो होना जाना है उसका वैसा तब तब हुआ, तब फिर अकाल कहाँ रहा?

निमित्तनैमित्तिक योगपूर्वक विषम घटनाओंकी उत्पत्ति बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें पहले तो एक साधारण बात समझिये, एक आयुकी ही बात नहीं, समस्त पदार्थोंकी बात है। अवधिज्ञानियोंने जान तो लिया कि यह इस तरह लड़ेगा, मरेगा, अमुक गतिमें जायगा, इस इस प्रकारका बर्ताव होगा, राग होगा, द्वेष होगा, जान लिया सब, मगर विधिपूर्वक होने वाले को जाना या विधि छोड़कर अटपट होते हुएको जाना? ये दो बातें सामने रखी हैं। अवधिज्ञानीने जाना कि कल ८ बजे यह आदमी भोजन कर लेगा शान्तिसे, यह जान लिया, मगर वह रसोई जिस विधिसे बनती है अग्निका सम्बन्ध पाकर रोटी सिकती है, किस तरह बनती है, महिला उसमें निमित्त है। जिस-जिस विधिसे बनती है उस-उस विधिसे बनती हुई रोटीको जाना या विधिसे हटकर बिना विधिके होने वाले भोजनको जाना? बस जाना था रोटी बन गई, जाना था रोटी खा लिया। इस तरह होनेकी बात कहनेमें ये दो विकल्प सामने हैं। यह तो ठीक कहा नहीं जा सकता कि विधिका उल्लंघन करके जाने। अग्नि हो तो, न हो तो, जब रोटी पर्याय होनी है सो हो गई, इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तरहकी बात तो युक्त न बैठेगी। क्योंकि जगतमें जो कुछ भी निर्माण चल रहा है वह सब निमित्तनैमित्तिक योगका परिणाम है। हाँ, यह बात सिद्धान्तकी सदा अमिट है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थकी परिणतिको नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके परिणमन रूप नहीं परिणमता, यह सिद्धान्त तो अकाट्य है। जैसे अग्निका सन्निधान होनेपर रोटी सिक गई तो रोटीका रोटीमें ही परिणमन हुआ मगर उस सन्निधानमें तो उस निमित्तनैमित्तिक योगके ढंगसे जो भी विकार विषम विभाव परिणतियाँ होती हैं वे बराबर चल रही हैं। उसे जान लिया यह ज्ञानका स्वरूप है, ज्ञानका प्रकाश है कि जान लिया। तो मात्र जाननेसे विधि नहीं खतम हो जाती। जिस जिस विधिपूर्वक जो जो कुछ हो रहा है वह जाननेमें आया। पहली बात तो यह समझना। इससे यह एक समाधान मिल गया कि जानना विधिपूर्वक होते हुए पदार्थका ही हुआ करता है। जाननेके कारण बात न बनी किन्तु विधियोंके कारण बात बनी। और उस बनी हुई बातको जान लिया प्रभुने, संतोंने। एक समाधान तो इसमें ही मिल गया।

अकाल मृत्युकी परिभाषा बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—अब अकाल मौतकी बात समझिये– मानो कोई पुरुष कारमोटरसे कहीं दूसरे गाँवको रवाना हुआ, उसमें मानो ४ गैलन पेट्रोल भर रखा था, मानो वह १५० मील तक पहुंचनेके लिए पर्याप्त था, पर रास्तेमें मानो वह पेट्रोल टंकी किसी वृक्ष आदिकी टक्करसे फट जाय और सारा पेट्रोल बह जाय, तब तो कार वहीं रास्तेमें ही खड़ी रह जायगी, फिर तो आगे नहीं बढ़ सकती, तो इसे समझिये अकाल मौतका उदाहरण। याने मोटरमें इतनी योग्यता थी कि वह १५० मील तक जा सकती थी मगर पेट्रोल पंप फट जानेसे वह थोड़ी ही दूर जाकर बेकार हो गई, देखो एक एक सेकेण्डमें कितना कितना पेट्रोल खर्च होता और ऐसा खर्च होते-होते कार कितनी दूर जायगी, उसका हिसाब है, ऐसे ही जिस जीवने मानो पूर्वभवमें १०० वर्षकी आयु बांध ली थी तो उसका हिसाब यों चलता है कि एक एक समयमें आयुका एक एक निषेक लगातार खिरता है। जैसे दीपक जलता है तो तैलकी एक-एक बूंद पहुंचती रहती है और जलता रहता है, ऐसे ही आयुका एक एक निषेक प्रतिसमय खिरता है तो १०० वर्षके मायने हैं कि उस मनुष्यकी आयुकर्मके उतने निषेक हैं कि एक एक समयमें खिरेंगे तो १०० वर्ष तक यह मनुष्य जीवित रहेगा। अब मानो २५ वर्षकी आयु हो पायी थी कि किसी शत्रुने आकर तलवार मार दी, सिर कट गया, उस वक्त क्या होता है कि बाकी बचे हुए ७५ वर्षोंके निषेक जो हैं वे एकदम अन्तर्मुहूर्तमें खिर जाते हैं। तो यह कहलाता है अकाल मरण। अब चाहे किसीका कोई सिर काट दे या किसीका हार्टफेल होकर बीचमें मर जाये या किसी बड़ी बीमारीसे ग्रस्त होकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मरणको प्राप्त हो जाय, वह सब अकाल मरण है। अब यह ज्ञानकी बात दूसरी है कि उसने अकाल मौतको भी जाना था कि इस समयमें टंकी फट जायगी और यह यहीं बीचमें रुक जायगी।

अकालमृत्युके प्रमाणमें एक व्यावहारिक प्रयोगका दिग्दर्शन—यहाँ यह बतलाया जा रहा कि तीन प्रकारके जीवोंकी अचानक टंकी नहीं फटा करती याने बीचमें मौत नहीं होती। शेष जीवोंकी अकाल मौत भी होती है और अपने कालपर भी मौत होती है, इसका प्रमाण यह है कि अगर अकाल मौत न होती हो तो फिर ये डाक्टरी, आयुर्वेद आदिककी सब दवायें व्यर्थ हैं। फिर ये क्यों की जाती हैं ? उनमें सम्भावना बनी है ना कि यदि ऐसी दवा करें, ऐसा इलाज करें कि इसकी मृत्यु बीचमें न हो, तनिक और बच जाय। कोई कहे कि यह भी तो जान लिया था। हाँ इस अपेक्षासे ठीक है, किसी संतने यह भी जान लिया कि ऐसी-ऐसी दवा चिकित्साका संयोग होगा और इसकी मौत होते होते बच जायगी, पर यह प्रमाण आयु-र्वेदका समर्थ तो है। कोई कहे कि नहीं, ये आयुर्वेद ये डाक्टरी दवायें किसीको मरणसे नहीं बचा सकतीं। हाँ कोई वेदना हो रही है तो उस वेदना भरका इलाज है, अकाल मौतका इलाज नहीं। अगर कोई ऐसी शङ्का करे तो देखो बातें दोनों ही देखी जाती हैं। जैसे वेदना के मिटनेका साधन है वह दवा, तो यह प्राण क्या चीज है ? यह भी तो पौद्गलिक ही है। दिल है, हार्ट है। खून चलता है, कैसे चलता है ? आखिर ये सब पौद्गलिक हो तो बातें हैं। औषधिका वहाँ निमित्तनैमित्तिक योगवश जैसा तेज रोग बढ़ता था वह रुक गया, आखिर सभी पौद्गलिक ही तो हैं, तो शरीरकी वेदनाके मिटनेमें जैसे औषधिका प्रभाव पड़ा ऐसे ही प्राणोंपर भी औषधिका प्रभाव पड़ा। तो प्रयोजन यह है कि अकालमरण भी होता और अपने समयपर भी मौत होती। किन्तु जो ये तीन प्रकारके जीव हैं इनको कभी अकाल मौत नहीं हो सकती।

अनपवर्तायुष्कता होनेके कारणभूत भावोंमें प्रायः दयाकी प्रधानता—इस सम्बन्धमें थोड़ी बात और समझनी हैं कि जो कुछ जीवपर गुजरता है वह जीवके भावोंके अनुसार गुजरता है। तो यहाँ एक बात खोजें कि वह कौनसा भाव कारण है कि जिस भावसे आयु बधे तो आयु बीचमें न कटे ? इस पर जरा विचार करें। जीवपर सब कुछ बात गुजरती है, कर्म बंधे, दुःख हुआ, सुख हुआ, बीचमें मरा पूरी आयुसे मरा—ये बातें जब विषम देखी जा रही हैं तो ये उदयके अनुसार तो हो रही हैं ना। और उस कर्मबन्धके कारणभूत हैं जीवके भाव तो उन भावोंकी जरा खोज करें। वे कौनसे भाव हैं जिन भावोंके होनेपर इस तरहके कर्म बँधते, आयुबंध होता कि वह आयु बीचमें नहीं कटती। कौनसा भाव है ? बहुत-बहुत विचार करने पर और और भी कारण मानने तो पड़ेंगे, मगर मुख्य कारण आपको मालूम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होगा—दया। जो मनुष्य दया बहुत रखता है, चित्तमें संसारके समस्त प्राणियोंके प्रति करुणा (दया) का भाव रखता है, संसारके दुःखोंको दूर करनेका भी भाव रखता और संसार के समस्त संकट समूल नष्ट हो जायें याने मोक्षमार्गमें लगें, इस प्रकारकी भी दया रखता। दूसरे जीवोंकी रक्षाका भाव रखता, यत्न भी करता, तो दयासे जिसके भाव भरे हुए हैं वे भाव मुख्यतया कारण बनते हैं कि इसके आगे जो भली आयु मिलेगी वह बीचमें नहीं कटती। दया एक ऐसा पवित्र भाव है कि यह जीवका अकालमरण नहीं होने देता, इस प्रकारका एक प्राय: कारण है। तो मतलब यह है कि अपना पौरुष ऐसा होना चाहिए कि हमारे भाव सदा शुद्ध रहें और मुक्तिका कारणभूत जो कारणसमयसार है, आत्माका विशुद्ध चैतन्यस्वभाव है उस रूप अपना अनुभव रहे कि मैं तो यह हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं। सारा जौहर इतना है, सारा प्रताप इस भावनामें है। इसको कहते हैं आत्मभावना, जिसके भानेसे केवलज्ञान होता है। मैं सहज चैतन्यप्रकाशमात्र हूँ, बस इस भावनासे सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

॥ मोक्षशास्त्र प्रवचन द्वादश भाग समाप्त ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com